महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya
(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)
नैक द्वारा 'A' ग्रेड प्राप्त / Accredited with 'A' Grade by NAAC

सृजनात्मक लेखन

एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम
तृतीय सेमेस्टर
पंचम पाठ्यचर्या (वैकल्पिक) विकल्प – II
पाठ्यचर्या कोड : MAHD – 18

दूर शिक्षा निदेशालय
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
पोस्ट – हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा – 442001 (महाराष्ट्र)

सृजनात्मक लेखन

प्रधान सम्पादक

प्रो॰ गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सम्पादक

प्रो॰ कृष्ण कुमार सिंह
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पुरन्दरदास
अनुसंधान अधिकारी एवं पाठ्यक्रम संयोजक– एम. ए. हिन्दी पाठ्यक्रम
दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सम्पादक मण्डल

प्रो॰ आनन्द वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो॰ कृष्ण कुमार सिंह
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो॰ अरुण कुमार त्रिपाठी
प्रोफेसर एडजंक्ट, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पुरन्दरदास

प्रकाशक

कुलसचिव, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्ट : हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र, पिन कोड : 442001

© महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रथम संस्करण : जून 2018

पाठ-रचना

डॉ॰ धनञ्जय सिंह
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, डॉ॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन गवर्नमेंट आर्ट्स कॉलेज, यानम, पोंडिचेरी

खण्ड – 1 : इकाई – 1, 2, 3 एवं 4
खण्ड – 2 : इकाई – 1 एवं 2
खण्ड – 4 : इकाई – 1, 2 एवं 4

डॉ॰ सुचिता त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, चेतगंज, वाराणसी, उत्तरप्रदेश

खण्ड – 2 : इकाई – 3

डॉ॰ पद्मजा शर्मा
वरिष्ठ साहित्यकार
जोधपुर, राजस्थान

खण्ड – 3 : इकाई – 1 एवं 3

डॉ॰ किशोर वासवानी
विशेषज्ञ : सिनेमाई, श्रव्य-दृश्य भाषा, हिंदी, राजभाषा उद्योग शिक्षण, सामग्री निर्माण प्रशिक्षण
पूर्व-उपनिदेशक/निदेशक (भाषाएँ), भारत सरकार, शिक्षा विभाग, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, सिं. परिषद
पूर्व-निदेशक, भारतीय भाषा संस्कृति सं., गुजरात विद्यापीठ

खण्ड – 3 : इकाई – 2 एवं 4

डॉ॰ उषा शर्मा
पूर्व सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
संत हिरदाराम कन्या महाविद्यालय, भोपाल, मध्यप्रदेश

खण्ड – 4 : इकाई – 3

पुरन्दरदास

खण्ड – 2 : इकाई – 4

पाठ्यक्रम परिकल्पना, संरचना एवं संयोजन
आवरण, रेखांकन, पेज डिज़ाइनिंग, कम्पोज़िंग ले-आउट एवं प्रूफ़रीडिंग

पुरन्दरदास

कार्यालयीय सहयोग

श्री विनोद रमेशचंद्र वैद्य
सहायक कुलसचिव, दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

आवरण पृष्ठ पर संयुत विश्वविद्यालय के वर्धा परिसर स्थित गांधी हिल स्थल का छायाचित्र इंटरनेट से साभार प्राप्त

http://hindivishwa.org/distance/contentdtl.aspx?category=3&cgid=77&csgid=65

- यह पाठ्यसामग्री दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा संचालित एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम में प्रवेशित विद्यार्थियों के अध्ययनार्थ उपलब्ध करायी जाती है।
- इस कृति का कोई भी अंश लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमतिनहीं है।
- पाठ में विश्लेषित तथ्य एवं अभिव्यक्त विचार पाठ-लेखक के अध्ययन एवं ज्ञान पर आधारित हैं। पाठ्यक्रम संयोजक, सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का उससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- इस पुस्तक को यथासम्भव त्रुटिहीन एवं अद्यतन रूप से प्रकाशित करने के सभी प्रयास किये गए हैं तथापि संयोगवश यदि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि रह गयी हो तो उससे कारित क्षति अथवा संताप के लिए पाठ-लेखक, पाठ्यक्रम संयोजक, सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा।
- किसी भी परिवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र वर्धा, महाराष्ट्र ही होगा।

पाठ्यचर्या विवरण

तृतीय सेमेस्टर
पंचम पाठ्यचर्या (वैकल्पिक)
विकल्प – II
पाठ्यचर्या कोड : MAHD – 18
पाठ्यचर्या का शीर्षक : सृजनात्मक लेखन

क्रेडिट – 04

खण्ड – 1 : सृजनात्मक लेखन के सामान्य नियम
- इकाई – 1 : सृजनात्मक लेखन : अर्थ, क्षेत्र और महत्त्व
- इकाई – 2 : रचना-प्रक्रिया
- इकाई – 3 : रचना का उद्देश्य : स्वरूप की प्राप्ति
- इकाई – 4 : विषयवस्तु का निर्धारण

खण्ड – 2 : सृजनात्मकता के सामाजिक-दार्शनिक आधार
- इकाई – 1 : लेखक की सामाजिक पृष्ठभूमि और दार्शनिक विचार
- इकाई – 2 : लेखक के सामाजिक सरोकार
- इकाई – 3 : सृजनात्मकता में राजनैतिक विचारों का महत्त्व
- इकाई – 4 : लेखकीय मनोविज्ञान

खण्ड – 3 : फ़ीचर लेखन
- इकाई – 1 : फ़ीचर लेखन : परिचय, अर्थ, स्वरूप एवं महत्त्व
- इकाई – 2 : संचार माध्यम और विभिन्न विषयों पर फ़ीचर लेखन
- इकाई – 3 : रिपोर्ताज : अर्थ एवं स्वरूप
- इकाई – 4 : रेडियो लेखन, वार्ता लेखन, पटकथा लेखन, कविता लेखन

खण्ड – 4 : हिन्दी सृजनात्मक लेखन में नवाचार
- इकाई – 1 : समकालीन पॉपुलर साहित्य : परिचय एवं प्रकार
- इकाई – 2 : लप्रेक एवं यूनी कवि : परिचय एवं वैशिष्ट्य
- इकाई – 3 : गैर कथात्मक लेखन और नवाचार
- इकाई – 4 : सृजनात्मक लेखन से सम्बन्धित प्रमुख ब्लॉग्स : परिचय एवं वैशिष्ट्य

सहायक पुस्तकें :

1. कहानी का रंगमंच, सं. : महेश आनन्द
2. टेलीविजन की भाषा, हरिश्चन्द्र बर्णवाल
3. टेलीविजन लेखन, असगर वजाहत और प्रभात रंजन
4. पटकथा कैसे लिखें, राजेन्द्र पाण्डे
5. पटकथा लेखन : एक परिचय, मनोहर श्याम जोशी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली
6. बदलता समाज मनोविज्ञान और हिन्दी, पूरनचंद टंडन, सुनिल तिवारी
7. रचना की प्रक्रिया, स्तानस्लावस्की, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
8. रचनात्मक लेखन, सं. : रमेश गौतम
9. रचनात्मक लेखन, हरीश अरोड़ा, अनिल कुमार सिंह
10. लेखनकला और रचना कौशल, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ
11. व्यावसायिक क्षेत्रों में हिन्दी प्रयोग, एस.पी. शर्मा
12. वर्तमान सन्दर्भ में हिन्दी, मुकेश अग्रवाल
13. सृजनात्मक लेखन, राजेन्द्र मिश्र, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
14. संचार भाषा हिन्दी, सूर्यप्रसाद दीक्षित
15. हिन्दी, प्रयोजनमूलक हिन्दी और अनुवाद, पूरनचंद टंडन
16. हिन्दी भाषा, हरदेव बाहरी
17. Brushing Up the Years: A Cartoonist's History of India, 1947-2004, 2005, R. K. Laxman, 0670057991, 9780670057993, Penguin Viking, 2005
18. The Distorted Mirror, R. K. Laxman, ISBN 13, 9789351180005, Penguin Books India, 2013

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

पाठानुक्रमणिका

क्र.सं.	खण्ड	इकाई	पृष्ठ क्रमांक
01.	खण्ड – 1	इकाई – 1	08 – 20
02.	खण्ड – 1	इकाई – 2	21 – 32
03.	खण्ड – 1	इकाई – 3	33 – 43
04.	खण्ड – 1	इकाई – 4	44 – 53
05.	खण्ड – 2	इकाई – 1	54 – 64
06.	खण्ड – 2	इकाई – 2	65 – 74
07.	खण्ड – 2	इकाई – 3	75 – 91
08.	खण्ड – 2	इकाई – 4	92 – 106
09.	खण्ड – 3	इकाई – 1	107 – 121
10.	खण्ड – 3	इकाई – 2	122 – 135
11.	खण्ड – 3	इकाई – 3	136 – 153
12.	खण्ड – 3	इकाई – 4	154 – 170
13.	खण्ड – 4	इकाई – 1	171 – 182
14.	खण्ड – 4	इकाई – 2	183 – 193
15.	खण्ड – 4	इकाई – 3	194 – 213
16.	खण्ड – 4	इकाई – 4	214 – 224

खण्ड – 1 : सृजनात्मक लेखन के सामान्य नियम

इकाई – 1 : सृजनात्मक लेखन : अर्थ, क्षेत्र और महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

1.1.00. उद्देश्य कथन
1.1.01. प्रस्तावना
1.1.02. सृजनात्मकता क्या है !
1.1.03. सृजनात्मकता के विविध रूप
1.1.04. रोज़मर्रा के जीवन में सृजनात्मकता
1.1.05. भाषा में सृजनात्मकता
1.1.06. सृजनात्मक लेखन के क्षेत्र
1.1.07. साहित्य : पद्य और गद्य
1.1.08. मीडिया लेखन
1.1.09. अनुवाद
1.1.10. सृजनात्मक लेखन का महत्त्व
1.1.11. पाठ सार
1.1.12. बोध प्रश्न
1.1.13. व्यवहार
1.1.14. कठिन शब्दावली
1.1.15. उपयोगी / सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1.1.00. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई सृजनात्मक लेखन के अर्थ, क्षेत्र और महत्त्व पर आधारित है। इस पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. सृजनात्मकता का अर्थ समझने के साथ उसके विविध रूपों को जान सकेंगे;
ii. रोज़मर्रा के जीवन में सृजनात्मकता को पहचानते हुए कला को परिभाषित कर सकेंगे;
iii. सृजनात्मक लेखन की विशेषताओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
iv. सृजनात्मक लेखन की पहचान और उसका क्षेत्र बता सकेंगे; तथा
v. सृजनात्मक लेखन को महत्त्व जान सकेंगे।

1.1.01. प्रस्तावना

सृजनात्मक लेखन पाठ्यचर्या के पहले खण्ड की यह पहली इकाई है । इस इकाई में आपको सृजनात्मकता के बारे में बताया जाएगा । आप सृजनात्मक लेखन के क्षेत्र में प्रवेश करना चाहते हैं इसलिए आवश्यक है कि आप लेखन से सम्बन्धित कुछ मूलभूत बातों को अच्छी तरह से आत्मसात कर लें। आप जानते हैं कि सृजनात्मकता कोई ऐसी अवधारणा नहीं है कि जिसकी कोई सुनिश्चित परिभाषा दी जा सकती हो। न ही लेखन के बने-बनाए नियम होते हैं, जिन्हें समझकर लागू करने से सफल लेखक बना जा सकता है । हाँ, यह अवश्य है कि हम आपको विभिन्न रचनाकारों के लेखन और उनके अनुभव के आधार पर यह बता सकते हैं कि लेखक बनने के लिए किस तरह की मानसिक तैयारी की ज़रूरत होती है तथा लेखन से सम्बन्धित शिल्पगत ज्ञान क्या है और उसका महत्त्व क्या है । इस इकाई के बारे में हमने आपको सृजनात्मकता के बारे में बताया है । सृजनात्मकता क्या है ? क्या प्रत्येक कला सृजनात्मक होती है ? सृजनात्मक लेखन के लिए किस तरह की तैयारी आवश्यक है तथा रचना में सृजनात्मकता किस रूप में अभिव्यक्त होती है ? कला के विभिन्न रूपों का उल्लेख करते हुए साहित्य की विभिन्न विधाओं के बारे में भी इस इकाई में बताया गया है। सृजनात्मक लेखन और ज्ञानात्मक (सूचनात्मक) लेखन के अन्तर को स्पष्ट करते हुए उन ख़तरों के प्रति भी आगाह किया गया है जो आपके लेखन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते सकते हैं।

सृजनात्मक लेखन और अन्य लेखन किस प्रकार से भिन्न होता है। जब हम सृजनात्मक लेखन की बात करते हैं तो उसे अन्य लेखन से अलग परिभाषित करने की ज़रूरत की ओर ध्यान देना होता है। अर्थशास्त्र या इतिहास में शब्द और अर्थ का सीधा रिश्ता होता है। इन शास्त्रों या विज्ञानों में प्रयुक्त शब्द या पारिभाषिक शब्द किसी निश्चित अर्थ में रूढ़ होते हैं। हर बार अपने एक ही अर्थ को दुहराते हैं। सृजनात्मक लेखन में शब्द अपने सन्दर्भ के साथ अनेक छायाओं को रचते हैं। वे किसी निश्चित सीमा में रूढ़ नहीं होते। सृजनात्मक लेखन की विशिष्टता सभी प्रकार का लेखन में नहीं होती है। लेखन के अन्तर्गत तमाम तरह के शास्त्र और विज्ञान आते हैं। उन्हें भाषा में ही लिखा जाता है। उदाहरण के लिए इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, रसायनशास्त्र आदि साहित्य के श्रेणी में नहीं आते हैं। साहित्य के अन्तर्गत भी अनेक विधाएँ आती हैं। उक्त सभी विधाओं को सृजनात्मक लेखन मानने के बारे में मतभेद देखा जाता है। उदाहरण के लिए आलोचना साहित्य को रचनात्मक लेखन में स्थान नहीं दिया जाता है। यह अलग बात है कि अच्छी आलोचना भी रचनात्मक सीमाओं को छूने लगती है। सच्ची आलोचना में भी रचनात्मकता का गुण होता है। लेकिन उसे पूर्णतः रचनात्मक नहीं माना जा सकता। सृजनात्मक कहने से मौलिक, नया, विशिष्ट और अर्थवान् होने का बोध होता है। सृजनात्मक लेखन में एक विशेष काल में रचा जाता है परन्तु वह कृति आगामी काल में भी हमारे लिए नया अर्थ प्रस्तुत करती है।

1.1.02. सृजनात्मकता क्या है !

मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया लिखता है कि "सृजनात्मकता अथवा रचनात्मकता किसी वस्तु, विचार, कला, साहित्य से सम्बद्ध किसी समस्या का समाधान निकालने आदि के क्षेत्र में कुछ नया रचने, आविष्कृत करने

या पुनर्सृजित करने की प्रक्रिया है । यह एक मानसिक संक्रिया है जो भौतिक परिवर्तनों को जन्म देती है । सृजनात्मकता के सन्दर्भ में वैयक्तिक क्षमता और प्रशिक्षण का आनुपातिक सम्बन्ध है । काव्यशास्त्र में सृजनात्मकता प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास के सहसम्बन्धों की परिणति के रूप में व्यवहृत किया जाता है ।" आइए ! इसे विस्तार से समझा जाय । अगर हम अपने आस-पास नज़र डालें तो पाएँगे कि हर जगह, हर वस्तु में जो जीवित है, कुछ-न-कुछ हो रहा है । सामने का नीम का पेड़, जो सारे पत्ते झाड़ चुका था, नये हरे पत्तों से भर रहा है ! क्यारी में लगा भिण्डी का पौधा अपने फूल गिरा अब बहुत छोटी-सी भिण्डी बाहर ले रहा है । अमरूद के रूखे पेड़ का हरा फल धीरे-धीरे पक रहा है । आम की मंजरियाँ पहले छोटे टिकोलों में, फिर पूरे हरे फल में, फिर हरा फल पीले पके फल में, और फिर उस फल की गुठली से कत्थई पत्तों वाला नन्हा पौधा – यह क्रम चलता रहता है । यही तो प्रकृति की सृजनात्मकता है । मनुष्य ने भी प्रकृति से यह गुण सीखा । आरम्भ से ही वह भी प्रकृति के साथ-साथ और समानान्तर सृजन करता आ रहा है । जब वह गुफाओं में रहता था तब भी उसने गुफाओं की दीवारों पर तरह-तरह के चित्र बनाए । भोपाल के पास भीम बैठका में बहुत प्राचीन गुफाएँ हैं ।

पहले मनुष्य फल इकट्ठा करता था और जानवरों का शिकार करता था । आगे चलकर मनुष्य ने अन्न उपजाना (खेती करना) शुरू किया । खेती बहुत बड़ा सृजन है । धान के बिरवे से लेकर चावल के दानों का हमारी रसोई में पहुँचने तक लगातार सृजन होता रहता है । इसी सृजन और श्रम के दौरान मनुष्य ने गाना और नृत्य भी रचे । नृत्य सबसे आदिम कला है । यहाँ शरीर ही सबसे बड़ा माध्यम है । मनुष्य ने जीवन जीते हुए सौन्दर्य की सृष्टि की । हर चीज़ में, हर काम में सौन्दर्य है । खेतों की क्यारियाँ, पेड़ों की पाँतें, नदियों के घाट, रहने के घर, पहनने के कपड़े – सब में मनुष्य ने सौन्दर्य की रचना की । जब हम माँ को रोटी पकाते देखते हैं तो लगता है 'दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज़' बन रही है । रोटी का गोल-गोल बनना और तवे पर फूलना – यही तो सृजन है । गेहूँ की बुवाई से लेकर रोटी के फूलने तक – सृजनात्मकता की सबसे बड़ी गाथा है । सृजनात्मकता सभी कलाओं की प्राथमिक प्रेरणा है ।

1.1.03. सृजनात्मकता के विविध रूप

इसी तरह मिट्टी का एक लौंदा आकार लेता है । देखते ही देखते गीली मिट्टी का एक गोला घूमते चाक पर कारीगर की हथेलियों के बीच सँवरते-सँभलते सुघड़ सुराही में बदल जाता है । कभी-कभी यह देखकर आश्चर्य होता है कि मनुष्य का हाथ कैसे मिट्टी को सुडौल आकार दे देता है । इसी तरह मूर्ति भी बनती है । शुरू में कुछ भी नहीं होता । बस पुआल, बाँस की खपच्चियाँ और मिट्टी । देखते-देखते मनुष्य की देह जितनी बड़ी आकृति बन जाती है । पत्थर को तराशकर, पहाड़ को काटकर ऐलोरा की महान मूर्तियाँ बनीं । कई बार एक ही रचनाकार अपने आप को कई कलारूपों में अभिव्यक्त करता है । रवीन्द्रनाथ टैगोर, महादेवी वर्मा, शमशेर आदि ऐसे ही रचनाकार हैं ।

इस तरह हम देख सकते हैं कि एक तरफ़ प्रकृति अपनी रचना करती है तो दूसरी तरफ़ मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के लिए रचना करता है, जिसे उपयोगी रचना या कला कह सकते हैं, और तीसरी तरफ़ मनुष्य

अपनी जाति में सम्वेदनशीलता के लिए मूर्ति बनाता है, चित्र बनाता है, नाटक लिखता है, उसका मंचन करता है, कविता-कहानी लिखता है, आदि-आदि, इन्हें ललित कला कहा जाता है।

1.1.04. रोज़मर्रा के जीवन में सृजनात्मकता

सृजनात्मकता के बारे में सोचते हैं तो आमतौर पर साहित्यकारों, चित्रकारों, फ़िल्मकारों आदि जैसे कुछ खास व्यक्तियों की उपलब्धियों की बात ही दिमाग में पहले कौंधती है। निःसन्देह अपने क्षेत्र में ये सृजनशील हैं, पर सृजनशीलता का पटल इन जाने-माने व्यक्तियों की कृतियों से कहीं अधिक विस्तृत है। पहली बात जो सृजनशीलता के विषय में समझने की है, वह यह कि इसे जनसाधारण की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की गतिविधियों में भी देखा और अनुभव किया जा सकता है। जैसे कि, प्राथमिक स्कूल का शिक्षक बच्चों को बेहतरीन कहानियों के ज़रिये इतिहास का पाठ यूँ पढ़ाता है कि बच्चों में कल्पनाशीलता और विषय के प्रति विशेष रुचि जग उठती है; कहीं एक स्त्री अपने शिशु की देखभाल करती है और बहुत-बहुत कम आय में ही अपनी गृहस्थी को सुघड़ सुव्यवस्थित ढंग से चलाकर उसके घिसे-पिटे ढर्रे में एक नवीनता, एक सौन्दर्य लाती है या कहीं एक माली पौधों की पहचान, चुनाव तथा देखभाल इतनी निपुणता से करता है। कहने का मतलब है कि सृजनशीलता हम क्या करते हैं, इसमें नहीं है बल्कि खासतौर पर इसमें है कि हम उसे किस प्रकार करते हैं। इसी अर्थ में सृजनात्मकता उपयोगिता से परे है। बँधे-बँधाये, एक ढर्रे पर होने वाली स्टीरियोटाइप रूटीन, मशीनी काम-काज और रंग-ढंग किसी भी व्यक्ति को मानवीय गरिमा से गिराते हैं। सच्चा मनुष्य हर क्षण, हरकदम पर एक अज्ञात पेड़ लगाता चलता है, सब के जीवन में नया रास-रंग भरता चलता है। यही उसकी सृजनात्मकता का आग्रह है। नाचना-गाना, पढ़ना-लिखना, चित्र बनाना, मूर्ति बनाना ही सृजनात्मक हो, ऐसा नहीं है। जीवन के पेंच सुलझाने वाला, प्रकृति और मानव मन-मस्तिष्क के रहस्य समझाने वाला, अपने घर और समाज की सुख-सुविधा और मानसिक सुख-शान्ति में इज़ाफ़ा करने वाला छोटे-से-छोटा काम सृजनात्मक है। वो हर काम सृजनात्मक है जो बृहत्तर हित के लिए एक खास तरह की टीस और प्रेरणा के साथ सौ कष्ट उठाकर भी मनोयोगपूर्वक किया गया हो – कोई उदास बैठा हो तो उसे हँसा देना, बहुत बोझ लेकर चलने वाले का बोझ उठा देना, दृष्टिहीन व्यक्ति को सड़क पार करा देना, किसी की नैतिक कुहेलिका सुलझाने में मदद करना, किसी का आर्थिक-मानसिक अवलम्ब बनना – आदि नेक काम सृजनात्मक आवेगों के तहत ही आते हैं।

1.1.05. भाषा में सृजनात्मकता

इसी रचनात्मक आवेग के तहत धीरे-धीरे मनुष्य ने भाषा बनायी। भाषा में गीत बनाये। हमारे लोकगीत ऐसे ही बने। सिर्फ़ बोलकर, गाकर ये गीत शताब्दियों से चले आ रहे हैं, जैसे यह आदिवासी गीत –

रास्ते में साखू का फूल लहरा रहा है !
रास्ते में वो युवती मुसकुरा रही है !

बाद में मनुष्य ने लिखना सीखा। तब उसने गीतों को लिखना शुरू किया। अलग-अलग भाषाओं में हर मनुष्य बोलता है। बहुत से लोग लिखते भी हैं। लेकिन हर आदमी कहानी नहीं लिखता, हर आदमी कविता नहीं लिखता।

कविता-कहानी लिखना बाक़ी रोज़मर्रा के लेखन से भिन्न है। यहाँ तक कि डायरी लिखना, आत्मकथा या संस्मरण लिखना भी अन्य लेखन से भिन्न है। इसके लिए भाषा जानना ही काफ़ी नहीं है। इसके लिए भाषा को निपुणता से जानना, उसका व्यवहार करना और भाषा में कुछ नयापन करना ज़रूरी है। सृजनात्मकता का अर्थ है कुछ नया करना और नये तरीके से करना। यहाँ नयी बात को सबसे अच्छे शब्द में, सबसे अच्छे क्रम में रखा जाता है। कवि निराला की इस कविता को देखिए –

फूटे हैं आमों में बौर
भौंर वन वन टूटे हैं
या फिर
पत्तों से लदी डाल
कहीं हरी, कहीं लाल
अथवा
उग आए अंकुर जीवन,
धान ज्वार अरहर और सन
बही पुनः गन्ध से पवन
पके आम की।

देखिए कि कैसे हम सब जो रोज़ देखते हैं, उसे निराला ने कविता में बदल दिया है – डाल पत्तों से लदी है। यह डाल कहीं हरी है, कहीं लाल है। यानी पत्ते बिल्कुल नये हैं, अधिकांश शब्द रोज़-ब-रोज़ के हैं। लेकिन प्रस्तुति विशेष ढंग की है। उन्होंने शब्दों को खास ढंग से रखा है। जैसे – 'आमों में बौर फूटे हैं' को उन्होंने कर दिया 'फूटे हैं आमों में बौर', इस तरह पंक्ति में संगीत आगया। फिर अगली पंक्ति में 'भौंरे' को 'भौंर' कर दिया और 'वन वन टूटे हैं' में टूटे जोड़कर उसकी तुक फूटे से मिला दी तथा वन को दो बार लिखकर वन की अनेकता को दिखला दिया। यह सारा कुछ जो निराला ने किया, वही तो भाषा में सृजनात्मकता है। प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'ईदगाह' के इस अंश को पढ़कर देखें तो लगता है कि उन्होंने कितनी सरलता से अपनी बात कह दी है। यही सृजनात्मकता है। "मिठाइयों के बाद कुछ दुकानें लोहे की चीजों की हैं। कुछ गिलट और कुछ नकली गहनों की। लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वह सब आगे बढ़ जाते हैं। हामिद लोहे की दुकान पर रुक जाता है। कई चिमटे रखे हुए थे। उसे ख्याल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तवे से रोटियाँ उतारती है तो हाथ जल जाता है; अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे, तो वह कितनी प्रसन्न होगी ? फिर उनकी उँगलियाँ कभी नहीं जलेंगी।" यहाँ प्रेमचंद ने सीधे-सादे शब्दों में जो कहना था कह दिया है, कोई बनावट नहीं, यहाँ यही सृजनात्मकता है। सच को ज्यों-का-त्यों कह देना बहुत आसान है और बहुत कठिन भी। भाषा का व्यवहार अलग-अलग विधाओं, जगहों और ज़रूरतों के अनुसार बदलता रहता है।

1.1.06. सृजनात्मक लेखन के क्षेत्र

जैसा कि बताया जा चुका है कि सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति कई रूपों में हो सकती है। भाषा में यह सृजनात्मकता आज हमारे कई रूपों में मौजूद है। मोटे तौर पर इसके तीन क्षेत्र हैं – साहित्य, मीडिया और अनुवाद। ऊपर साहित्य सम्बन्धी कुछेक उदाहरणों के माध्यम से हमने सृजनात्मक बिन्दुओं को जानने का प्रयास किया। अब आगे हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि साहित्य का मूल स्वरूप क्या रहा है। प्रत्येक साहित्यकार अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए अलग-अलग माध्यम चुनता है, अलग शैली व अलग ढंग से प्रस्तुति करता है, परिणामस्वरूप साहित्य में विविधता आती है और अनेक विधाएँ जन्म लेती हैं। मोटे तौर पर साहित्य के मूल दो स्वरूप बता सकते हैं – पद्य और गद्य।

1.1.07. साहित्य : पद्य और गद्य

जिसे सामान्य रूप से हम कविता कहते हैं, वही पद्य है। यह अलग बात है कि आज कविता छन्दोबद्ध ही लिखी जाती हो, ऐसा नहीं है। वैसे कविता के भी अनेक रूप होते हैं। प्रस्तुति के आधार पर तथा स्वरूप के आधार पर मुख्यतः दो प्रकार कहे जा सकते हैं – प्रबन्ध और मुक्तक। इसके अलावा एक प्रकार है – चम्पू, जिसमें गद्य और पद्य दोनों होते हैं। कविता प्रायः भाव प्रधानता की प्रस्तुति है। प्रबन्ध काव्य अपनी प्रकृति में कथात्मक एवं सर्गबद्ध रचना है जो लक्षणों पर आधारित है। जबकि मुक्तक में गीति-तत्त्व की प्रधानता और भाव-तत्त्व की बहुलता होती है। उसके भी कई प्रकार हैं जिनका अपना स्वरूप है और उन स्वरूपों के लक्षण हैं – गीत, ग़ज़ल, सॉनेट आदि। प्रबन्ध काव्य-लक्षणों आधारित काव्य प्रबन्ध काव्य है। जिसके मुख्य दो प्रकार हैं – महाकाव्य और खण्डकाव्य। कोई तीसरा प्रकार – एकार्थक काव्य भी बताते हैं। जो काव्य आठ से अधिक तथा तीन से अधिक और कम सर्गो अथवा अध्यायों में विभक्त होता है क्रमशः महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा एकार्थक-काव्य कहलाता हैं। तीनों काव्य की कथा पौराणिक या ऐतिहासिक तथा नायक-नायिका धीरोदत्त गुणों वाला प्रासंगिक होना चाहिए। शृंगार, वीर तथा शान्त रसों में एक की प्रधानता तथा शेष रस गौण होते हैं। कलात्मक बिम्ब, तत्सम शब्दों से युक्त सरल भाषा तथा काव्य का प्रारम्भ मंगलाचरण से होना चाहिए।

(i) मुक्तक काव्य : मुक्तक काव्य में पहले या बाद में प्रसंगों की जानकारी की अपेक्षा नहीं होती। स्वतन्त्र रूप से रस-प्राप्ति सम्भव है। वैसे मुक्तक काव्य प्राचीन काल का गीति काव्य है और आधुनिक काल में कविता, लम्बी कविता, अकविता आदि नामों से जानी जाती हैं। मुक्तक काव्य गेय और लय बद्ध भी होते हैं। मुक्तक काव्य श्रोता को मन्त्रमुग्ध कर देता है जिसमें कल्पना की सीमित उड़ान होती है। प्रासंगिक विषयों पर प्रायः मार्मिक भाषा-शैली में मुक्तक लिखे जाते हैं। मुक्तक काव्य अनुभूति और भाव-प्रवण अधिक होते हैं।

(ii) गीति काव्य : माँ-दादी-नानी के मुँह से सुनी हुई लोरी, प्रसंगोपयोगी लोक-गीत अथवा नृत्य के लिए रचे हुए गेय गीत गीति काव्य हैं। प्राचीन काल से ऐसे पदों की रचना होती आई है जिसमें सरलता, भावावेग, गेयता, रसानुभूति, संगीतमयता तथा संक्षिप्तता होतीहै।

(iii) गद्य : साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा गद्य है। संस्कृत आचार्यों का मानना है कि "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" अर्थात् गद्य कवियों के लिए कसौटी है। गद्य विचार प्रधान लेखन है जिसमें मन की मुक्तावस्था का वाणी विधान प्रमुख होता है। जिसके विविधतम रूप हैं – नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी, साक्षात्कार, डायरी, पत्र-लेखन, शोधपत्र, आलेख, फिल्मी साहित्य, मीडिया और पत्रकारिता आदि प्रमुख हैं। इनमें से सभी रचनात्मक नहीं हैं परन्तु संचास्माध्यम क्रान्ति के कारण इन विधाओं में रचनात्मकता आ सकती है। अख़बार में प्रकाशित होने वाला एक सामान्य समाचार दृश्य-श्रव्य के कारण रचनात्मक हो सकता है।

1.1.08. मीडिया लेखन

मीडिया लेखन आपको न केवल पूरी दुनिया से जोड़ता है बल्कि दुनिया को रचने में मीडिया की भूमिका सबसे बड़ी होती है। तुरन्त प्रभाव वाले आपके हर शब्द समाज की दिशा तय कर सकते हैं। लेकिन जनसंचार माध्यमों का लोगों पर सकारात्मक के साथ-साथ नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है। इन नकारात्मक प्रभाव के प्रति लोगों का सचेत होना बहुत ज़रूरी है। इसलिए मीडिया लेखन का दायित्व और बढ़ जाता है। यहाँ तथ्यों को सीधे-सीधे बिना किसी घुमाव के प्रस्तुत करना ही सृजनात्मकता होगी। मीडिया यानी संचार के विविध माध्यमों में रोज़-रोज़ नाना प्रकार की अनेकविध रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। आज इंटरनेट पर अनेक रचनाकारों का परिचय तथा मुक्तज्ञान कोश से विविध-विषयों से अवगत होना सरल बना है। पत्रिका तथा ई-पत्रिका स्थान आज के समय सर्वोच्च है। संचार माध्यम में शैक्षिक-संचार का मतलब शिक्षा सम्बन्धी शैक्षिक संचार से है। संचार के विविध माध्यमों से शैक्षिक-संचार में आज क्रान्ति आई हुई है। इन्हीं माध्यमों के आधार पर सारे देश के पाठ्यक्रमों की जानकारी सरलता से उपलब्ध होती है। ऑडियो-विडियो से तत्सम्बन्धी रूपान्तरण से समझने में सहायता मिलती है। यह एक तरह से शिक्षा में सर्जनात्मकता का काम करता है। साहित्यिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक सम्बन्धी ब्लॉग द्वारा रचनात्मक संवाद स्थापित किया जा सकता है। साहित्यिक-ब्लॉग से आज अपनी अभिव्यक्ति का खुला कैनवास मिला है।

संचार क्रान्ति के पूर्व साहित्यिक लेखन ही रचनात्मक लेखन का क्षेत्र था। परन्तु संचार माध्यमों के आने के बाद रचनात्मक लेखन का क्षेत्र विस्तृत हो गया। इस तरह कहा जा सकता है कि रचनात्मक लेखन के मुख्य क्षेत्र – साहित्य व संचार माध्यम हैं।

संचार माध्यमों के मोटे-तौर पर तीन उद्देश्य माने जा सकते हैं – सूचना, मनोरंजन और शिक्षा। संचार माध्यम का मुख्य उद्देश्य सूचनाएँ पहुँचाना होता है। लेकिन रेडियो और टेलीविज़न देखते हैं तो उसमें कार्यक्रम का बहुत-बड़ा हिस्सा मनोरंजन को ध्यान में रखकर प्रसारित किया जाता है। शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों से अब मीडिया का उपयोग भी किया जाता है। भारत सरकार ने 'एजूसेट' नामक उपग्रह अन्तरिक्ष में स्थापित किया गया जिसका मकसद विद्यार्थियों-शिक्षार्थियों को शिक्षा का लाभ पहुँचाना है।

फिल्मी साहित्य फिल्म सम्बन्धी साहित्यिक रूप को कहते हैं तो मीडिया और पत्रकारिता सूचना-क्रान्ति के वाहक रूप में देखा जाता है। इंटरनेट, ब्लॉग, वेब पत्रिका तो टी.वी. चैनलों द्वारा प्रचारित साहित्य आदि मीडिया के अन्तर्गत आते हैं। प्रिन्ट माडिया में समाचार पत्र, पत्रिकाएँ तो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में इंटरनेट, ब्लॉग, वेब पत्रिका, टी.वी. चैनल आदि समाविष्ट होते हैं। व्यंग्य-लेख और हास्य-लेख भी साहित्यिक विधा के रूप में आज अत्यन्त लोकप्रिय हो रहे हैं। दृश्य-श्रव्य माध्यम में तो जैसे इनकी बाढ़ आ गयी है। इनके भौंडेपन और स्तरहीनता को स्वीकारते हुए भी एक बात माननी पड़ेगी कि हास्य-व्यंग्य के कार्यक्रम अगर चल रहे हैं तो अपनी रचनात्मकता के कारण ही। इसके पूर्व हास्य-व्यंग्य में इतनी भिन्नताएँ देखने को नहीं मिलती थीं।

1.1.09. अनुवाद

हर भाषा में रचना होती है और उसका तरीका लगभग एक जैसा ही होता है। ज़रूरी है उस भाषा से प्रेम, लगाव, गहरी पहचान और दोस्ती। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बांग्ला भाषा में रचना की। देखिए, उनकी प्रसिद्ध कविता का एक अंश –

यदि तोर डाक शुने केऊ न आशे
तबे एकला चलो रे।
एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे !

(बांग्ला)

तेरी आवाज़ पे कोई ना आए,
तो फिर चल अकेला रे।
चल अकेला रे, चल अकेला रे, चल अकेला रे।

(हिन्दी)

यहाँ कवि ने बात सीधे-सीधे रख दी है। जैसे हम बोलते हैं वैसे ही। सरल वाक्य में, जिसका गहरा प्रभाव पड़ता है। फिर 'एकला चलो' को तीन बार लिखकर कवि ने जो संगीत रचा, वह समवेत स्वर जैसा प्रभाव उत्पन्न करता है। यही सृजनात्मकता है। भाषा का ऐसा व्यवहार जो अधिकतम लोगों को अधिकतम समय तक प्रभावित करता रहता है। हिन्दी अनुवाद करते हुए अनुवादक कविता के इस मूलभूत प्रभाव को पकड़ने की कोशिश करता है। जैसे हिन्दी में भी 'चल अकेला' के माध्यम से समवेत ध्वनि को बरकार रखने और साथ ही बांग्ला भाषा के बांग्लापन को बनाए रखने की कोशिश हुई है। एक के बिना दूसरे का काम नहीं चलता, खासकर भारत जैसे बहुभाषिक देश में। हमारी चेतना अनुवाद चेतना है। हर कोई अनुवादक है। क्योंकि वह एक साथ कम से कम दो भाषाओं का व्यवहार करता है।

इस प्रकार सृजनात्मक लेखन का क्षेत्र साहित्य की विविध विधाओं एवं विभिन्न माध्यमों में बदलते समय के साथ प्रयोग के कारण अधिक व्यापक और वैविध्यपूर्ण होते गए हैं।

1.1.10. सृजनात्मक लेखन का महत्त्व

अब तक हमने सृजनात्मकता के सम्बन्ध में जो चर्चा की है, उससे आप उसके महत्त्व से भली-भाँति परिचित हो गए होंगे। लेखन सबसे पहले कलाकार की आत्माभिव्यक्ति का माध्यम है। रचना के माध्यम से कलाकार अपने को अभिव्यक्त करना चाहता है। इसीलिए रचना पर कलाकार के व्यक्तित्व की गहरी छाप होती है। इसीलिए श्रेष्ठ रचना हमेशा दूसरे से अलग होती है। एक ही दौर के दो महान कथाकार प्रेमचंद और प्रसाद की भिन्नता और दो महान कवि प्रसाद और निराला की भिन्नता को हम आसानी से पहचान सकते हैं। इसी प्रकार हम व्यक्तित्व की इस भिन्नता का प्रकाशन अज्ञेय और मुक्तिबोध तथा अन्य कवियों-लेखकों में भी देख सकते हैं।

इसका मतलब यह नहीं है कि रचना मात्र आत्माभिव्यक्ति होती है। इस बात पर सिर्फ बल देने का सिर्फ यह तात्पर्य है कि आप आप समझ सकें कि आप अपनी शैली सृजित नहीं करेंगे तब तक एक साहित्यकार के रूप में आप का महत्त्व सीमित रहेगा। लेकिन यह तत्काल उपलब्ध होने वाली चीज नहीं है।

आत्माभिव्यक्ति का मतलब यह भी नहीं है कि रचना में आप अपने जीवन को व्यक्त करें। यहाँ आत्म का अर्थ निजता से नहीं बल्कि अपने उस व्यक्तित्व से है जो आपकी रचना में मौजूद रहता है और जिसके कारण आपका एक स्वतन्त्र रचना-व्यक्तित्व निर्मित होता है। उदाहरण के लिए प्रेमचंद के साहित्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति जिस रूप में मिलती है वैसी अभिव्यक्ति हमें प्रसाद के साहित्य में नहीं मिलती है। प्रसाद की कहानियों में समाज के अन्तर्विरोधों की बजाय व्यक्ति के आन्तरिक द्वन्द्व के चित्रण को प्रधानता मिली है। अपनी इसी भिन्नता के कारण प्रेमचंद ने पूस की रात, ठाकुर का कुआँ और कफ़न जैसी कहानियाँ लिखीं जबकि प्रसाद ने पुरस्कार और आकाश-दीप जैसी कहानियाँ।

रचनाकार के पास समाज और व्यक्ति के अन्तःसम्बन्धों की एक परिकल्पना होती है। एक रचनाकार के रूप में वह समाज की गतिविधियों का द्रष्टा ही नहीं होता, उसका भोक्ता भी होता है। द्रष्टा और भोक्ता के रूप में अपने अनुभवों को वह सामान्य लोगों की तुलना में ज़्यादा गहराई और तीव्रता से महसूस करता है। अपने अनुभवों को वह नये रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है। रचना के रूप में जब वह अपने अनुभव को व्यक्त करता है तो उसका प्रभाव भी पाठकों पर भी उतना ही गहरा और तीव्र होता है। इसलिए वह रचना एक सामाजिक उत्पादन के रूप में समाज पर एक खास प्रभाव छोड़ती है। वह अपने पाठकों की चेतना को बदलने और सक्रिय करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हालाँकि कुछेक रचनाएँ अपने समाज पर प्रतिकूल प्रभाव भी पैदा करती हैं। हिन्दी का रीति-साहित्य अभिजात्य वर्ग के लिए लिखी गई थी, उसका समाज पर कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं रहा।

सृजनात्मक लेखन का महत्त्व तभी है जब वह किसी-न-किसी रूप में समाज में सकारात्मक परिवर्तन का साधन बने। ऐसा वह प्रत्यक्षतः नहीं करता। बल्कि लेखन का ढंग इतना अप्रत्यक्ष होता है कि उसका प्रभाव केवल महसूस ही किया जा सकता है। बहुत सीधे ढंग से उपदेश देने वाला या प्रचार करने वाला साहित्य भी उच्चकोटि का नहीं होता क्योंकि वहाँ भी आदर्श और मूल्य जीवन पर आरोपित होते हैं, जीवन से निस्सृत होते नहीं दिखाई देते। प्रेमचंद, निराला आदि रचनाकारों का महत्त्व यही है कि वे अपनी बात जीवन के साथ इस तरह घुला-मिलाकर पेश करते हैं कि हमें बिल्कुल ही अनुभव नहीं होता कि हम जीवन से भिन्न कुछ ग्रहण कर रहे हैं। जीवन के साथ सृजनात्मक लेखन का तादात्मयीकरण ही उसके महत्त्व को बढ़ाता है। जो लेखन हमारे जीवन से जितना दूर होगा उसका महत्त्व उतना ही कम होगा और जिस लेखन में हमारे जीवन की जितनी तेज़ धड़कन सुनाई देगी उसका महत्त्व भी उतना ही अधिक होगा। यहाँ जीवन का मतलब हमारे व्यक्तिगत जीवन से नहीं, बल्कि उस जीवन से है, जो समाज के बहुसंख्यक लोग जीते हैं।

1.1.11. पाठ सार

सृजनात्मकता किसी वस्तु, विचार, कला, साहित्य से सम्बद्ध किसी समस्या का समाधान निकालने आदि के क्षेत्र में कुछ नया रचने, आविष्कृत करने या पुनर्सृजित करने की प्रक्रिया है। यह एक मानसिक संक्रिया है जो भौतिक परिवर्तनों को जन्म देती है। सृजनात्मकता के सन्दर्भ में वैयक्तिक क्षमता और प्रशिक्षण का आनुपातिक सम्बन्ध है। सृजनात्मकता लेखन से अलग कोई तत्त्व नहीं है न ही यह कोई दैवीय वरदान है। लेखन के प्रति आपकी गम्भीरता, शिल्प पक्ष का ज्ञान, निरन्तर अभ्यास और नया कुछ रचने की गहरी ललक ही सृजनात्मकता है, जो रचना के रूप में अभिव्यक्त करती है।

रचना की श्रेष्ठता उसके उद्देश्य से निर्धारित होती है। केवल उद्देश्य से नहीं बल्कि उद्देश्य की सृजनात्मक परिणति से।

सृजनात्मक लेखन के विविध रूपों में से आप जिसका भी चयन करें, उसके लिये पर्याप्त तैयारी, श्रम और अभ्यास आवश्यक है। लेखन के महत्त्व और इस क्षेत्र की कुछ गम्भीर चुनौतियों को समझते हुए आपको लेखन की ओर अग्रसर होना है। विशेष रूप से लोकप्रियता का मोह हमें लेखन के महत् उद्देश्यों से भटका सकता है।

1.1.12. बोध प्रश्न

अभ्यास

1. 'अ' और 'ब' में सही मिलान कीजिए –

'अ'		'ब'	
(क)	खेत जोतना	(i)	प्रकृति की रचना
(ख)	लू चलना	(ii)	ललित कला
(ग)	कविता लिखना	(iii)	उपयोगी कला
(घ)	उपन्यास पढ़ना	(iv)	कला का आस्वादन

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्नलिखित में से सृजनात्मकता के लिए क्या ज़रूरी है ?
   (क) प्रतिभा
   (ख) अभ्यास
   (ग) अनुभव व सम्वेदनशीलता
   (घ) उपर्युक्त सभी

2. निम्नलिखित में से प्रकृति की रचना है –
   (क) वर्षा का होना
   (ख) कविता लिखना
   (ग) कुर्सी बनाना
   (घ) पुस्तक पढ़ना

3. निम्नलिखित में से कौनसा कथन असत्य है ?
   (क) सूचनात्मक लेखन ज्ञान में वृद्धि करता है, जबकि रचनात्मक लेखन हमें उदार और मानवीय बनाता है।
   (ख) उपयोगी कला के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है, जबकि ललित कला के लिए नहीं।
   (ग) रचनाकार समाज की गतिविधियों का द्रष्टा नहीं होता।
   (घ) सृजनात्मक लेखन का महत्त्व किसी-न-किसी रूप में समाज में सकारात्मक परिवर्तन का साधन बनने में है।

4. रचनात्मक लेखन के लिए क्या ज़रूरी है ?

(क) नया रचने की ललक
(ख) निरन्तर अभ्यास और आवश्यक तैयारी
(ग) रचना के प्रति गम्भीरता
(घ) उपर्युक्त सभी

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सृजनात्मक लेखन से आप क्या समझते हैं ?
2. भाषा का सृजनात्मकता से क्या रिश्ता है ?
3. साहित्यिक भाषा का क्या स्वरूप अपेक्षित है ?
4. रचनात्मक लेखन के कौन-कौन से क्षेत्र हैं ?
5. संचार माध्यमों के कौन-कौन से उद्देश्य हैं ?
6. दूरदर्शन और सिनेमा लेखन पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों का उल्लेख कीजिए ।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सृजनात्मकता का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके विविध रूपों का विवेचन कीजिए।
2. रचनात्मकता में आत्माभिव्यक्ति का आशय स्पष्ट कीजिए।
3. रचनात्मकता में प्रतिभा, अभ्यास, अनुभव और कल्पना की भूमिका पर विचार कीजिए।
4. संचार माध्यमों में सृजनात्मकता किन-किन क्षेत्रों में दिखाई देती है ? वर्णन कीजिए।
5. अनुवाद के क्षेत्र में सृजनात्मकता की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
6. समाज में सकारात्मक परिवर्तन के लिए रचनात्मक लेखन की भूमिका किस रूप में दिखाई पड़ती है ?

1.1.13. व्यवहार

(क) निम्नलिखित विषयों को आधार बनाकर सृजनात्मक लेखन कीजिए –

1. पहाड़ की सैर।
2. किसी अधूरी कहानी को पूरा कीजिए।
3. भूख से मृत्यु।
4. जीवन के तीन कटु अनुभवों की शृंखला बनाइए।
5. लेखकीय जीवन।

(ख) अब तक के जीवन में आपको जो रचना सबसे ज्यादा पसंद आई हो, उसको ध्यान में रखकर बताइए कि आप उसे श्रेष्ठ रचना क्यों मानते हैं ?

1.1.14. कठिन शब्दावली

अनुभूति	:	देख-सुनकर या स्वानुभव के आधार पर जो ज्ञान या सम्वेदना प्राप्त की जाती है
शिल्प	:	रचना का वह पक्ष जिससे उसके बाहरी रूप की पहचान हो।
विधा	:	साहित्य के वे भेद जिनके आधार पर उनकी अलग रूपगत पहचान बनती है। जैसे कविता, कहानी, नाटक आदि।
रूप	:	वस्तु का आकार (सौन्दर्य)। यहाँ तात्पर्य कला के बाहरी रूप से है जिससे उसकी विशिष्टता की पहचान होती है।
प्रतिभा	:	संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार नवोन्मेषकारी शक्ति को प्रतिभा कहते हैं।
विषय-वस्तु	:	साहित्य की प्रत्येक रचना का कोई न कोई विषय अवश्य होता है और उस विषय को जिस देश, काल और परिस्थितियों के बीच आकर ग्रहण करते हुए प्रस्तुत किया जाता है, वही उसकी वस्तु है।

1.1.15. उपयोगी / सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. एन.सी.ई.आर.टी., (2008), सृजन-1, कक्षा 11 के लिए सृजनात्मक लेखन और अनुवाद की पाठ्यपुस्तक, ISBN 978-81-7450-899-7, पृष्ठ सं. 1-14
2. मुक्तिबोध, गजानन माधव, नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
3. गौतम, रमेश, (सं.) (2014), रचनात्मक लेखन, ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, ISBN: 978-93-263-5187-4, पृष्ठ संख्या 9-25

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/सृजनात्मकता
2. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
3. http://www.hindisamay.com/
4. http://hindinest.com/
5. http://www.dli.ernet.in/
6. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 1 : सृजनात्मक लेखन के सामान्य नियम

इकाई – 2 : रचना-प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

1.2.0. उद्देश्य कथन
1.2.1. प्रस्तावना
1.2.2. रचना-प्रक्रिया से तात्पर्य
1.2.3. रचना-प्रक्रिया के विभिन्न सिद्धान्त
    1.2.3.1. दैवी-प्रेरणा का सिद्धान्त
    1.2.3.2. अनुकरण का सिद्धान्त
    1.2.3.3. स्वच्छन्दतावादी सिद्धान्त
    1.2.3.4. कलावादी सिद्धान्त
    1.2.3.5. मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त
    1.2.3.6. यथार्थवादी सिद्धान्त
1.2.4. रचना-प्रक्रिया के बारे में मुक्तिबोध के विचार
1.2.5. पाठ सार
1.2.6. बोध प्रश्न
1.2.7. व्यवहार
1.2.8. कठिन शब्दावली
1.2.9. उपयोगी / सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1.2.0. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई सृजनात्मक लेखन की रचना-प्रक्रिया पर आधारित है। इस पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. रचना-प्रक्रिया का तात्पर्य समझ सकेंगे;
ii. रचना-प्रक्रिया से सम्बन्धित विभिन्न सिद्धान्तों का आशय जान सकेंगे;
iii. रचना-प्रक्रिया के विभिन्न चरणों की व्याख्या कर सकेंगे;
iv. रचना-प्रक्रिया के विषय में मुक्तिबोध और अज्ञेय के विचारों को जान सकेंगे।

1.2.1. प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने सृजनात्मक लेखन के अर्थ, क्षेत्र और महत्त्व के बारे में अध्ययन किया है। सृजनात्मकता क्या है, अब आप समझ गए होंगे। हमने आपको पहली इकाई में बताया है कि साहित्य के सृजन

की ओर उन्मुख होने के लिए साहित्यकार को किन-किन योग्यताओं को प्राप्त करना होता है। सृजनात्मकता कोई दैवीय वरदान नहीं है। यह तो आपकी ललक, दिलचस्पी और तैयारी पर निर्भर करेगा कि आप किस तरह के रचनाकार बनेंगे। निश्चय ही लेखन पर बाहरी दबावों का प्रभाव पड़ता है। लेकिन ये प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के होते हैं। मुख्य बात यही है कि रचना के लिए आपने अपने-आप को कितना तैयार किया है।

इस इकाई में हम रचना-प्रक्रिया पर विचार करेंगे। सृजनात्मकता की तरह रचना-प्रक्रिया की व्याख्या करना सरल नहीं है। चिन्तकों व साहित्यकारों ने रचना-प्रक्रिया की भिन्न-भिन्न ढंग से व्याख्यायित किया है। यहाँ हम कुछ प्रमुख अवधारणाओं का परिचय देंगे। रचना-प्रक्रिया की विभिन्न व्याख्याओं से आपको अपनी सृजनात्मक क्षमता को विकसित करने में मदद मिलेगी। रचना-प्रक्रिया की जाँच आप विभिन्न साहित्यिक कृतियों के आधार पर कर सकते हैं। आपको चाहिए कि आप साहित्य का अध्ययन करते हुए यह विचार करें कि उक्त रचना में रचना-प्रक्रिया का कौन-सा ढंग अपनाया गया है? क्या इस दृष्टि से उक्त रचना सफल कही जा सकती है? इससे आपको विभिन्न रचनाओं की श्रेष्ठता का मूल्यांकन करने में सहायता मिलेगी।

1.2.2. रचना-प्रक्रिया से तात्पर्य

किसी कृति का रचनाकार अपनी रचना के लिए विशेष प्रक्रिया से अवश्य गुजरता है। रचना-प्रक्रिया हर रचनाकार की अलग-अलग होती है। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि रचनाकार जो लिखना चाहता है, उसके लिए किस कला या विधा का चुनाव करता करता है। मान लीजिये कि कोई लेखक उपन्यास लिख रहा है तो हो सकता है कि उसका विषय उसे अपनी सोच की प्रक्रिया में सूझा हो, मगर अनेक स्रोतों से सामग्री जुटाता हुआ अपने समय के किसी बड़े सवाल से जोड़ता हुआ वह उसे अपने समय-समाज की विराट् कथा में बदल देता है। रचनाकार की रचना-प्रक्रिया को इसी सन्दर्भ में समझे जाने की आवश्यकता होती है। वैसे रचनाकार की रचना-प्रक्रिया बहुत जटिल होती है, क्योंकि हर लेखक का व्यक्तित्व, परिवेश, प्रतिभा, कलात्मक क्षमता, वर्ग-चरित्र इत्यादि अलग-अलग होते हैं। इसलिए हर लेखक की रचना दूसरे लेखक की रचना से अलग की जा सकती है। एक ही लेखक की दूसरी कृतियों की रचना-प्रक्रिया भी भिन्न हो जाती है।

आप जानते होंगे कि हर युग की रचनाओं की कुछ सामान्य विशेषताएँ होती हैं क्योंकि वे युगीन परिवेश और साहित्यिक आन्दोलनों से परिचालित होती है। लेकिन हरेक की अलग पहचान होती है। कबीर, सूर और तुलसी एक ही युग के कवि हैं। कुछ सामान्य विशेषताओं के बावजूद रचना के स्तर पर उनकी पहचान अलग हो जाती है। प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी स्वच्छन्दतावाद की विशेषताएँ लिये हुए हैं। फिर भी उनकी अपनी निजी विशेषताएँ हैं और वे उनके द्वारा स्वयं अर्जित भी हैं और प्रकृति प्रदत्त भी। बाहर से प्राप्त ज्ञानात्मक सम्वेदना रचनाकार के अन्तःकरण के आयतन ने अलग-अलग रूप ले लेती है। फिर रचनाकार अपनी निजी विशेषताओं के साथ उन्हें एक खास अंदाज में अभिव्यक्त करता है। यह खास अंदाज़ ही उसकी आत्माभिव्यक्ति है।

आइए, किसी एक साहित्यकार की किसी एक रचना की रचना-प्रक्रिया के बारे में रचनाकार के विचारों को जानें। प्रसिद्ध साहित्यकार संजीव अपनी रचना-प्रक्रिया को तीन चरणों में रखते हैं। पहले चरण में चीजें साफ-साफ समझ नहीं आती थीं, जिसने जैसा बताया वही मानकर चलता रहा। यानी परम्परा और विरासत में जो मन्त्र, तन्त्र और अन्धविश्वास भरी भक्ति संजीव को मिली, उसकी पट्टी को आँखों पर चढ़ाये वे एक अरसे तक कोल्हू के बैल की तरह परिक्रमा करते रहे, जिसकी धुरी थी, 'थोथा आदर्शवाद'। दूसरे चरण में बाह्य जगत् और मनोजगत् की जिज्ञासाओं और जानकारियों का संश्लेषण-विश्लेषण करना शुरू हुआ और उनकी दृष्टि धीरे-धीरे यथार्थवादी होती गई। स्वयं संजीव के शब्दों में– "मेरी दृष्टि यथार्थपरक बनती गई, मगर सब एक दिन में नहीं हुआ, कुछ तो धीरे-धीरे अपनी स्थिति के बदलने से और कुछ तो धक्कों से।" संजीव के लिए "लिखना महज एक मनोरंजन का साधन नहीं है बल्कि देश-काल, परिस्थितियों और इनका कारक शक्तियों के द्वन्द्व से गुजरने का एक रूहानी सफर था जो धीरे-धीरे स्वाध्याय, अनुभव और सम्वेदना से पुष्ट होता रहा।" उनकी हर रचना उनके लिए शोध की प्रक्रिया से गुजरती है। उन्होंने लिखा है – "लिखना मेरे खुद एक तनाव से गुजरने का कारण बना है और कितनी बार मुझे कितने 'ब्लैकहोल्स' में ले जाता है। मर्मान्तक और दमघोंटू एहसासों को झेलना पड़ा है। इसलिए मेरी हर रचना मेरे लिए शोध-प्रक्रिया से गुजरना है और लिखना मेरे लिए चौबीसों घण्टे की प्रक्रिया है, प्रश्न भी है, समाधान भी, यातना भी, और यातना से उठने का माध्यम भी, निपट एकान्त गुफा भी है और पछाड़ खाती भीड़ की झंझा में उतरने का साधन भी, हर पल तिल-तिल कर मरना भी है और मौत के दायरों के पार जाने का महामन्त्र भी।" 'सूत्रधार' उपन्यास बिदेसिया नाट्य-शैली के प्रवर्तक भिखारी ठाकुर को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। संजीव अपने वक्तव्य में लिखते हैं कि "मैं जिस विषय पर काम करना चाहता था उसे महेन्दर मिसिर को गीतों ने और भिखारी के नाटकों ने पहले से ही उपजीव्य बना रखा था।" इस कथन से स्पष्ट होता है कि वे भिखारी ठाकुर के व्यक्तित्व पर काम नहीं करना चाहते थे बल्कि उन्हें भोजपुरी क्षेत्र से प्रवास करने वाले प्रवासियों पर काम करना था। भिखारी ठाकुर ने परदेश में जाकर मजूरी किया और अपने दर्द एवं अपने प्रवासी भाइयों के दर्द को रचनात्मक रूप भी दिया था। संजीव ने भिखारी के माध्यम से बिदेसिया की हूक को अभिव्यक्ति देना चाहा। वे लिखते हैं – "सवाल सबाल्टर्न का नहीं था, नारी मुक्ति का भी नहीं, नवजागरण का भी नहीं, पराधीन भारत के भोजपुरी अंचल के सांस्कृतिक मिजाज का भी। लेकिन भिखारी ठाकुर को उठाते ही सारे-के-सारे सवाल कुनमुना कर ताकने लगे। अब मैं कह सकता हूँ कि हाँ वह एक युग था।" इस तरह आप समझ सकते हैं कि रचना अपनी रचना-प्रक्रिया के दौरान किस तरह मोड़ लेती जाती है। उस दौरान कई बार स्वयं लेखक को भी पता नहीं होता है कि उसकी रचना का स्वरूप क्या होगा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साहित्य की किसी भी विधा की रचना-प्रक्रिया और सृजन, अपने मन के अनुसार करना मानव स्वभाव का अंग है। रचना के रूप अलग हो सकते हैं, लेकिन सृष्टि, देश, समाज, परिवार, प्रकृति, अनुभूति और अभिव्यक्ति का कलात्मक आकलन ही सृजनात्मकता है। आत्माभिव्यक्ति रचना की पहली प्रक्रिया है। इस अभिव्यक्ति के कई माध्यम हो सकते हैं, शब्द, रंग, रेखाएँ किसी भी माध्यम से जिसमें रचनाकार को सहजता और सुविधा महसूस हो, रचना की जा सकती है। रचनात्मक लेखन का सृजन करने के लिए कोई

फार्मूला नहीं होता, उसके लिए अनुकूल परिस्थितियाँ और वातावरण, निरन्तर अभ्यास और लेखन की अनुभूति हो तो कोई भी व्यक्ति अच्छा लेखक बनने की कोशिश कर सकता है।

रचना-प्रक्रिया आत्मनिष्ठ वस्तु है जिस तक रचयिता के अलावा किसी की पहुँच नहीं होती है। रचना-प्रक्रिया का फल स्वयं रचना होती है। उस रचना को देखकर ही हम रचना-प्रक्रिया की समृद्धि और शक्ति के बारे में अनुमान लगा सकते हैं। रचना का विश्लेषण करते समय दो बातों को ध्यान में रखना होता है। एक, रचनागत बिम्बों और अर्थों की प्रकृति और विस्तार। दूसरे, वह दृष्टि, जो बिम्बों और अर्थों की एकता के सूत्र में ग्रन्थित करती है।

रचना-प्रक्रिया में वस्तुओं के पीछे निहित यथार्थ को समझना होता है। जीवन को एक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाता है। रचनात्मक श्रेष्ठता रचना की प्रक्रिया पर निर्भर करती है जिस रचनात्मक अनुभव को रचनाकार किसी विशेष क्षण में उपलब्ध करता है, वह भी एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम होता है। रचना-प्रक्रिया के प्रति जागरूक होने का अर्थ अपने परिवेश, समाज, परिवार के प्रति सचेत होना होता है।

1.2.3. रचना-प्रक्रिया के विभिन्न सिद्धान्त

रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में काव्यशास्त्र में चिन्तन की पूरी परम्परा है। यथा – दैवी प्रेरणा का सिद्धान्त, अनुकरण का सिद्धान्त, स्वच्छन्दतावादी सिद्धान्त, कलावादी सिद्धान्त, मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त, यथार्थवादी सिद्धान्त।

आइए, रचना-प्रक्रिया सम्बन्धी पाश्चात्य और भारतीय काव्यशात्र की परम्परा से परिचय प्राप्त करते हैं।

1.2.3.1. दैवी-प्रेरणा का सिद्धान्त

जिस तरह से भारतीय परम्परा वाल्मीकि के द्रवित होकर काव्य-सृजन की प्रक्रिया में प्रवृत्त होने का सिद्धान्त काव्य-प्रक्रिया का सबसे पुराना सिद्धान्त है, उसी तरह दैवी-प्रेरणा का सिद्धान्त पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा का सबसे पुराना सिद्धान्त माना जा सकता है। प्लेटो ने काव्य और कला पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि "काव्य का जन्म कवि के मनःविक्षेप से होता है – यह विक्षेप एक प्रकार की दैवी प्रेरणा का परिणाम होता है।" प्लेटो का यह मत किसी न किसी रूप में लम्बे समय तक स्वीकार किया जाता रहा है। यह माना जाता है कि कवि और कलाकार काव्य और कला की रचना एक विशेष तरह की मनःस्थिति में करते हैं और मनःस्थिति ईश्वर प्रदत्त होती है जो उन्हें रचना करने की प्रेरणा देती है। यह भी माना गया कि काव्य रचने के लिए लेखक में जो प्रतिभा होती है, वह जन्मजात होती है और ईश्वर प्रदत्त भी। इसे न तो सीखा जा सकता है और न ही निर्मित किया जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार रचना-प्रक्रिया एक रहस्यमय प्रक्रिया है जिसकी व्याख्या असम्भव है। लेखक क्यों लिखता है ! यह बताना नामुमकिन है। वह किसी आन्तरिक शक्ति के वश में आकर रचना करता है।

1.2.3.2. अनुकरण का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के भी प्रवर्तक प्लेटो रहे हैं। इस सिद्धान्त के पीछे नाटक का अनुभव है इसलिए भारत में भी यह भरत के समय से मौजूद है। प्लेटो के इस सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति सत्य का अनुकरण है और कला उस प्रकृति का अनुकरण है। इसलिए रचना सत्य से दुगुना दूर होती है। अरस्तु भी मानते थे कि कलानुभव मनुष्य के अनुकरण करने की प्रवृति का नतीजा होता है। लेकिन उन्होंने सत्य से दुगुना दूर नहीं, बल्कि रचना को मूल वस्तु का पुनरुत्पादन माना। रचना मूल वस्तु की पुनरुत्पादन तो है किन्तु उसके मौलिक रूप में नहीं, बल्कि उस रूप में जैसी वह ज्ञानेन्द्रियों को प्रतीत होती है। कहने का अभिप्राय यह है कि कोई वस्तु जैसी रहती है उसी रूप में रचना में अभिव्यक्त नहीं होती है। बल्कि ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से मन पर उसका जो अंकित होता है, उसी के अनुरूप वह रचना में अभिव्यक्त होती है, अर्थात् रचना वस्तु का प्रतिफलन नहीं, कलाकार के मनोगत बिम्ब का प्रतिफलन है। रचना मानव जीवन का आदर्शीकृत प्रतिरूपण है। इस प्रकार अनुकरण किसी एक अर्थ का वाचक नहीं है, उसका पूर्ण अर्थ कई तत्त्वों के योग से व्यक्त होता है – जिनमें प्रमुख है, पुनरुत्पादन, मानस बिम्ब, जीवन का सामान्य और आदर्श-पक्ष।

अनुकरण का यह सिद्धान्त अपने मूलरूप में अब भी सही है लेकिन इस सिद्धान्त की सीमा यह है कि यह मूलवस्तु और पुनःसृजित रचना के बीच की प्रक्रिया के बारे में कुछ नहीं बताता है। और न ही इस प्रश्न का उत्तर देता है कि कवि अनुकरण क्यों करता है ? आखिर कवि रचना में मूलवस्तु में नया क्या जोड़ता है और क्यों जोड़ता है ? क्या मूलवस्तु के स्वरूप में भी कुछ संशोधन करताहै ? इन सवालों का जबाब रचना को केवल अनुकरण मानकर नहीं पाया जा सकता।

1.2.3.3. स्वच्छन्दतावादी सिद्धान्त

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ का कविता के बारे में महत्त्वपूर्ण कथन है कि "कविता उच्छल आवेगों की स्वतःस्फूर्त अभिव्यक्ति होती है।" वर्ड्सवर्थ के इस कथन के अनुसार भावप्रवणता ही काव्य का उत्स है। रोमांटिक कवि यह मानते थे कि सृजन के क्षणों में रचनाकार बाहरी प्रभावों से मुक्त होता है और वह प्रकृति की तरह सहज स्वाभाविक प्रक्रिया होती है। यह सिद्धान्त कविता में अलंकारिता को उचित नहीं मानता। इसके सन्दर्भ में यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि इस सिद्धान्त में रचना के सन्दर्भ में अनुभूति को प्रधान तत्त्व माना जाता है। इसके अलावा, इस सिद्धान्त में कल्पना को साहित्य रचना के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इन उल्लेखों से पता चलता है कि कविता की रचना को भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति मानने का सिद्धान्त भी काव्य और कला में लम्बे समय से रहा है। यह अकेला ऐसा सिद्धान्त है जो रचना-प्रक्रिया के सन्दर्भ में कल्पना के महत्त्व को स्वीकार करता है, लेकिन यथार्थ का अस्वीकार इसकी सीमा कही जा सकती है।

कविता में आत्मतत्त्व की प्रधानता मानने के कारण स्वच्छन्दतावादी अनुभूति और भावावेग पर विशेष बल देते हैं। वर्ड्सवर्थ ने न केवल विषय की बल्कि अभिव्यंजना की सरलता और स्वाभाविकता पर बल दिया। वे

कविता में प्रकृति और गरमी जीवन के महत्त्व को इसीलिए स्वीकार करते हैं क्योंकि वहाँ का जीवन सरल और स्वाभाविक होता है। सरलता और स्वाभाविकता के कारण ही वे कविता में साधारण बोलचाल की भाषा पर बल देते हैं। शैली में भी सरलता और स्वाभाविकता का आग्रह है।

स्वच्छन्दतावादी सिद्धान्त का दूसरा योगदान है – 'अनुभूति पर बल देना।' अनुभूति तत्त्व विचार और चिन्तन तत्त्व पर हावी है। अनुभुत्ति के समान ही विचार और चिन्तन तत्त्व की आवश्यकता होती है।

इस सिद्धान्त का तीसरा योगदान है – 'कल्पना तत्त्व की प्रधानता।' केवल अनुभुत्ति या भावनाओं के आवेग से कविता की सृजन नहीं होता है उसके लिए कवि में कल्पना शक्ति का होना भी आवश्यक है। कल्पना शक्ति से कवि वस्तुओं को नया रूप देता है, अपनी भावनाओं के लिए उपयुक्त शब्द खोजता है। कल्पना शक्ति यथार्थ की जगह नहीं ले सकती लेकिन इसके बिना यथार्थ पंगु है।

इस सिद्धान्त की कमी यह है कि यह सिद्धान्त यह नहीं बताता है कि किस तरह की भावनाएँ रचना के उपयुक्त होती हैं। क्या भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त भाषा-शैली भी उतने ही सहज रूप में प्रकट हो जाती है या कवि को इसके लिए प्रयत्न करना पड़ता है।

1.2.3.4. कलावादी सिद्धान्त

कला कला के लिए सिद्धान्त कलावादी सिद्धान्त है। कलावादी इस बात को स्वीकार नहीं करते कि कला का कोई बाहरी उद्देश्य हो सकता है। कलावादियों ने सबसे अधिक महत्त्व कला के बाहरी अंगों अर्थात् भाषा और शैली को दिया है और उसे ही कला या काव्य की आत्मा माना है। वाल्टर पीटर के अनुसार "उत्कृष्ट शैली सामान्य से सामान्य विषय को महत्त्वपूर्ण बना देती है। इसलिए किसी भी कलाकार के लिए सार्थक और समर्थ शैली की साधना ही एक मात्र साधना है।" पीटर ने यह भी कहा है कि "सच्ची कला यानी आदर्श कला वही हो सकती है जिसके अन्तर्गत विषय-वस्तु और रूप-विचार परस्पर एकाकार हो उठे।" पीटर ने शब्द साधना को भी महत्त्वपूर्ण माना है। इसके लिए कठोर अध्यवसाय को आवश्यक बताया है। उनके अनुसार "शैली की समस्या उपयुक्त शब्द, उपयुक्त रूपक, उपयुक्त काव्य, उपयुक्त भाषा पा सकने की समस्या है और यदि कलाकार इस उपलब्धि को पाने में सफल हो जाता है तो उसकी कला श्रेष्ठ रूप में अभिव्यक्त होती है।"

इटली के प्रसिद्ध सौन्दर्यशास्त्री बेनेडेटो क्रोचे का विचार है कि "कला और अभिव्यंजना मूलतः एक ही हैं।" क्रोचे कला को एक मानस व्यापार मानते हैं। उन्होंने मन के व्यापार को दो भागों में बाँटा है – धारणा और बिम्ब-निर्माण। कला का सम्बन्ध बिम्ब-निर्माण से है। कला की विषयवस्तु ही सहज ज्ञान है। उनके अनुसार "कला में सहज ज्ञान यानी अन्तःप्रेरणा के अतिरिक्त कुछ नहीं है, यह अन्तःप्रेरणा ही सर्वस्व है। कलाकार अपनी अन्तःप्रेरणा द्वारा ही कला-सृजन में प्रवृत होता है और अपनी कल्पना का आश्रय लेकर वस्तुतः उसे ही अभिव्यंजित करता है।" सफल अभिव्यंजना को ही उन्होंने श्रेष्ठ कला माना है।

1.2.3.5. मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

कला सृजन के सन्दर्भ में इस सिद्धान्त को युगान्तकारी माना जाता है। सिग्मंड फ्रायड साहित्य को अवचेतन मन की अभिव्यक्ति मानते हैं। उनके अनुसार "समस्त कला-सृजन के मूल में रचनाकार की दमित और कुण्ठित कामवृत्तियाँ होती हैं। अनेक प्रकार की वर्जनाओं के कारण ये भावनाएँ कलाकार के अवचेतन मन में दबी रहती हैं और अवसर आने पर कला या साहित्य के माध्यम से उनको अभिव्यक्ति मिलती है। कलाकार अपनी प्रतिभा के द्वारा अपनी अतृप्त वासनाओं को इस प्रकार का छद्म रूप देता है जो समाज की दृष्टि में ग्राह्य हो जाती हैं। रचनाकार की रचना इसी कारण सौन्दर्य और आनन्द प्रदान करती है, क्योंकि उस कला के अन्तर्गत हम अपनी दमित वासनाओं व भावनाओं की सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति देखते हैं।" फ्रायड के विपरीत प्रसिद्ध मनोवेता एडगर कला का मूल काम-प्रवृतियों में न देखकर हीनता-भाव में देखते हैं – "कलाकार सामाजिक दृष्टि से एक दुर्बल और अनुपयोगी प्राणी होता है। कला-सृजन के द्वारा वह एक तरह से अपनी उपयोगिता प्रमाणित करने का प्रयास करता है।" एक अन्य मनोवेत्ता कार्ल युंग कला के मूल में एक प्रकार का द्वन्द्व मानते हैं, जो एक स्तर पर उसे अपने वैयक्तिक आकांक्षाओं की तुष्टि के लिए उत्प्रेरित करता है और दूसरे स्तर पर समस्त मानवता अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए सर्जना के लिए ललकारता है। युंग कला के मूल में व्यक्ति के अवचेतन की स्थिति को को स्वीकार न कर सामूहिक अवचेतन की बात करते हैं, जिसका सम्बन्ध प्राणीमात्र से है।

1.2.3.6. यथार्थवादी सिद्धान्त

यथार्थवादी सिद्धान्त के अनुसार साहित्य सजग मानस व्यापार की उपज है। रचना क्षणों में नहीं की जाती है, बल्कि कोई भी रचना दीर्घकालीन मनन के पश्चात फूटती है। रचनाकार के मन में रचना-प्रक्रिया चलती रहती है और जब रचनाकार उस रचना को लेकर किसी उद्देश्य पर पहुँचता है तब रचना पैदा होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार यह माना जाता रहा है कि साहित्य सामाजिक सत्य का वाहक होता है। रचना के द्वारा रचनाकार हमारे किसी ऐसे सामाजिक सत्य का उद्घाटन करता है जो मनुष्य के लिए हितकर होता है। इसलिए रचनाकार की रचना-प्रक्रिया में यह चलता रहता है कि साहित्य का कौन-सा सत्य 'बहुजन हिताय' होगा।

1.2.4. रचना-प्रक्रिया के बारे में मुक्तिबोध के विचार

रचना-प्रक्रिया के बारे में हिन्दी के कवियों ने भी समय-समय पर विचार किये हैं। ये विचार भी किसी न किसी रूप में उपर्युक्त दिए गए सिद्धान्तों के दायरे में ही आते हैं। मुक्तिबोध के विचार भाववादी सिद्धान्तों के विपरीत विवेकपूर्ण है। मुक्तिबोध रचना-प्रक्रिया के बारे में लिखते हैं – "रचना-प्रक्रिया वस्तुतः एक खोज और ग्रहण का नाम है। अभिव्यक्ति के कार्य के दौरान कवि नई खोज भी कर लेता है।" इस खोज के दौरान आत्मसंघर्ष की एक लम्बी प्रक्रिया चलती है। कवि मुक्तिबोध ने अपने लेखन में रचना-प्रक्रिया को तीन क्षणों की यात्रा माना है। "कला का पहला क्षण है – 'जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण।' दूसरा क्षण है– 'इस अनुभव का कसकते-दुखते हुए मूलों से पृथक् हो जाना, और एक ऐसी फ़ैंटेसी का रूप धारण कर लेना, वह आँखों के सामने खड़ी हो।'

तीसरा और अन्तिम क्षण है – 'इस फ़ैंटेसी के शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्ण अवस्था तक की गतिमानता।' शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर जो प्रवाह बहता रहता है, वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह होता है। प्रवाह में फ़ैंटेसी अनवरत रूप से विकसित-परिवर्तित होते हुए आगे बढ़ती है। इस प्रकार वह फ़ैंटेसी अपने मूल रूप को बहुत कुछ त्यागती हुई नवीन रूप धारण करती है। जिस फ़ैंटेसी को शब्दबद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है, वह फ़ैंटेसी अपने मूल से इतनी दूर चली जाती है कि यह कहना कठिन है कि फ़ैंटेसी को शब्दबद्ध करने की प्रक्रिया के दौरान जो-जो सृजन होता है – जिसके कारण कृति क्रमशः विकसित होती जाती है, वही कला का तीसरा और अन्तिम क्षण है।"

कविता की रचना-प्रक्रिया के सन्दर्भ में मुक्तिबोध द्वारा फैंटेसी की परिकल्पना बहुत महत्त्वपूर्ण है। फैंटेसी के जरिये उन्होंने यथार्थ की अभिव्यक्ति को व्याख्यायित करने की कोशिश किया है। कविता की रचना-प्रक्रिया के पहले क्षण में जीवन के उत्कट तीव्र अनुभव को ही वह अभिव्यक्ति के पर्याप्त नहीं समझते, न ही केवल यथार्थ के अनुभव मात्र को काव्य रचना के लिए सम्भावना के रूप में देखते हैं। उनका मानना है कि जब अनुभव अपने मूल से अलग होकर फ़ैंटेसी का रूप धारण करता है तब उनमें काव्य-सृजन की क्षमता उत्पन्न होती है। अनुभव का अपने मूल से अलग होने का मतलब है, 'अनुभव की निजबद्धता का समाप्त होना।' निजबद्धता से रहित अनुभव ही फ़ैंटेसी रूप में कल्पित होती है।

मुक्तिबोध के इस बात से दो बातें निकलती हैं। एक, कवि का अनुभव जब तक निजबद्ध रहता है तब तक उसमें फ़ैंटेसी के रूप में परिवर्तित होने की क्षमता उत्पन्न नहीं होती। दूसरी, निजबद्धता रहित अनुभव कवि के मानस में फ़ैंटेसी का रूप धारण कर यथार्थ के रूप में परिवर्तित होता है। यह यथार्थ शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया में अभिव्यक्ति के स्तर पर भाषा और रूप के कारण फिर एक बार रूपान्तरित होता है और तब वह कला रचना के रूप में पूरी होती है। उस अनुभव से रचनाकार सम्वेदना ग्रहण करता है। साहित्यकार विश्वनाथ त्रिपाठी ने अनुभव से सम्वेदना के जुड़ाव के विषय में लिखा है – "सम्वेदना अनुभव से जुड़ी होती है। दूसरों के कष्ट को कल्पना से हम अपना लेते हैं। इस कल्पना का आधार हमारा अपना अनुभव होता है। कल्पना अनुभव की भी की जाती है कि हम इस स्थिति में हों तो कैसा लगेगा।"

रचना-प्रक्रिया को लेकर अज्ञेय कुछ भिन्न दृष्टि रखते थे। उनके अनुसार "रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में केवल रचयिता का पक्ष प्रस्तुत करके छोड़ देना काफी नहीं है। ग्रहीता, पाठक या सामाजिक के पक्ष का विचार भी साथ होना चाहिए क्योंकि रचना-प्रक्रिया सम्प्रेषणीयता की भी सृष्टि करती है। यह ध्यान देने की बात है कि अनुभूति के समय पर अनुभोक्ता के अलग-अलग संस्कार अनुभूति को एक विशिष्ट रंगत देते हैं। बीते अनुभवों की स्मृतियाँ, नयी-पुरानी ऐसी अनेक बातें हैं जो गृहीता की अनुभूति का निरूपण, निर्देशन और नियमन करती हैं। क्योंकि किसी एक व्यक्ति के जीवन का संचित अनुभव किसी दूसरे के संचय से सौ प्रतिशत एक रूप नहीं हो सकता, इसलिए एक ही अनुभूति दूसरे की अनुभूति पूरी तरह नहीं हो सकती।

1.2.5. पाठ सार

रचना-प्रक्रिया हर लेखक की अलग-अलग होती है। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि रचनाकार जो लिखना चाहता है उसके लिए किस विधा का चुनाव करता करता है। रचनाकार जब अपने अनुभवों की कला के किसी ख़ास रूप-विधान को जिस प्रक्रिया में अभिव्यक्त करता है, उसे ही रचना-प्रक्रिया कहते हैं।

रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में कई सिद्धान्त प्रचलित हैं। रचना की क्षमता ईश्वर की प्रेरणा से आने वाली दैवी प्रेरणा का सिद्धान्त हुआ, वास्तविक अनुभवों के अनुकरण कर सृजन की कला अनुकरण सिद्धान्त है, तीव्र भावनाओं की स्वतःस्फूर्त अभिव्यक्ति की कला स्वच्छन्दतावादी सिद्धान्त है, केवल आनन्द और सौन्दर्य-दृष्टि के निहितार्थ रचना कलावादी सिद्धान्त के रूप में हुई, मनुष्य की दमित भावनाओं की अभिव्यक्त देने वाली रचना मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार हुई, और जिस रचना में जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त मिली, वह यथार्थवादी सिद्धान्त के तहत हुआ।

रचना-प्रक्रिया के बारे में मुक्तिबोध ने तीन क्षणों का सिद्धान्त उस मानसिक प्रक्रिया का विश्लेषण करता है जो रचना के दौरान घटित होता है। पहले क्षण में रचना का पहला क्षण जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरे क्षण में उस तीव्र अनुभव के कसकते-दुखते हुए मूलों से अलग होकर फ़ैंटेसी का रूप धारण करना और तीसरे क्षण में इस फ़ैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया होती है। इसी क्षण में अभिव्यक्ति अपना मूर्त रूप धारण करती है।

1.2.6. बोध प्रश्न

अभ्यास

1. निम्नलिखित रचनाकारों के लेखन के आधार पर बताइए कि उनका लेखन रचना-प्रक्रिया के किस सिद्धान्त के अधिक निकट है –
   (क) फणीश्वरनाथ रेणु
   (ख) सुमित्रानन्दन पन्त
   (ग) इलाचन्द्र जोशी
   (घ) बिहारी

2. 'अ' और 'ब' में सही मिलान कीजिए –

'अ'		'ब'	
(क)	अनुकरण का सिद्धान्त	(i)	प्रेमचंद
(ख)	स्वच्छन्दतावादी सिद्धान्त	(ii)	इलाचन्द्र जोशी
(ग)	यथार्थवादी सिद्धान्त	(iii)	बिहारी
(घ)	मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त	(iv)	मुकुटधर पाण्डेय

3. निम्नलिखित कथनों के आधार पर बताइए कि ये कथन रचना-प्रक्रिया के किन सिद्धान्तों को व्यक्त करते हैं ?
   (क) प्रतिभा ईश्वर प्रदत्त गुण है और काव्य की रचना इसी का परिणाम है।
   (ख) कला की समस्या उपयुक्त भाषा और शैली को अपनाने की समस्या है।
   (ग) कला वस्तुजगत् का अनुकरण है।
   (घ) रचना तीव्र भावावेगों की स्वतःस्फूर्त अभिव्यक्ति है।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. रचना-प्रक्रिया के तीन महत्त्वपूर्ण बिन्दु कौन-कौनसे हैं ?
2. रचना-प्रक्रिया के विषय में अज्ञेय का क्या विचार है ?
3. रचना-प्रक्रिया के बारे में अरस्तु के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
4. मुक्तिबोध ने रचना-प्रक्रिया को कितने क्षणों में विभाजित किया है ?
5. फैंटेसी से आप क्या समझते हैं ?
6. "रचना तीव्र भावावेगों की स्वतःस्फूर्त अभिव्यक्ति है।" यह कथन किसका है ? रचना-प्रक्रिया के इस सिद्धान्त को क्या कहा जाता है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. रचना-प्रक्रिया का अर्थ स्पष्ट करते हुए किसी रचनाकार की किसी एक रचना की रचना-प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए।
2. रचना-प्रक्रिया के विभिन्न सिद्धान्तों के बारे विस्तार से लिखिए।
3. सभी रचनाकारों की रचना-प्रक्रिया अलग-अलग क्यों होती है ? इस प्रश्न का मूल कारण बताइए।
4. मुक्तिबोध ने रचना-प्रक्रिया के बारे में क्या विचार व्यक्त किए हैं ? स्पष्ट कीजिए।

1.2.7. व्यवहार

1. एक लेखक के रूप में आप अपनी रचनात्मक प्रतिक्रिया किस रूप में व्यक्त करना चाहेंगे ?

1.2.8. कठिन शब्दावली

स्वच्छन्दतावाद	:	अंग्रेजी के रोमांटिसिज़्म का हिन्दी रूप। भावों की स्वच्छन्द और उन्मुक्त अभिव्यक्ति। हिन्दी में छायावाद और श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी आदि की कविताएँ।
कलावाद	:	कलापक्ष पर विशेष बल देना, वस्तु के तुलना में कला को महत्त्वपूर्ण मानना तथा कला, कला के लिए सिद्धान्त में विश्वास करना कलावाद है।

यथार्थवाद	:	साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त जिसके अनुसार जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति ही साहित्य का लक्ष्य है।
प्लेटो	:	(427 ई.पू. – 347 ई.पू.) प्रसिद्ध यूनानी विचारक सुकरात के शिष्य, दार्शनिक और विचारक। रिपब्लिक ग्रन्थ के लेखक।
अरस्तु	:	(384 ई.पू. – 322 ई.पू.) प्लेटो के शिष्य। प्रसिद्ध दार्शनिक और विचारक।
वर्ड्सवर्थ	:	(1770 – 1850 ई.) विलियम वर्ड्सवर्थ अंग्रेज़ी के रोमांटिक धारा के प्रसिद्ध कवि। लिरिकल बैलेड के रचनाकार।
कल्पना	:	पूर्व अनुभूतियों की पुनर्योजना से अपूर्व की अनुभूति उत्पन्न करने की क्रिया या शक्ति को कल्पना कहते हैं। (साहित्य कोश)
शैली, पी.बी.	:	(1792 – 1822 ई.)। अंग्रेजी की रोमांटिक काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि। 'इस्लाम का विद्रोह' (काव्यकृति) और 'इन डिफेन्स ऑफ़ पोएट्री' के रचनाकार।
बेनेडेटो क्रोचे	:	(1866 – 1952 ई.)। इटली के प्रसिद्ध दार्शनिक। अभिव्यंजनावाद सिद्धान्त के प्रवर्तक।
सहज ज्ञान	:	अंग्रेज़ी शब्द Intitution का हिन्दी अनुवाद।
गृहीता	:	रचना का आस्वादन करने वाला अर्थात् पाठक, दर्शक या श्रोता।
सिंगमंड फ्रायड	:	(1856 – 1939 ई.)। मनोविश्लेषणवाद के प्रवर्तक। आधुनिक मनोविज्ञान के प्रमुख सिद्धान्तों को प्रस्तुत करने का श्रेय फ्रायड को ही है।
शब्द-संयोग	:	विभिन्न शब्दों का ऐसा संयोग जो किसी खास अर्थ को ध्वनित करे।
ज्ञान-दृष्टि	:	विवेक से उत्पन्न दृष्टिकोण।
फैंटेसी	:	स्वप्न-चित्र। जिस प्रकार स्वप्न में जो बिम्ब मस्तिष्क में उभरते हैं, उसी तरह कविता में भी चित्रों (बिम्बों) का उभरना। यह भी एक प्रकार की मानसिक प्रक्रिया है जो वस्तुस्थितियों की प्रतिक्रिया से निर्मित होती है।

1.2.9. उपयोगी / सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. गौतम, रमेश, (सं.) (2014), रचनात्मक लेखन, ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, ISBN: 978-93-263-5187-4, पृष्ठ संख्या 9-25
2. मुक्तिबोध, गजानन माधव (1988), एक साहित्यिक की डायरी, दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ
3. संजीव, (जून 1999), मैं और मेरा समय, कथादेश, दिल्ली, पृष्ठ 6
4. संजीव, भिखारी ठाकुर की खोज में, (सहारा समय, 20 सितम्बर, 2002)
5. लीलाधर जगूड़ी, (2013), रचना-प्रक्रिया से जूझते हुए, (दिल्ली : वाणी प्रकाशन, ISBN 978-93-5229-049-9, भूमिका
6. त्रिपाठी, विश्वनाथ, (प्र. सं. 2000), देश के इस दौर में, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, ISBN 81-7178-855-6, पृष्ठ- 20

7. शर्मा, देवेन्द्रनाथ (2002), पाश्चात्य काव्यशास्त्र, नोएडा, मयूर पेपरबैक्स, ISBN 81-7198-073-2, पृष्ठ सं. 1-19

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://gadyakosh.org/gk/कविता_की_रचना_प्रक्रिया_और_सर्जनात्मकता_/_अनीता_कपूर
2. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
3. http://www.hindisamay.com/
4. http://hindinest.com/
5. http://www.dli.ernet.in/
6. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 1 : सृजनात्मक लेखन के सामान्य नियम

इकाई – 3 : रचना का उद्देश्य : स्वरूप की प्राप्ति

इकाई की रूपरेखा

1.3.0. उद्देश्य कथन
1.3.1. प्रस्तावना
1.3.2. रचना का कारण
    1.3.2.1. तात्कालिक प्रेरणा
    1.3.2.2. दीर्घकालिक प्रेरणा
1.3.3. रचना का उद्देश्य
    1.3.3.1. स्वान्तःसुखाय
    1.3.3.2. यश की प्राप्ति
    1.3.3.3. अर्थ की प्राप्ति
    1.3.3.4. सामाजिक परिवर्तन
1.3.4. स्वरूप की प्राप्ति
1.3.5. पाठ सार
1.3.6. बोध प्रश्न
1.3.7. व्यवहार
1.3.8. कठिन शब्दावली
1.3.9. उपयोगी / सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1.3.0. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई में रचना के उद्देश्य और स्वरूप की प्राप्ति पर विचार किया गया है। इस पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. रचना के पृष्ठभूमिगत कारणों को समझ सकेंगे।
ii. आप अंदाजा लगा सकेंगे कि रचना क्यों लिखी जाती है।
iii. रचना और पाठक के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
iv. रचना से लेखक कौन-सा काम लेना चाहता है और रचनाकार के वास्तविक उद्देश्य से आप परिचित हो सकेंगे।
v. रचना, रचनाकार और पाठक के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें जान सकेंगे, जो एक रचनाकार के लिए ज़रूरी है। इससे आप अपना लेखकीय व्यक्तित्व निर्मित कर सकेंगे।
vi. रचनात्मक कार्य करने में माध्यम और लक्ष्य का सही बोध विकसित होगा।
vii. उद्देश्य के अनुकूल सृजनात्मक दृष्टि का ज्ञान मिलेगा।

1.3.1. प्रस्तावना

सृजनात्मक लेखन पाठ्यचर्या के पहले खण्ड की यह तीसरी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने रचना-प्रक्रिया को समझा और उसके विभिन्न सिद्धान्तों से परिचित हुए। अब इस इकाई में आप रचना के कारण, रचना का उद्देश्य तथा स्वरूप की प्राप्ति के बारे में पढ़ेंगे। आप जानते हैं कि रचनाकार के नाते रचना लिखने के पीछे कुछ न कुछ कारण अवश्य रहता है। ये कारण कौन-कौन से हैं, यहाँ इस पाठ में आपको इसकी जानकारी मिलेगी। कभी-कभी आपको कोई तात्कालिक अनुभव, घटना या प्रसंग बेचैन करता है और आप उसे अभिव्यक्त करने से स्वयं को रोक नहीं पाते हैं। आप पर जो गुजरती है, उसे आप तुरन्त नोट कर लेते हैं। फिर, यह भी होता है कि आप बहुत दिनों से किसी विषय पर, जीवन के किसी पक्ष पर सोचते रहे हैं, तैयारी कर रहे हैं, नोट ले रहे हैं, ज़रूरी किताबें पढ़ रहे हैं, यात्राएँ कर रहे हैं और तब एक दिन लिखने बैठते हैं। यानी आपके लिखने का सम्बन्ध आपकी पूरी जीवन-यात्रा और जीवन-दृष्टि से है।

इस इकाई में यह भी विचार किया गया है कि लेखक क्यों लिखता है ? आप खुद भी सोच के देखिए कि आप क्यों लिखना चाहते हैं। क्या इसलिए कि लोग आपको जानें और सम्मान दें और आप पैसा भी कमाएँ ? या इसलिए कि आपको लिखने से सुख मिलता है, नितान्त निजी सुख ? या इसलिए कि आप अपने लेखन से समाज में बदलाव लाना चाहते हैं। इसके साथ ही यहाँ इस सवाल पर भी विचार किया गया है कि लेखक किस तरह के पाठकों को ध्यान में रखकर अपनी रचना लिखता है। विद्वानों के लिए, सामान्य पढ़े-लिखे लोगों के लिए या फिर आम पाठकों के लिए या फिर किसी खास व्यक्ति की रुचि के लिए। प्रसिद्ध कथाकार निर्मल वर्मा के इस कथन पर गौर कीजिए – "अब मैं सोचता हूँ तो समझ आता है, हमारी चीज़ों को चाहे बहुत लोग पढ़े, किन्तु हम लिखते बहुत कम लोगों के लिए हैं। मैं जिन लोगों को ध्यान में रखकर लिखता था उनमें रेणु प्रमुख थे।" ('कला के जोखिम' से)

फिर यह भी विचार किया गया है कि रचना से लेखक क्या चाहता है, क्या लेखक का काम सिर्फ लिखकर ही समाप्त हो जाता है या अपनी रचना के बाद भी उसका सरोकार बना रहता है ? लेखक चाहता है कि उसकी रचना ज्यादा से ज्यादा लोगों को आनन्द दे। लेखक चाहता है कि उसकी रचना स्वयं उसके व्यक्तित्व को व्यक्त करे और सृष्टि के साथ व्यक्ति के तादात्म्य को उजागर करे। लेखक अपनी रचना से शोहरत और धन कमाना भी चाह सकता है और अपनी रचना से सामाजिक परिवर्तन की भी कामना कर सकता है।

इस तरह हम समझ सकते हैं कि लेखक के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि वह किसी एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए रचना करता है। वह एक साथ कई उद्देश्यों से प्रेरित होकर लिखता है। इसके साथ ही सवाल उद्देश्य को सृजनात्मक रूप देने का भी है। इस इकाई में यह भी बताया गया है कि महान उद्देश्य के रचनाकार उद्देश्यानुकूल विषयवस्तु, विधा और भाषा-शैली का चयन करते हैं जिससे रचना लोकप्रिय साहित्य की श्रेणी में न आकर साहित्य के श्रेणी में रखी जा सके।

1.3.2. रचना का कारण

सवाल यह है कि कोई रचना कैसे लिखी जाती है ? क्यों किसी खास क्षण में लेखक कलम उठाकर रचना करता है ? इस प्रश्न के उत्तर में बहुत से लेखक अपनी प्रतिक्रिया कुछ इस प्रकार देते हैं – "लिखने का मूड बन गया", "सरस्वती की कृपा हो गई" या फिर "धीरे-धीरे नियमित लेखन चल रही है।" इसके बावजूद, लिखने के लिए प्रेरणा की ज़रूरत होती है। दो तरह ही प्रेरणा हो सकती है – तात्कालिक और दीर्घकालिक। आइए, इन पर विचार करते हैं।

1.3.2.1. तात्कालिक प्रेरणा

कोई घटना, कोई अनुभव आपको हिला देता है। जब आदमी ने पहली बार चाँद पर पाँव रखा तो ठीक उसी वक़्त बहुत से कवियों ने कविताएँ लिखीं। तात्कालिक प्रेरणा का महत्त्व यह है कि वह लेखक को तत्काल सृजन के लिए प्रेरित करती है। रचना-प्रक्रिया पर विचार करते हुए हमने स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण के बारे में बताया था कि इसके अनुसार काव्य की उत्पत्ति शक्तिशाली भावावेगों की स्वतःस्फूर्त अभिव्यक्ति से होती है। इसका अर्थ यही है कि जब आप के मन में कोई भाव या विचार अभिव्यक्ति के लिए उमड़ता है तो उसकी अभिव्यक्ति उसी समय होने पर ही वह उत्कर्ष अभिव्यक्ति होती है। क्रोंच युगल वाले प्रसंग में भी श्लोक की अभिव्यक्ति वाल्मीकि से मुख से उसी क्षण हुई थी –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम्॥

(रामायण, बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग, श्लोक 15)

यह भी तात्कालिक प्रेरणा का ही उदाहरण है। युद्ध के समय या किसी ऐसे समय जब पूरा देश या समाज किसी गहरे संकट से घिरा होता है तब भी बहुत से कवि लेखक रचनाएँ लिखते हैं। इन्हें ही हम तात्कालिक प्रेरणा कह सकते हैं। तात्कालिक प्रेरणा से लिखी गई रचना प्रभावशाली हो, यह कोई ज़रूरी नहीं है। बल्कि इसके विपरीत वे अल्पजीवी साबित होती हैं। तात्कालिक प्रेरणा से उत्पन्न वे ही रचनाएँ स्थायी बन पाती हैं जिनके पीछे रचनाकार की दीर्घ साधना छुपी होती है।

1.3.2.2. दीर्घकालिक प्रेरणा

अंग्रेज़ी भाषा के कवि एज़रा पाउंड ने कहा था कि "लेखक समाज का एंटीना होता है। वह हर संवेग, हर सन्देश को ग्रहण करता है और समय आने पर इन्हीं तरंगों को नये रूप में समाज को वापस कर देता है।" यह क्रिया लगातार चलती रहती है। रचना तो एक विशेष क्षण में घटित होती है, लेकिन उसके पहले की सारी क्रिया मानस में निरन्तर चल रही होती है। इसमें लेखक की जीवन-दृष्टि का बड़ा महत्त्व होता है। वह किसे महत्त्व देता है, कौन-सी बातें उसे ज़्यादा ज़रूरी लगती हैं इत्यादि। इसीलिए कई लेखक पहले से योजना बनाकर लिखते हैं। लेकिन वे

भी लिखने के क्षण का इंतज़ार करते हैं । अज्ञेय लिखते हैं – "साहित्य की प्रेरणा करने वाली मूल शक्ति साहित्यकार की एक आन्तरिक विवशता है।" ('सर्जन और सन्दर्भ' से)

बिना एक विशेष मनोदशा के रचना नहीं हो पाती । हालाँकि इसके लिए भी एक लेखक को लगातार सजग और सक्रिय रहना पड़ता है। चार्ल्स डार्विन अपनी प्रसिद्ध किताब 'दी ओरिजिन ऑफ़ स्पीशीज़' में लिखते हैं कि "जो इंस्टिंक्ट या संवेग है वे भी वास्तव में संकलित आदतें हैं एक्वायर्ड हैबिट्स। इसलिए आपको रचना का क्षण सिर्फ़ इंतज़ार नहीं करना है, बल्कि उसे बुलाना भी है।" बच्चनजी कहते हैं कि "साहित्य के पौधे को हमेशा पटाते रहना चाहिए, नहीं तो इसे सूखते देर नहीं लगती।" कोई भी तात्कालिक घटना बस बहाना होती है। सारी सामग्री इकट्ठा रहती है, एक विशेष अनुभव, स्थिति या घटना केवल उसे उकसा देती है । वैज्ञानिकों का कहना है कि एकदम शुरू में जब जीवन की उत्पत्ति हुई तो सारे तत्त्व मौजूद थे, केवल एक संयोग की प्रतीक्षा थी जो घटित हुई और जीवद्रव्य की सृष्टि हुई। इसी तरह लिखने में भी है।

1.3.3. रचना का उद्देश्य

रचना का उद्देश्य विवेचित करना आसान कार्य नहीं है पर यह प्रश्न उठना बहुत स्वाभाविक है। रचनाकार किस लिए रचना कर रहा है ? वह रचना कर, उसको सबके साथ बाँटना क्यों चाहता है ? आखिर ऐसा करने में उसका उद्देश्य क्या है यानी अन्ततः उसके लेखन का उद्देश्य क्या है ? किन्तु कई बार लेखक बिना किसी उद्देश्य को लेकर भी रचना कर डालता है। बहरहाल, यह विषय जीवन की तरह लम्बा कहें या साहित्य के इतिहास की तरह कहें, पर इसे दो-चार सूक्तियों, उद्धरणों में बाँधा नहीं जा सकता – यह तय है। समय के साथ-साथ रचना (साहित्य) ने रूप बदले, कभी हमें वीरों की गाथाएँ सुनायीं तो कभी भगवान् की महिमा गायी। कभी कामिनियों की देह-यष्टि में यह उलझा है, फिर कभी दुखी जन की पीड़ा गायी तो कभी प्रकृति का राग छेड़ा । कहने का मतलब कि साहित्य-यात्रा में कवियों ने काल और स्थितियों के अनुसार साहित्य का उद्देश्य बार-बार बदला । साहित्य के उद्देश्य से इसमें विस्तार आया, जिसने साहित्य को हर युग में नवीनता बनाए रखा। पर, जैसे अनेक सम्बन्धों में बँट कर भी मुनष्य वही एक मनुष्य रहता है जिसके साँस लेने में, जीवित रहने का कोई एक अर्थ रहता है और उसी अर्थ की खोज में वह जीवन भर लगा रहता है !

1.3.3.1. स्वान्तःसुखाय

कोई भी साहित्यकार सबसे पहले अपने सुख के लिए, अपने आनन्द के लिए लिखता है । अगर रचनाकार अपने सृजन से स्वयं तुष्ट नहीं होगा तो उसकी रचना दूसरों को कैसे आनन्दित करेगी। लेकिन इसके साथ ही यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि अगर लेखक अपने लिए ही लिखता तो फिर वह क्यों चाहता है कि उसकी रचना को अधिक से अधिक लोग पढ़ें। केवल अपने लिए या अपने को आनन्दित करने के लिए रची गई रचना पाठकों तक पहुँचाने की आवश्यकता नहीं होती। अगर ऐसी रचना लिखी भी जाय तो ऐसी रचना का सामाजिक मूल्य क्या होगा। जब उसकी रचना समाज के समक्ष नहीं होगी तो उसकी श्रेष्ठता और निकृष्टता का मूल्यांकन करने

की भी आवश्यकता नहीं होगी। इसलिए स्वान्तःसुखाय रचना का अर्थ केवल इतना है कि वह रचना सबसे पहले स्वयं रचनाकार को आनन्दित करती है।

साहित्य के आरम्भ में संस्कृत के विद्वानों ने साहित्य के प्रयोजन बताए हैं। मम्मट ने काव्य के छह प्रयोजन बताये हैं –

काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

अर्थात् काव्य-रचना का प्रयोजन यश-प्राप्ति, अर्थ-प्राप्ति, लोक-व्यवहार की कुशलता, अशुभ या अमंगल का नाश, परम शान्ति की प्राप्ति और कान्ता के समान मधुर उपदेश है। बाद के कुछ चिन्तकों ने लोकहित, स्वान्तः सुखाय, सामाजिक परिवर्तन आदि को भी साहित्य का प्रयोजन स्वीकार किया। इन विद्वानों के बताए प्रयोजनों को आधुनिक सन्दर्भों से जोड़कर देखें तो बहुत सारी नई बातों का पता चलता है।

1.3.3.2. यश की प्राप्ति

यह आधारभूत सवाल है कि कोई साहित्यकार रचना क्यों करता है ? इसका कोई सटीक उत्तर नहीं है। प्रत्येक रचनाकार का अपना लक्ष्य होता है। मनोरंजन, स्वान्तःसुखाय, यश की प्राप्ति, सामाजिक परिवर्तन इत्यादि सभी किसी भी साहित्यकार के लक्ष्य हो सकते हैं। संस्कृत विद्वान् यश की प्राप्ति को काव्य का प्रयोजन स्वीकार करते हैं, परन्तु आज के सन्दर्भ में देखें तो बहुत सारे साहित्यकारों ने अपनी अभिव्यक्ति की लालसा को जीवित रखने के लिए भी साहित्य की रचना की। महान रचनाकार कभी भी यश के लिए नहीं लिखता है। ये अलग बात है कि उसकी रचना की प्रासंगिकता और उपादेयता उसे यश देने का कार्य करती है। यश की प्राप्ति कोई बुरी बात नहीं है, किन्तु अपने साहित्य में सामाजिकता को बनाए रखना बहुत आवश्यक है। लोकप्रियता कोई अवगुण नहीं है लेकिन साधना और मेहनत करके यश प्राप्त करने वालों की हिन्दी साहित्य में प्रायः कमी है। इस सम्बन्ध में आलोचक सुधीश पचौरी लिखते हैं कि – "लोकप्रियता अपराध नहीं है, लेकिन लोकप्रिय होने के लिए श्रम करना होता है, जिसका हिन्दी कथा लेखकों में अभाव है। कोई साहित्य केवल सरलता एवं सुबोधता के कारण लोकप्रिय नहीं होता। लोकप्रियता कला या साहित्य की ही विशेषता नहीं है, वही साहित्य व्यापक जनता के बीच लोकप्रिय होता है, जिसमें जन-जीवन की वास्तविकताएँ और आकांक्षाएँ सहज सुबोध रूप में व्यक्त होती हैं। इसीलिए लोकप्रियता का सम्बन्ध साहित्य के रूप के साथ-साथ उसकी अन्तर्वस्तु, उस अन्तर्वस्तु में मौजूद यथार्थ चेतना और उस यथार्थ चेतना में निहित विश्वदृष्टि से भी होता है।"

साहित्यकार कोई भी हो उसकी इच्छा यह हमेशा रहती है कि जो उसके द्वारा रचा जा रहा है उसका एक पाठक वर्ग हो और उसका मूल्यांकन भी हो। अपने लिखे के लिए पाठक की इच्छा रखना कुछ गलत भी नहीं है। साहित्य वही उत्तम होता है जो अधिक-से अधिक लोगों तक पहुँचता है। ठहरा हुआ जल जैसे सड़ जाता है, वैसे ही साहित्य का संचयन उसकी उपयोगिता को खत्म कर देता है। अच्छे साहित्य का प्रयोजन ही उसके विस्तार से

पूरा होता है, वरना लेखनी का कुछ भी अर्थ नहीं। साहित्यकार चाहे कितना भी अन्तर्मुखी हो उसका साहित्य विस्तार माँगता है। मध्यकाल में सन्त कवियों की कविता को धार्मिक उपदेश कहकर उनकी अवहेलना की गयी लेकिन उनका प्रयोजन सिर्फ भक्ति का प्रचार नहीं था बल्कि निराश और हताश जनता को ईश्वर का आधार प्रदान कर उनको जाग्रत् करना रहा है। इस प्रकार देखें तो साहित्य का प्रयोजन मात्र यश नहीं है, बल्कि उसके साथ अपने विचारों और भावनाओं का विस्तार भी है। यश उसकी रचना की उपयोगिता के अनुसार मिलता है।

1.3.3.3. अर्थ की प्राप्ति

रीतिकाल में अधिकांश कवि अर्थ की प्राप्ति के लिए रचना कर रहे थे। किसी भी व्यक्ति के जीवन में आर्थिक आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता है। आरम्भिक समय में कवि केवल रचनाकर्म के द्वारा ही अपना परिवार चलता था। लिहाजा तब आर्थिक पक्ष महत्त्वपूर्ण मुद्दा रहा। साहित्य के विकास के साथ साहित्य को लेकर लोगों की अवधारणा भी बदली। आज़ादी के बाद साहित्य ने अपनी भूमिका को बदलते हुए सामाजिक आन्दोलनों में भी हिस्सेदारी निभायी, जहाँ साहित्य को सामाजिक सुरक्षा के लिए एक हथियार के रूप में प्रयोग किया गया। समय के साथ लेखकों की संख्या में भी बढ़ोतरी हुई, परन्तु सम्मान और धन देकर सुनने और पढ़ने वालों की कमी भी हुई। लिहाजा साहित्य अब जीविका का साधन नहीं बन सकता। हिन्दी में अभी ऐसी स्थिति नहीं है कि लेखक केवल लेखन से आजीविका की ज़रूरतें पूरी कर सके। इसलिए यहाँ शौकिया लेखन अधिक है। बहुत पहले प्रेमचंद ने कहा था कि "साहित्यकार को जीविका के लिए छोटी-मोटी नौकरी ज़रूर कर लेनी चाहिए।" प्रेमचंद की बात आज भी सच है। आजकल अधिकांश लेखक छोटी-बड़ी नौकरियों में रहते हुए साहित्य लिखते हैं। जो पेशेवर लेखक हैं उनमें से कुछ लम्बे संघर्ष के बाद सुरक्षित स्थिति में पहुँचे हैं। केवल वे ही कला की कीमत पर जीविका अर्जित नहीं करते। बाकी पेशेवर लेखक लेखन का धंधा करते हैं।

1.3.3.4. सामाजिक परिवर्तन

प्रेमचंद साहित्य का प्रयोजन समाज के हित में ही देखने के पक्षधर हैं। उन्होंने अपने कई व्याख्यानों और लेखों में इसका जिक्र भी किया है। उनका मानना था कि "मन के विकार को भावों का आधार देना साहित्य का प्रयोजन है, लेकिन इसके पीछे का उद्देश्य मनुष्य का हित ही होना चाहिए।" साहित्य के प्रयोजन को समझने के लिए वह लिखते हैं – "साहित्य का इतना ही प्रयोजन है कि वह भावों को तीव्र और आनन्दवर्धक बनाने के लिए मनोविकारों की सहायता लेता है। उसी तरह, जैसे कोई कारीगर श्वेत को और श्वेत बनाने के लिए श्याम की सहायता लेता है।" प्रेमचंद ने साहित्य के प्रयोजन को बहुत तरीके से समझाने का प्रयास किया है। अपनी परिभाषाओं में अलग-अलग बिन्दुओं से साहित्य के उद्देश्य समझाने का सार्थक प्रयास वे करते हैं। अपने एक अन्य लेख में वे साहित्य को 'सत्य का अन्वेषी' मानते हैं। दरअसल, प्रेमचंद के दौर का साहित्य तिलिस्मी और फंतासी भी था, जिसका सत्य से दूर-दूर तक कोई रिश्ता नहीं था। हमारे गुलाम भारत को ऐसे साहित्य की आवश्यकता बहुत अधिक थी जो हमारा सच और आवश्यकता दोनों बता सके। प्रेमचंद का पूरा साहित्य हाशिये पर खड़े मनुष्य और मनुष्यता के हित में लिखा गया साहित्य है। वह समाज की सच्चाई लिखने के लिए प्रयासरत

थे। उन्होंने इस सत्य की खोज के लिए लोगों को उकसाया और लिखा – "साहित्य जीवन की आलोचना है, इस उद्देश्य से सत्य की खोज की जाए। सत्य क्या है और असत्य क्या है, इसका निर्णय हम आज तक नहीं कर सके। एक के लिए जो सत्य है, वह दूसरे के लिए असत्य है।"

प्रेमचंद का यह भी मानना था कि साहित्यकारों को उन लोगों के लिए अधिक लिखना चाहिए जो अपने मार्ग से भटके हैं। वह साहित्य का प्रयोजन समाज को दिशा देना भी मानते हैं। जो लोग बौद्धिक हैं, वक्त की नज़ाकत और समस्या को समझ सकते हैं, उनके लिए लिखने से साहित्य का प्रयोजन अधूरा ही रह जाएगा। साहित्य तभी सफल होता है जब वह भटके और नासमझ लोगों को सही रास्ता भी दिखाये।

प्रेमचंद साहित्य को मार्गदर्शक मानते हैं जो रोचक-रसभरा दिखता, हमारे अवगुणों को दूर करने का प्रयास करता है। वह अपने एक निबन्ध में लिखते हैं – "मनुष्य में जो कुछ सुन्दर है, विशाल है, आदरणीय है, आनन्दप्रद है साहित्य उसी की मूर्ति है। उसकी गोद में उन्हें आश्रय मिलना चाहिए – जो निराश्रय है, जो पतित है, जो अनादृत है। माता उस बालक से अधिक से अधिक स्नेह करती है जो दुर्बल है, बुद्धिहीन है, सरल है। सपूत बेटे पर गर्व करती है।"

प्रेमचंद एक सच्चे साहित्यकार हैं और साहित्य को आजीवन उन्होंने अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं से दूर ही रखा। उनके साहित्य और जीवन में अधिक फर्क नहीं था। उन्होंने जीवन भर ईमानदार और परिश्रमी लेखक की भूमिका का निर्वाह किया। यश और सामर्थ्य होने के बावजूद भी साहित्य के लिए मरते दम तक संघर्ष किया। साहित्य उनके लिए समाज-सुधार और मानसिक खुराक का साधन था। साहित्य का प्रयोजन समय-समय पर नये सन्दर्भों से भी जुड़ता रहा है। हर समय में मनुष्य और समाज साहित्य के केन्द्र में रहा है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने लेखन से साहित्य और समाज दोनों को परिष्कृत किया। स्वयं ब्राह्मण होकर भी आजीवन ब्राह्मणवाद के खिलाफ लिखा। भारतीय लोक और मुख्य धारा के साहित्य को एक साथ लेकर चलने में द्विवेदीजी की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। वे साहित्य का प्रयोजन इन शब्दों में समझाने का प्रयास करते हैं – "मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुःखकातर और सम्वेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।" द्विवेदीजी ने साहित्य को मनुष्य के मानवीय गुणों के परिष्कार का साधन माना है।

साहित्य का प्रयोजन सामाजिक रूढ़ियों और विसंगतियों को दूर करना भी है। समय-समय पर साहित्य ने यह करके भी दिखाया है। मध्यकाल में सन्त कवियों ने समकालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक आडम्बरों के खिलाफ आवाज बुलंद की। सत्ता से मुठभेड़ भी की। कबीर और उनका पूरा मण्डल लगातार निचले तबके के उत्थान के लिए संघर्षरत रहा। उन्हें लोभ और मोह से मुक्त कर वास्तविकता से परिचित कराया। आधुनिक साहित्य में साहित्यिक विधाओं के विकास के साथ यह विरोध और विकसित हुआ। साहित्यकारों ने तमाम आन्दोलनों द्वारा समाज को सुधारने का प्रयास किया।

इन सभी बातों को केन्द्र में रखकर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य का पहला सम्बन्ध आत्मा से है, फिर उसकी शुद्धि से है। आत्मा की शुद्धि के बिना साहित्य का निर्माण ही नहीं हो सकता, न ही उसका प्रयोजन पूरा हो सकता है। आत्मा से अशुद्ध व्यक्ति शुद्ध साहित्य का निर्माण कैसे कर सकता है भला? हिन्दी के सुविख्यात आलोचक डॉ॰ नगेन्द्र ने साहित्य के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि – "भारतीय दृष्टि से आत्मा का अर्थ संकुचित व्यक्तित्व नहीं है। विस्तार ही आत्मा की पूर्णता है। लोक-हित भी एकात्मवाद की दृढ़ आधार-शिला पर खड़ा हो सकता है। यश, अर्थ, यौन-सम्बन्ध, लोक-हित सभी आत्म-हित के ऊँचे-नीचे रूप हैं। इन सब प्रयोजनों में वही उत्तम है, जो आत्मा को व्यापक-से-व्यापक और अधिक-से-अधिक सम्पन्न अनुभूति में सहायक हो, इसी में लोक-हित का मान है।" इस प्रकार देखें तो साहित्य का पहला प्रयोजन समाज का विकास और उन्नयन ही है। अर्थ और यश की प्राप्ति तो मनुष्य की सहज और स्वाभाविक क्रिया है। अगर साहित्य किसी की जीविका का आधार बने तो भी कुछ बुरा नहीं है, परन्तु धन और यश के लिए साहित्य की बुनियादी प्रवृत्तियों से समझौता करना साहित्य का सच्चा प्रयोजन नहीं हो सकता है।

1.3.4. स्वरूप की प्राप्ति

यह तो आप समझ गए होंगे कि रचनाकार जीवन और जगत् से अनेक अनुभव प्राप्त करता है। ये अनुभव कुछ सुखद होते हैं तो कुछ दुखद। रचना के लिए सुखद-दुखद का महत्त्व नहीं होता है। महत्त्व होता है उस अनुभूति का, जो रचना के लिए प्रेरक बनती है। लेखक को सार्थक अनुभूतियों की पहचान और पकड़ में बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। रचनाकार का मन एक सादे कैमरे के प्लेट या फिल्म की तरह होता है। उसके सामने अनेक दृश्य होते हैं, वे सब उसके सामने से गुजरते रहते हैं लेकिन किस दृश्य पर कैमरा क्लिक किया जाए, जब तक यह विवेक हम में नहीं होगा, तब तक न तो अनुभूति की अद्वितीयता आएगी और नहीं रचना की विशिष्टता। इसलिए एक अच्छे रचनाकार के लिए यह ज़रूरी है कि वह अपने में वह विवेक पैदा करे जो अनुभूतियों की भीड़ में से रचना योग्य सही अनुभूति को पहचाने, उससे प्रेरणा ले और उसकी अभिव्यक्ति के लिए संयोजन तरतीब की कोशिश करे। इस प्रक्रिया के दौरान ही रचना अपना स्वरूप ग्रहण कर सकेगी।

रचना-प्रक्रिया के बारे में जैसा कि मुक्तिबोध ने जिन तीन चरणों की बात की थी, जिसके बारे में आप पढ़ चुके हैं – जीवनानुभव की प्रेरणा, आयत्तीकरण (मानसिक स्तर पर मूर्तिकरण) और अभिव्यक्ति। पहले आप रचना लेखन की प्रेरणा के बारे में पढ़ चुके हैं जो दो तरह की होती हैं – तात्कालिक प्रेरणा और दीर्घकालिक प्रेरणा। तात्कालिक प्रेरणा, जो लेखक को तत्काल अभिव्यक्ति के लिए विवश कर देती है। दीर्घकालिक प्रेरणा, जो लेखक की जीवन दृष्टि का निर्माण करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि लेखक अपनी परिस्थितियों से प्रभावित होकर तथा उससे प्राप्त अदम्य प्रेरणा से विवश होकर लिखता है। यह कोई बाह्य विवशता नहीं होती। बल्कि यह लेखक की आन्तरिक विवशता होती है। दूसरी बात है – मानसिक स्तर पर मूर्तिकरण की। प्रेरणा ग्रहण कर लेखक वस्तुस्थिति का यथार्थ वर्णन करना चाहता है लेकिन फोटोग्राफर या चित्रकार की तरह नहीं। वह रचना का स्वरूप निर्धारित करने से पहले मानसिक स्तर पर वह अमूर्त भावनाओं का मूर्तीकरण करता है। इस प्रक्रिया के दौरान लेखक को आत्मसंघर्ष से गुजरना पड़ता है, कभी कोई चीज़ रचनाकार को वर्षों मथती रहती है पर वह कलात्मक

अभिव्यक्ति नहीं ले पाती कभी अन्तर्मन में बहुत दिनों से दबी-छिपी कोई स्मृति बिजली की तरह कौंध जाती है और तत्काल रचना की शुरुआत हो जाती है। इस तीसरे चरण यानी अभिव्यक्ति तक पहुँचने के लिए वह कल्पना का सहारा लेता है। कल्पना वर्णन को आकर्षक बनाती है और तब रचना का पूरा ढाँचा खड़ा होता है। अब उस लिखने का रूप क्या होगा, किसी घटना को कथानक में किस तरह पिरोये, विचार को किस तरह जीवनानुभव से सम्पृक्त कर अभिव्यक्ति करे, यह सब उद्देश्य से, लिखने की तकनीक से, शैली और सुरुचि से सम्बन्ध रखता है जो साहित्य के रूप को निश्चित करता है।

1.3.5. पाठ सार

कोई रचनाकार रचना क्यों करता है, इस प्रश्न का उत्तर कई दृष्टियों से दिया जाता है। प्रत्येक के पीछे कोई न कोई प्रेरणा ज़रूर रहती है। यह प्रेरणा दो तरह की होती है – तात्कालिक प्रेरणा और दीर्घकालिक प्रेरणा। तात्कालिक प्रेरणा लिखने के लिए तुरन्त लिखने का कारण होती है, जैसे किसी अख़बार या पत्रिका के लिए किसी सम्पादक या प्रकाशक का किया गया अनुरोध, किसी घटना का प्रभाव इत्यादि। जबकि दीर्घकालिक प्रेरणा का तात्पर्य है, जो उसके लेखन कर्म के पीछे हमेशा सक्रिय रहता है।

लेखक मूलतः तीन कारणों से प्रेरित होकर लिखते हैं – केवल अपने सुख के लिए, धन या यश पाने के लिए और सामाजिक परिवर्तन के लिए। लेखक के लेखन के पीछे इनमें से कोई एक उद्देश्य मुख्य प्रेरणा के रूप में मौजूद रहता है यद्यपि अन्य उद्देश्य भी रचना से पूरे हो सकते हैं।

लेखक के मन में यह बात भी हो सकती है कि वह किसके लिए लिख रहा है यानी उसका पाठक कौन है। जैसा उसका पाठक होता है, रचना भी कुछ वैसी ही होती है। इस इकाई में रचनाकार का अपनी रचना से 'क्या कुछ पाने की इच्छा' पर भी विचार किया गया है। मतलब लेखक रचना से मनोरंजन करना चाहता है, धन कमाना चाहता है, यश पाना चाहता है, सामाजिक परिवर्तन करना चाहता है या सिर्फ रचना करके लेखन का सुख चाहता है। लेखक रचना से जो चाहता है, रचना का स्वरूप भी वैसा ही बनता है।

उद्देश्य का प्रभाव रचना की विषयवस्तु से लेकर भाषा-शैली तक पड़ता है। अपने उद्देश्य के अनुरूप ही हम रचना की विषयवस्तु तय करते हैं। विषय के एक होने पर भी रचना की अन्तर्वस्तु में अन्तर आ सकता है। एक ही विषय पर भिन्न उद्देश्यों से प्रेरित रचनाकार अलग-अलग तरह की रचना करेंगे। उद्देश्य का प्रभाव चयन पर भी पड़ता है। अर्थ कामना से लिखे गए मनोरंजक साहित्य में विधाओं के वे ही रूप मिलते हैं जो सम्प्रेषणीय हों तथा आम पाठक जिनसे सुपरिचित हो जबकि महान उद्देश्यों से प्रेरित लेखन विषय के अनुसार विधाओं का चयन करता है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें नवीन रूप भी प्रदान करता है।

मनोरंजन वाले साहित्य की भाषा साधारण और हल्के स्तर की होती है। उसमें गम्भीर विचारों और जटिल भावों की अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं होती। शैली की दृष्टि से भी प्रायः नवीनता का अभाव रहता है। इसके विपरीत श्रेष्ठ साहित्य में भाषा और शैली के नये रूप देखने को मिलते हैं।

1.3.6. बोध प्रश्न

अभ्यास

1. क्रमानुसार व्यवस्थित कीजिए –
   (क) लेखक को केवल पैसे के लिए लिखना चाहिए।
   (ख) लेखक को पैसे से ज्यादा यश के लिए लिखना चाहिए।
   (ग) लेखक को अपने सुख के लिए लिखना चाहिए।
   (घ) लेखक को सामाजिक परिवर्तन के लिए लिखना चाहिए।

2. निम्नलिखित कथनों में सत्य / असत्य कथन की पहचान कीजिए –
   (क) हर क्षण रचना का क्षण है।
   (ख) लिखने के लिए प्रेरणा ज़रूरी है।
   (ग) रचना का कारण रचनाकार की आन्तरिक विवशता है।
   (घ) प्रत्येक रचनाकार की एक जीवन दृष्टि होती है।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आजीविका के लिए कोई लेखक धन संग्रह करता है तो क्या वह अनैतिक है? स्पष्ट कीजिए।
2. जब कोई लेखक ऐसे पाठकों को ध्यान में रखकर रचना करता है जिनकी रुचि ऐसे साहित्य के पढ़ने में है जिससे उनका खाली समय में मनोरंजन हो जाए, आप ऐसे साहित्य को किस श्रेणी में रखेंगे।
3. लिखने से पहले क्या प्रत्येक लेखक के सामने उसका पाठक उसके मन-मस्तिष्क में रहता है ? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. मनोरंजन प्रधान साहित्य के पाठक और गम्भीर साहित्य के पाठक के बीच बुनियादी अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
5. "गहरी आन्तरिक प्रेरणा के अभाव में लिखा गया साहित्य कभी मूल्यवान् नहीं होता।" इस कथन पर आप स्वयं अपनी दृष्टि से विचार कीजिए।
6. साहित्य का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। आपकी दृष्टि में साहित्य किन-किन उद्देश्यों से प्रेरित होकर लिखा जाता है? केवल नामोल्लेख कीजिए।
7. एक ऐसा लेखक जो साहित्य इसलिए लिखना चाहता है ताकि पाठकों उसकी रचना से नयी दृष्टि मिले, नयी समझ मिले, समाज को यथार्थ रूप में जानने का अवसर मिले। ऐसे लेखक को आप किस श्रेणी का लेखक मानेंगे। कारण सहित उत्तर दीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. लेखक के रूप में आप अपने लेखन के उद्देश्य को किस रूप में बताएँगे ? तर्कसहित उत्तर दीजिए।
2. मनोरंजन के लिए रचना करने वाला कवि किस तरह की कविताएँ लिखेगा। सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. सामाजिक प्रतिबद्धता वाला रचनाकार किस तरह की शैलियों में रचना करना उपयुक्त समझता है और क्यों ? युक्तियुक्त उत्तर दीजिए।
4. अपने रचनात्मक उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए बताइए कि जेंडर की समस्या क्या आपको उपयुक्त विषय लगता है ? अगर 'नहीं' तो कारण बताइए क्यों नहीं लगता ? अगर 'हाँ' तो बताइए कि इस विषय पर आप क्या लिखना चाहेंगे और क्यों ?
5. एक ही विषय को आधार बनाकर रचना करने वाले दो रचनाकारों की कृतियों में उद्देश्य के कारण किन-किन क्षेत्रों में भिन्नता आ सकती है ? विवेचना कीजिए।

1.3.7. व्यवहार

1. फुटपाथ या रेलवे बुक स्टॉल पर अधिक बिकने वाले किसी हिन्दी लोकप्रिय उपन्यासकार का सामाजिक उपन्यास पढ़िए और प्रेमचंद के उपन्यासों से उसकी तुलना विस्तार में कीजिए।
2. 'सरोज स्मृति' पढ़िए और विचार कीजिए कि क्या निराला ने यह रचना अपनी पुत्री सरोज की मृत्यु से दुःख से दुखी होकर ही लिखी है या उनकी यह पीड़ा सार्वजनीन भी बन स की है। उनकी आत्म-व्यथा का सामाजिक मूल्य क्या है ? आकलन कीजिए।
3. स्वयं को एक रचनाकार महसूस करते हुए अपने आदर्श पाठक के बारे में विस्तार से लिखिए।

1.3.8. कठिन शब्दावली

अन्योन्याश्रय	:	परस्पर का सहारा, सम्बन्ध।
तादात्म्य	:	एक वस्तु का दूसरी में मिल जाना।
वृत्ति	:	स्वभाव, चेष्टा, प्रकृति।
द्वैत	:	दो का भाव, अपने-पराये का भाव।
अस्मिता	:	पहचान।

1.3.9. उपयोगी / सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. प्रेमचंद (2011), कुछ विचार, डायमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली, ISBN: 978-81-2800-07-0, पृष्ठ सं. 3-24
2. 'क्यों है हाशिये पर लोकप्रियता', सुधीश पचौरी, हिन्दुस्तान 23 मई 2010
3. पाण्डेय, मैनेजर (सं. 2014), साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा ग्रन्थ अकादेमी, पंचकुला, पृष्ठ- 21
4. वर्मा, निर्मल (1981), कला के जोख़िम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

❖❖❖

खण्ड – 1 : सृजनात्मक लेखन के सामान्य नियम

इकाई – 4 : विषयवस्तु का निर्धारण

इकाई की रूपरेखा

1.4.00. उद्देश्य कथन
1.4.01. प्रस्तावना
1.4.02. विषयवस्तु के निर्धारण का तात्पर्य
1.4.03. विषयवस्तु का अर्थ
1.4.04. विषयवस्तु का निर्धारण : विभिन्न समस्याएँ
    1.4.04.1. वस्तुगत समस्या
    1.4.04.2. विधागत समस्या
1.4.05. विषयवस्तु का प्रतिपाद्य
1.4.06. विषयवस्तु की पूर्वकल्पना
1.4.07. पाठ सार
1.4.08. बोध प्रश्न
1.4.09. व्यवहार
1.4.10. उपयोगी / सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1.4.00. उद्देश्य कथन

विषयवस्तु-निर्धारण पर आधारित इस पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. रचना में विषयवस्तु के निर्धारण का तात्पर्य समझ सकेंगे।
ii. विषयवस्तु के निर्धारण से सम्बन्धित समस्याओं को जान पाएँगे,
iii. विषयवस्तु का अर्थ और प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकेंगे,
iv. रचना में विषयवस्तु की पूर्वकल्पना किस रूप में मौजूद रहती है, इसकी जानकारी ले सकेंगे।

1.4.01. प्रस्तावना

पूर्व के पाठ में आपने रचना का उद्देश्य और उसकी स्वरूप प्राप्ति के बारे में पढ़ा। प्रस्तुत पाठ में विषयवस्तु के निर्धारण पर विचार किया जाएगा। वस्तुतः विषयवस्तु का निर्धारण करना बहुत आसान नहीं होता है। जब हम कोई गीत लिखने, कहानी लिखने या निबन्ध लिखने का विचार करते हैं तो सीधे कागज़, कलम लेकर नहीं बैठ जाते। लिखने से पहले कोई विचार हमारे मन में ज़रूर उठता है। यह विचार, भाव, अनुभूति, घटना या वैचारिक सूत्र के रूप में हो सकता है। यह सत्य या काल्पनिक घटना से उत्पन्न हो सकता है रचना-प्रक्रिया पर विचार करते हुए हम इस पक्ष पर विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। विषयवस्तु का सम्बन्ध इसी विचार, सम्वेदना,

घटना और अनुभूति से होता है। लेकिन रचना में यह किस रूप में प्रतिफलित होता है, इसे समझना अति आवश्यक है। इसका कोई बना-बनाया फार्मूला नहीं है। इस प्रश्न पर इस पाठ में विभिन्न उदाहरणों द्वारा विचार किया गया है। विषयवस्तु के निर्धारण की समस्या वस्तुगत भी है और विधागत भी है। वस्तुगत समस्या इस अर्थ में कि रचना में विषयवस्तु के निर्धारण का आधार क्या है ? सम्वेदना, घटना या विचारधारा। निश्चय ही इनमें से किसी के महत्त्व को कम करके नहीं देखा जा सकता है परन्तु रचना में ये किस रूप में अभिव्यक्ति पाते हैं, इसे भी समझना आवश्यक है। इसी प्रकार विभिन्न विधाओं के आधार पर भी विषयवस्तु का निर्धारण सम्भव होता है। निबन्ध, उपन्यास, कहानी या कविता में विषयवस्तु का स्वरूप एक-सा नहीं होता। रचनाकार रचना से पूर्व विषयवस्तु की कल्पना किस रूप में करता है, प्रस्तुत पाठ में इस पर भी विचार किया गया है।

1.4.02. विषयवस्तु के निर्धारण का तात्पर्य

कुछ भी लिखने के पीछे हमारा एक निश्चित उद्देश्य होना चाहिए। लिखने के लिए हम एक साथ कई चीजें लिख रहे होते हैं जैसे – कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध (ललित निबन्ध), संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रावृत्तान्त, एकांकी इत्यादि सभी सृजनात्मक लेखन के उदाहरण हैं। अब आप खुद समझ सकते हैं कि कामकाजी पत्र-लेखन और घर का हिसाब-किताब सृजनात्मक लेखन के दायरे में नहीं आते हैं। यहाँ हमें सृजनात्मक लेखन के दायरे में लेखन की अन्तर्वस्तु पर विचार करना है और उसके अन्तर्गत एक विशेष समस्या के रूप में उपस्थित है – 'विषयवस्तु का निर्धारण।' आखिर इसे समस्या के रूप में देखने का क्या आशय हो सकता है ? क्या हम यह मानते हैं कि सृजनात्मक विधाओं के अन्तर्गत कविता, कहानी, निबन्ध, नाटक, उपन्यास, रेखाचित्र, संस्मरण,यात्रा-वृत्तान्त इत्यादि लिखते हुए हमें विषयवस्तु निश्चित रूप से निर्धारित कर लेनी चाहिए। इस निर्धारण का क्या उद्देश्य हो सकता है ?

आइए, पहले हम यह जानें कि विषयवस्तु से क्या अभिप्राय है ? विषयवस्तु का अर्थ है, 'वह जो हम कहना चाहते हैं, जो हमारा कंटेंट है, जो हमारा कथ्य है।' रचना में दो पक्ष होते हैं – विषयवस्तु और रूप। इसे अन्तर्वस्तु और शिल्प भी कहा जाता है। इसे ही भावपक्ष और रूपपक्ष भी कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे 'कंटेंट' और 'फॉर्म' कहा जाता है। प्रश्न है कि क्या विषयवस्तु के बिना रचना असम्भव है ? क्या रचना की कोई विषयवस्तु होगी ही होगी ? इसका उत्तर सकारात्मक ही होगा। विषयवस्तु कुछ हो ही नहीं तो फिर रचना कैसे होगी ? विषयवस्तु या कथ्य सपाट न होकर सूक्ष्म हो सकता है पर होगा ज़रूर ही। प्रसिद्ध कहानीकार जैनेन्द्र कुमार अपनी कहानियों के बारे में कहते हैं – "कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य नहीं।" पर सभी जानते हैं कि वे कोई न कोई बात अपनी कहानियों में कहते ज़रूर हैं। चाहे वह कितनी ही सांकेतिक क्यों न हो। बड़े लेखकों की खूबी यही होती है कि वे संकेत में कहना जानते हैं। सीधे-सादे ढंग से इस समस्या को देखें तो विषयवस्तु के निर्धारण का लाभ यह है कि हम अपनी रचना को अनावश्यक फैलाव से बचा सकते हैं। उसे लक्ष्यात्मक बना सकते हैं। अर्थात् कोई रचना पढ़े तो बता सके कि क्या निश्चित चीज़ उसने उस रचना से ग्रहण की। कैसे प्रतिक्रिया बनी। क्या कोई सन्देश मिला। क्या कोई मानव-समस्या मार्मिक ढंग से उजागर हुई। क्या कोई चरित्र अविस्मरणीय छाप छोड़ गया। तो विषयवस्तु निर्धारण का उद्देश्य है – रचना को निश्चित अर्थ या संकेत का व्यंजक बनाना। यह न

लगे कि रचना समाप्त करने पर कुछ हासिल ही नहीं हुआ। यदि लिखने की सार्थकता है तो विषयवस्तु के निर्धारण की भी सार्थकता है।

1.4.03. विषयवस्तु का अर्थ

अब यदि हम मान चुके हैं कि विषयवस्तु निर्धारण की सार्थकता है, उसका अपना उद्देश्य है और उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए तो इस बात को और स्पष्ट कर लें कि विषयवस्तु क्या है, क्या-क्या चीजें विषयवस्तु में शामिल हैं। जैसे – घटना, विचार, भाव, सम्वेदना इत्यादि ये सारी चीजें हमारे कथ्य का हिस्सा होती हैं। हमारा पूरा परिवेश हमारा कथ्य हो सकता है। पर विषयवस्तु के रूप में हम निश्चित चुनाव करते हैं, घटनाएँ नहीं, घटना-विशेष चुनते हैं। पूरा समाज नहीं, उसकी कोई झलक, कोई चरित्र ले आना चाहते हैं। इस बात को बहुत शास्त्रीय न मानें कि पहले लोग रचना के दो पक्ष मानते थे – भावपक्ष और कलापक्ष। वही भाव अब अन्तर्वस्तु है, विषयवस्तु है। भाव कहने से एक सीमा बन जाती थी। हालाँकि भाव कहने वाले भी जानते थे कि भाव बिना आधार के होगा ही नहीं। आधार यानी विभाव। विभाव का अर्थ है – भाव का कारण। नायिका को देखकर नायक के मन में प्रेम का भाव उत्पन्न हो तो नायिका को भाव का कारण यानी विभाव माना जाएगा। इसी प्रकार किसी कहानी, उपन्यास या कविता को पढ़ते हुए जो भाव उत्पन्न होते हैं, उन भावों की उत्पत्ति का कारण क्या है, आइए, इस पर विचार करते हैं। क्या वह कारण कहानी, कविता आदि में निहित विषयवस्तु नहीं है?

एक उदाहरण से हम विषयवस्तु को समझते हैं। प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी है – 'ईदगाह'। सीधी-सादी कहानी है पर प्रभाव में बेजोड़। इस कहानी में ईद यानी खुशी के त्यौहार का वर्णन है। मुसलमान घरों में चाहे वे अमीर हों या ग़रीब ख़ुशी उमड़ रही है। सब मेला जा रहे हैं। बड़े भी, बच्चे भी। कई-कई तरह के घरों से। इन्हीं बच्चों में से एक है – 'हामिद'। उसके घर में उसके अलावा सिर्फ बूढ़ी दादी है, नाम है – 'अमीना'। दो-चार पैसे में गुजर करना पड़ता है। हामिद के पास इतने पैसे नहीं है कि खिलौने ख़रीदे या मिठाइयाँ ख़रीदे। जब दोस्त उसे बुलाते हैं, वह उनकी निगाह से बचता है। तब तक वह जा पहुँचता है एक लोहे-लक्कड़ वाली दुकान पर। एक चिमटे पर उसकी निगाह जा टिकती है। उसे ख्याल आता है कि दादी की उंगलियाँ रोटी सेंकते जल जाती है। बस मोल-तोल करके चिमटा खरीद लेता है। दोस्त पहले हँसी उड़ाते हैं, फिर वह चिमटे के पक्ष में निरस्त करने वाली दलीलें देता जाता है और सबको पस्त कर देता है। वही चिमटा अचानक जैसे नायक हो जाता है। सब उसे हाथ में लेना, छूना, देखना चाहते हैं। इस अनोखी विजय के बाद जब हामिद घर पहुँचता है तो जिनके लिए चिमटा लाया था वह दादी अपना सर पीट लेती है। प्रेमचंद कहानी के अन्त में इतना ही बताते हैं कि – "और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। बुढ़िया अमीना बालिका बन गई। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी बूँदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता।"

मुख्य बात यह है कि कहानी उतनी ही नहीं है जितनी सारांश के रूप में बतायी जा रही है। कहानी का विकल्प कहानी का सारांश है भी नहीं। जो घटनाएँ जिस तरह बतायी जा रही हैं। वह सब क्या विषयवस्तु है। क्या सारी विषयवस्तु का पूर्वनिर्धारण सम्भव है। बात कहने में थोड़ी कठिन लग सकती है पर सच्चाई यह है कि रचना

का एक सुगठित तात्पर्य होता है जो बीज भाव के रूप में रचना में मौजूद होता है। एक संगठित तात्पर्य के रूप में ही विषयवस्तु का पूर्वनिर्धारण सम्भव है।

यह बीज-भाव ही रचना में विषयवस्तु के रूप में विस्तार पाता है। रचना का आस्वादन करते हुए पाठक इसी बीज-भाव को जानने की कोशिश करता है। कहने का मतलब यह है कि लिखने में ही विषयवस्तु का पूर्व निर्धारण सम्भव है। लिखने में ही विषयवस्तु अपना पूरा रूप या आकार ग्रहण करती है। यहाँ यह भी जानना ज़रूरी है कि रचना की विषयवस्तु का निर्धारण रचनाकार की सम्वेदना, अनुभूति, विचारधारा की समस्या भी है और विधागत समस्या भी है। पहले तो रचना की विधा और प्रकृति का सवाल ही उठता है। वैचारिक विषय पर निबन्ध लिखते हुए विषयवस्तु का निर्धारण जिस अर्थ में ज़रूरी होगा, कविता या कहानी लिखते हुए वह उसी अर्थ में ज़रूरी नहीं होगा। कहानी में तो फिर भी सम्भव है कि कोई वास्तविक सन्दर्भ, यथार्थ, समस्या, चरित्र आदि ऐसा दबाव डाल सके कि विषयवस्तु की कुछ स्पष्ट रूपरेखा बन सकती हो। उसकी तुलना में कविता जो रचनात्मक विधाओं में अधिक सूक्ष्म और सम्वेदना आश्रित विधा है, विषयवस्तु के निर्धारण की पहले से छूट नहीं देती। अब अधिक से अधिक हम यह मान कर चल सकते हैं कि विषयवस्तु के निर्धारण की एक ही सार्थकता है – 'रचना में कथ्य की एक सीमा रेखा लेना', जिससे अनावश्यक भटकाव या फैलाव न हो। रचना कुछ निश्चित कहे, वह केवल हल्का भावोच्छवास न हो। इसी अर्थ में विषयवस्तु का निर्धारण एक विचारणीय मुद्दा है और इसी दृष्टि से इस समस्या के विभिन्न पहलुओं पर आगे विचार किया जाएगा।

1.4.04. विषयवस्तु का निर्धारण : विभिन्न समस्याएँ

विषयवस्तु के निर्धारण का महत्त्व रचना के लिए क्या है, अब आप समझ गए होंगे। विषयवस्तु के बारे में विचार करते हुए लेखक का सामना दो समस्याओं से होता है – वस्तुगत और विधागत समस्या। वस्तुगत समस्या के अन्तर्गत सम्वेदना, अनुभूति, विचारधारात्मक इत्यादि प्रश्न होते हैं जबकि विधागत में विभिन्न विधाओं के परिप्रेक्ष्य में विषयवस्तु के निर्धारण किया जाता है।

1.4.04.1. वस्तुगत समस्या

कोई भी रचना हम क्यों लिखते हैं, यह जानने के लिए हमें अपने भीतर झाँकना चाहिए। सृजनात्मक लेखन में बहुत महत्त्वपूर्ण है कि हम कितने सम्वेदनशील हैं। हम आसपास की प्रकृति से, जनजीवन से, सामाजिक परिवर्तनों से कितना लगाव अनुभव करते हैं, हम चीजों को कितने विस्तार में, कितनी गहराई से देख पाते हैं। स्पर्श, रूप, गन्ध की हमारी सम्वेदना में कितनी सजगता है। सूरज या चन्द्रमा सभी के लिए निकलते हैं लेकिन उनका प्रभाव सभी पर अलग-अलग रूप में होता है। कोई प्रभावित होकर कविता लिखता है तो कोई किसी और तरह की रचना करता है, कोई कुछ भी नहीं लिखता है। जीवन जैसे-जैसे चलता रहता है वैसे-वैसे अनुभव बनते रहते हैं। सभी के अनुभव अलग-अलग होते हैं। रचना के दौरान रचनाकार उन अनुभवों में से कुछ चुनिंदाको ले लेता है। ये अनुभव उसके जीवन के विषयवस्तु की दृष्टि से प्रगाढ़ होते है। यह प्रगाढ़ता ही अनुभूति का दबाव

होती है। अनुभूति के पश्चात् ही विचारधारा का प्रश्न उठता है। किसी लेखक के लिए विचारधारा का प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो सकता है लेकिन सृजनात्मक लेखन में विचारधारा की कट्टरता लाभप्रद नहीं होती है। विचारधारा का मतलब एक विशेष प्रकार की बँधी हुई विचार व्यवस्था से है, जैसे गाँधीवादी विचारधारा, मार्क्सवादी विचारधारा इत्यादि। विषयवस्तु के निर्धारण में विचारधारा महत्त्वपूर्ण हो सकती है लेकिन उसी स्थिति में, जब वह सम्वेदना और अनुभूति में घुलमिल कर आए। फिर भी वह बहुत प्रकट भी न हो, छिपी रहे, पृष्ठभूमि में काम करे। सीधी सरल विचारधारा निष्कर्ष के साँचे में उपयोगी नहीं होती।

1.4.04.2. विधागत समस्या

दूसरे स्तर पर विषयवस्तु के निर्धारण में विधागत समस्या आती है। जैसे कि पहले कहा गया है कि वैचारिक विषय पर निबन्ध लिखते हुए विषयवस्तु का निर्धारण जिस अर्थ में ज़रूरी होगा, कविता या कहानी लिखते समय उसी अर्थ में ज़रूरी नहीं होगा। उदाहरण के लिए, जब आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मनोविकार सम्बन्धी निबन्ध लिखते हैं तो सारी व्यक्ति व्यंजकता के बावजूद विषयवस्तु का निर्धारण अनिवार्य होता है। पूरे निबन्ध की व्यवस्था के पहले से लेखक के मन में मौजूद जान पड़ती है। 'करुणा' पर निबन्ध लिखा जा रहा है तो पहले से स्पष्ट है कि करुणा का हमारे भावलोक में क्या स्थान है, मानवीय समाज में करुणा क्या भूमिका निभाती है, कौन से भाव उसके सहयोगी हैं, कौन से विरोधी। हजारीप्रसाद द्विवेदी जब 'अशोक के फूल' जैसा व्यक्तिव्यंजक निबन्ध लिखते हैं तब भी पूर्वनिर्धारण की एक झलक मिलती है। 'अशोक के फूल' का चुनाव ही क्यों किया, इसलिए कि वह जिस रूप में, जिस वैभव के साथ, जिस स्वप्न की तरह पहले था, अब नहीं रहा। जो था वह अब नहीं रहा। जो है वह उसी रूप में नहीं रह जाएगा। पर जीवन अविराम है। संस्कृति में उथल-पुथल होती रहेगी पर उसका प्रवाह बना रहेगा। मुक्त शैली के इस निबन्ध में भी, जिसमें लचीलापन पर्याप्त है, कुछ भी कहने की छूट ली जा सकती है – विषयवस्तु का निर्धारण अपनी झलक देता है।

1.4.05. विषयवस्तु का प्रतिपाद्य

अब हम एक ऐसी जगह आ गए हैं जहाँ विषयवस्तु के अर्थ को या विषयवस्तु के प्रतिपाद्य को ठीकठीक जान सकते हैं। विषयवस्तु कहने से कई बार भ्रम पैदा होता है। कुछ लोग कहानी में कथानक को विषयवस्तु समझ लेते हैं, कविता में भाव को या केन्द्रीय भाव को विषयवस्तु समझ लेते हैं। कुछ भ्रम स्वाभाविक भी हैं। हम पहले रचना के बीज-भाव की चर्चा कर आये हैं। पर वहीं यह भी कहा गया है कि यह मान्यता बहुत कुछ सुविधा के लिए सच है। सच तो यह है कि विषयवस्तु भी रचना में क्रमशः अपना या आकार ग्रहण करती है, अपना अर्थ या प्रतिपाद्य उपलब्ध करती है। विषयवस्तु साधारण अर्थ में यदि कथ्य है तो यह बात जोड़ने के लिए रह जाती है कि उसमें घटना, विचार, सम्वेदना सब घुले-मिले होते हैं। यह बात फिर विधा के अधीन है कि कहाँ कथ्य घटना तक सीमित होता है, कहाँ सम्वेदना का आधार ही प्रमुख होता है। हम 'ईदगाह' कहानी में देख चुके हैं कि घटना में सम्वेदना रची-बसी है। वही सम्वेदना में रची-बसी घटना या घटना में रची-बसी सम्वेदना इस कहानी की विषयवस्तु को मूर्त रूप देती है।

रचना का प्रतिपाद्य ही विषयवस्तु का प्रतिपाद्य होता है। वस्तुविधान किया ही इस रूप में जाता है कि रचना अपना स्वाभाविक तथा समग्र रूप और अर्थ प्राप्त कर सके। विषयवस्तु अपने अनुभव को ठीक तरह से पाठक तक पहुँचा सके। अस्पष्टता, दुर्बोधता रचना के दोष हैं – वे विषयवस्तु की ठीकन्ठीक परिकल्पना न होने से उत्पन्न होते हैं।

विषयवस्तु से सीमित अर्थ नहीं लेना चाहिए। सीमित अर्थ लेने वाले रचनात्मक लेखक कुछ मोटे-मोटे सूत्र सिद्धान्त बना लेते हैं, जिन्हें रचना में ढालना हो। विषयवस्तु का व्यापक अर्थ लेकर चलें तो हमें अपने आप से लिखने का अर्थ या प्रयोजन पूछना चाहिए। प्रश्न यदि अतिव्याप्त लगे तो सीमित अर्थ में पूछना चाहिए – हम कोई रचना विशेष ही क्यों लिखते हैं ? एक दृष्टिकोण यह हो सकता है कि बँधे-बँधाए उद्देश्य से नहीं लिखते। यहीं यह खतरा हो सकता है कि निरुद्देश्य लेखन मानसिक शिथिलता या अराजक मुक्ति का पर्याय न बन जाय। इसीलिए कहा जा रहा है कि विषयवस्तु का अर्थ न बहुत सीमित है और न ही अनावश्यक रूप से फैला हुआ, असीमित व्यापक।

1.4.06. विषयवस्तु की पूर्वकल्पना

स्थूल रूप में न सही, सूक्ष्म रूप में ही सही, लिखी जा रही रचना की कोई पूर्वकल्पना मन में होनी चाहिए। यह पूर्वकल्पना भी अपने आप में पर्याप्त अनुशासित हो सकती है। इस पूर्वकल्पना में हम अनुभव, सम्वेदना, विचारधारा और कला के संश्लिष्ट विवेक का लाभ उठा सकते हैं। वहाँ हम समझकर चलें कि लिखा जाना ही काफी नहीं है – सार्थक लिखा जाना ही सन्तोष का विषय हो सकता है।

एक तरह से देखें तो विषयवस्तु का निर्धारण विषयवस्तु की पूर्वकल्पना ही है। आप जो सम्पूर्ण रचना में कहना चाहते हैं उसकी कोई न कोई पूर्वकल्पना मन में हो यह स्वाभाविक है। वस्तुतः होता यह है कि ज्यों ही कोई विशेष दृश्य या अनुभव हमारे सामने इस तरह होता है कि हम उसे औसत से विशेष पाने लगें तो रचना क्या कहने जा रही है अर्थात् रचना में हम क्या कहने जा रहे हैं – इसकी एक कल्पना पहले ही सामने आने लगती है। कभी-कभी तो पूर्वकल्पना और रचना में बहुत अन्तर ही नहीं होता है जैसे गीत में। एक दृश्य देखा, एक पंक्ति मन में कौंधी और गीत बन गया। यह पंक्ति ही कई बार विषयवस्तु (यदि गीत की अन्तर्भावना को ही उसकी विषयवस्तु कहें, क्योंकि बहुत विस्तार या घटनाचक्र तो उसमें होता ही नहीं) की पूर्वकल्पना बनकर आती है। लेकिन, मान लीजिए कि आप उपन्यास लिखने की तैयारी कर रहे हैं या नाटक लिखने की तैयारी कर रहे हैं तो पूर्वकल्पना मन में ही नहीं, कागज़ पर भी एक तरह तैयारी का रूप ले सकती है। प्रेमचंद के उपन्यासों के लिखे जाने के पहले यह पूर्वकल्पना बहुत स्पष्ट तैयारी बन कर आती थी, यह तथ्य अब साहित्य के पाठकों के सामने आ चुका है।

इसीलिए विषयवस्तु की पूर्वकल्पना का स्वरूप उसकी सीमा, उसका औचित्य भी रचना की विधा या प्रकृति पर उसके रूप प्रकार पर निर्भर है। एक दायित्वपूर्ण लेखक विषयवस्तु की पूर्वकल्पना को अवश्य महत्त्व देता है। आप यदि रचना कर्म में लगे रहे हैं तो यह आपको जानना ही चाहिए कि आप क्या, क्यों, किस रूप में

लिखने जा रहे हैं। यही विषयवस्तु की पूर्वकल्पना सार्थक जान पड़ेगी। रघुवीर सहाय की कविता 'अधिनायक' यह जानने में सहायक हो सकती है, यह अनुमान करा सकती है कि रघुवीर सहाय ने क्या इसकी विषयवस्तु पहले से कल्पित की थी। यह लेखक की रचना-प्रक्रिया का विषय है, इसलिए जब तक कवि स्वयं सामने उपस्थित न हो, तब तक हम अनुमान ही कर सकते हैं। 'अधिनायक' कविता इस प्रकार है –

राष्ट्रगीत में भला कौन वह
भारत-भाग्य-विधाता है
फटा सुथन्ना पहने जिसका
गुन हरचरना गाता है।

मखमल टमटम बल्लम तुरही
पगड़ी छत्र चँवर के साथ
तोप छुड़ाकर ढोल बजाकर
जय-जय कौन कराता है।

पूरब-पच्छिम से आते हैं
नंगे-बूचे नरकंकाल
सिंहासन पर बैठा, उनके
तमगे कौन लगाता है।

कौन-कौन है वह जन-गण-मन-
अधिनायक वह महाबली
डरा हुआ मन बेमन जिसका
बाजा रोज़ बजाता है।

रघुवीर सहाय की इस कविता की सम्पूर्णता पर गौर करें। इसकी विषयवस्तु क्या है। उसकी क्या पूर्वकल्पना रघुवीर सहाय के लिए रही होगी। इस कविता में किनकी छवियाँ उभरती हैं। हम जानते हैं कि रघुवीर सहाय पेशे से पत्रकार थे। अपनी पत्रकारिता के लिए हर क्षेत्र में घूमते रहते थे। घूमने के दौरान भारतीय समाज की मूल वास्तविकताओं से परिचित होते रहते थे। कविता में आप जान ही गए होंगे कि 'हरचरना' आज़ाद भारत का वह व्यक्ति है, जो राष्ट्रगीत तो गाता है, लेकिन उसके लिए राष्ट्रगीत क्या है, वह नहीं समझता है, वह किसके लिए गाता है, क्यों गाता है, वह यह भी नहीं जानता है, वह जिनके लिए गाता है, उन्हें उसकी हालत से कोई सरोकार नहीं। वह फटा सुथन्ना पहने है, नंगा-बूचा है, नर कंकाल हो गया है, डरा हुआ है, कहीं से भी नहीं लगता है कि उसका देश आज़ाद है। आज भी वह अधिनायकशाही में ही जीता है। आज़ाद भारत का अधिनायक राष्ट्रगीत के गायन के दौरान भयभीत हरचरना को उसकी बहादुरी का तमगा लगाता है। लोकतन्त्र का अन्तर्विरोध कवि अपने सामने हर दिन देखता है। कविता की मूल बात पर आते हैं। कविता की विषयवस्तु आज़ाद भारत के व्यक्ति 'हरचरना' की जहालत और राष्ट्रगीत के मखौल से सम्बद्ध है। इसमें हरचरना व्यक्ति नहीं, प्रतिनिधि है, भारतीय

आम लोगों का। सवाल यह है कि क्या रघुवीर सहाय ने आज़ाद भारत की झाँकी में होने वाली दिखावे को नहीं देखा होगा ? बेशक देखा होगा। वरना वे राष्ट्रगीत के जो मूल वस्तु हैं, उन्हीं का साल दर साल मखोल होती घटना पर इतनी व्यंग्यात्मक रूप से नहीं लिख पाते। "मखमल टमटम बल्लम तुरही / पगड़ी छत्र चँवर के साथ / तोप छुड़ाकर ढोल बजाकर / जय-जय कौन कराता है।" – कहते ही कविता का वह दृश्य उपस्थित हो जाता है। जो हर साल होता रहता है। यह सब विषयवस्तु की पूर्व कल्पना से सम्भव हुआ है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि विषयवस्तु पहली बार में ही कविता या सम्पूर्ण रचना नहीं हो जाती है। वह धीरे-धीरे रचना में परिवर्तित होती जाती है, साकार होती जाती है।

1.4.07. पाठ सार

विषयवस्तु और रूप रचना के ये दो पक्ष होते हैं। विषयवस्तु के बिना रचना सम्भव नहीं है। लेकिन प्रत्येक रचना में विषयवस्तु एक सी नहीं होती। विषयवस्तु का निर्धारण रचना के स्वरूप को निर्धारित करने में केन्द्रीय भूमिका निभाता है।

विषयवस्तु के निर्धारण का तात्पर्य यही है कि रचना के उस केन्द्रीय भाव या विचार को समझना जिससे प्रेरित होकर लेखक रचना के सृजन की ओर प्रवृत्त हुआ है। कोई भी लेखक निरुद्देश्य रचना नहीं करता है। उद्देश्य से विषयवस्तु का निर्धारण सम्भव होता है।

विषयवस्तु के निर्धारण की समस्या को दो आधारों पर समझा जा सकता है – वस्तुगत आधार पर और विधागत आधार पर। घटना, सम्वेदना और विचारधारा वस्तुगत आधार हैं और विषयवस्तु के निर्धारण में इनकी भूमिका होती है। इसी प्रकार विभिन्न विधाओं की भिन्न-भिन्न प्रकृति भी विषयवस्तु के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

रचना आरम्भ करने से पहले रचनाकार विषयवस्तु की पूर्वकल्पना करता है। लेकिन यह पूर्वकल्पना हू-ब-हू रचना में अभिव्यक्त नहीं होती। विषयवस्तु की जो भी कल्पना रचनाकार के मानस में आती है, उसमें और वास्तविक रचना में काफी फर्क होता है।

इन विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखकर आप रचना में विषयवस्तु के निर्धारण को समझ सकते हैं।

1.4.08. बोध प्रश्न

अभ्यास

1. निम्नलिखित कथनों में सत्य / असत्य कथन की पहचान कीजिए –
   (क) रचना की कोई विषयवस्तु नहीं होती है।
   (ख) रचना से पूर्व ही विषयवस्तु का निर्धारण सम्भव है।

(ग) बिना आधार के भाव उत्पन्न नहीं होता।

(घ) जिसमें हम अपने भीतर के रंग-रेशे खोलते चलते है, वह सृजनात्मक लेखन है।

2. निम्नलिखित में से कौन विषयवस्तु के स्वरूप को अधिक स्पष्ट कर पाता है –

(क) विषयवस्तु का अर्थ है, वह जो हम कहना चाहते हैं।

(ख) घटना, विचार, सम्वेदना ये सभी चीजें विषयवस्तु की हिस्सा होती हैं।

(ग) विषयवस्तु एक संगठित तात्पर्यहै।

(घ) विषयवस्तु का अर्थ, कथ्य की सीमा।

3. निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा कथन अधिक उपयुक्त लगता है –

(क) विषयवस्तु में घटना मुख्यहै।

(ख) विषयवस्तु में सम्वेदना मुख्य है।

(ग) विषयवस्तु में घटना और सम्वेदना का समान महत्त्व है।

4. निम्नलिखित कथनों में से आप किन-किन कथनों से सहमत हैं –

(क) कहानी में कथानक को विषयवस्तु समझना भ्रम है। इसी प्रकार गीत के भाव को ही विषयवस्तु मान लेना भी भ्रम है।

(ख) विषयवस्तु का सीमित अर्थ है – ठीक उसी रचना की विषयवस्तु की निश्चित पहचान, उसका लक्ष्य। व्यापक अर्थ है – लिखने के पूरे अर्थ या प्रयोजन को कुरेदना।

(ग) सोद्देश्य लेखन भी महत्त्वपूर्ण लेखन हो सकता है, यदि लेखक विषयवस्तु में घटना, सम्वेदना, विचार, अनुभूति की संश्लिष्टता को आत्मसात कर सके। सोद्देश्य लेखन केवल प्रचार या प्रोपेगंडा लगे तो महत्त्वहीन होगा।

(घ) कविता जैसी विधा के लिए विषयवस्तु की पूर्वकल्पना उतनी अनिवार्य नहीं है जितनी निबन्ध में। कविता में अमूर्तन की प्रवृति ज्यादा होती है। इसीलिए वहाँ विषयवस्तु की पूर्वकल्पना भी ठोस रूप में नहीं होती।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. किस प्रकार की रचना में विषयवस्तु का निर्धारण एक अनिवार्यता है ?
2. विषयवस्तु के निर्धारण से क्या तात्पर्य है ?
3. विषयवस्तु-निर्धारण में कौन-कौनसी समस्याएँ हैं ?
4. विषयवस्तु से क्या आशय है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. विषयवस्तु का निर्धारण किस अर्थ में दु हरी समस्याहै ? समझाकर लिखिए।
2. विषयवस्तु को लेकर प्रचलित भ्रम कौन-कौन से हैं ? विश्लेषण कीजिए।
3. विषयवस्तु के सीमित और व्यापक अर्थ में क्या भेद है? विवेचना कीजिए।
4. सोद्देश्य लेखन ख़राब लेखन ही होगा या वह महत्त्वपूर्ण लेखन भी हो सकता है ? युक्तिसहित उत्तर लिखिए।
5. विषयवस्तु की पूर्वकल्पना क्या प्रत्येक रचना के लिए आवश्यक है या विधा की प्रकृति के अनुसार उसकी उपयोगिता या सार्थकता सामने आती है ? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

1.4.09. व्यवहार

1. 'ईदगाह' कहानी सोद्देश्यपूर्ण है या नहीं ? क्या इस दृष्टि से उसे श्रेष्ठ कहानी माना जा सकता है ? विस्तारपूर्वक उसकी श्रेष्ठता सिद्ध कीजिए।
2. 'अधिनायक' कविता की विषयवस्तु की पूर्वकल्पना का अनुमान किस पंक्ति के आधार पर किया जा सकता है ? उल्लेख कीजिए। अन्य कवियों की रचनाओं को पढ़िए और इसी प्रकार की पंक्तियों की एक सूची तैयार कीजिए।
3. किसी प्रसिद्ध रचनाकार की रचना की विषयवस्तु की पूर्वकल्पना के बारे में विस्तार से बताइए।
4. विषयवस्तु-निर्धारण को ध्यान में रखते हुए बताइए कि क्या साम्प्रदायिकता की समस्या आपको इसके लिए उपयुक्त विषय लगता है ? यदि 'नहीं' तो कारण दीजिये और यदि 'हाँ' तो बताइए कि इस विषय पर क्यों लिखना चाहेंगे।

1.4.10. उपयोगी / सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. गौतम, रमेश, (सं.) (2014), रचनात्मक लेखन, ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, ISBN: 978-93-263-5187-4
2. पाण्डेय, मैनेजर (सं.) 2014, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा ग्रन्थ अकादेमी, पंचकुला
3. वर्मा, निर्मल (1981), कला के जोख़िम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/

❖❖❖

खण्ड – 2 : सृजनात्मकता के सामाजिक-दार्शनिक आधार

इकाई – 1 : लेखक की सामाजिक पृष्ठभूमि और दार्शनिक विचार

इकाई की रूपरेखा

2.1.0. उद्देश्य कथन
2.1.1. प्रस्तावना
2.1.2. लेखक की सामाजिक पृष्ठभूमि
2.1.3. लेखक का दार्शनिक विचार
2.1.4. पाठ सार
2.1.5. बोध प्रश्न
2.1.6. व्यवहार
2.1.7. कठिन शब्दावली
2.1.8. उपयोगी / सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

2.1.0. उद्देश्य कथन

सृजनात्मक लेखन पाठ्यचर्या के दूसरे खण्ड 'सृजनात्मकता के सामाजिक-दार्शनिक आधार' की यह पहली इकाई 'लेखक की सामाजिक पृष्ठभूमि और दार्शनिक विचार' पर आधारित है। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. यह जान पाएँगे कि रचनात्मक लेखन के किसी भी लेखक की सामाजिक पृष्ठभूमि का प्रतिफलन किस रूप में होता है अर्थात् कोई भी लेखक कैसे अपने परिवेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है ?
ii. यह जान पाएँगे कि लेखक अपनी दार्शनिकता को अपनी रचना में किस तरह पिरोता है या विलय करता है ?

2.1.1. प्रस्तावना

कोई भी लेखक अपने समय की सामाजिकता से अलग नहीं होता है। लेखक के लिए उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि उसकी रचना के लिए खाद-पानी का काम करती है। उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि के बगैर उसकी रचना की कल्पना नहीं की जा सकती है। लेखक अपने सृजनात्मक लेखन के लिए किसी भी विषयवस्तु का चयन करता हो अर्थात् लेखक की रचना की विषयवस्तु भले ही ऐतिहासिक, पौराणिक, मिथकीय या फिर रचना में भविष्य की कल्पना ही क्यों न की गई हो। रचना का आधार लेखक की वर्तमान सामाजिक पृष्ठभूमि ही होती है और उस विषयवस्तु का कथ्य रचनाकार की वर्तमान सामाजिकता के लिए प्रासंगिक होना स्वाभाविक होता है।

इस इकाई में आपको दार्शनिक विचारधारा को लेखक की एक निजी आवश्यकता के रूप में बतायी जाएगी। दार्शनिक विचारधारा कितनी दार्शनिक अथवा कितनी व्यस्थाबद्ध है, वह कितनी सत्याधारित है, यह एक अलग सवाल है। लेखक के लिए महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि वह अन्तःकरण स्थित जीवन-ज्ञान व्यवस्था को व्यापक दृष्टिकोण से व्याख्यायित करता है। लेखक अपनी रचना में दार्शनिक भावधारा को ज्यों का त्यों प्रकट नहीं करता है, बल्कि वह उसे एक दृष्टि रूप में ग्रहण करके उसके अनुसार जीवन-व्याख्या या जीवन-आलोचना उपस्थित करता है। दार्शनिकता लेखक के हृदय में मूल्यभावना भरती है और उस मूल्यभावना के अनुसार वह किन्हीं विशेष अन्तर्तत्वों को महत्त्व प्रदान कर शेष को अभिव्यक्ति क्षेत्र से बहिर्गत कर देता है, अथवा उन्हें उपेक्षित करता है।

2.1.2. लेखक की सामाजिक पृष्ठभूमि

किसी भी रचना को समझने के लिए उसके रचनाकार को समझना आवश्यक हो जाता है। उसी तरह किसी रचनाकार या लेखक को जानना हो तो उसकी पृष्ठभूमि या उसका परिवेश का ज्ञान होना भी उतना ही ज़रूरी है। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके आस-पास के माहौल से गढ़ा गया होता है। कोई भी लेखक इस नियम का अपवाद नहीं होता है। कहते हैं कि किसी भी लेखक के लेखन के पीछे जो बड़ा तत्त्व काम करता है, वह है उसका जीवन संघर्ष, उसकी पारिवारिक और सामाजिक पृष्ठभूमि। कहने को तो सृजन या लिखना खुद की बेचैनी को व्यक्त करने का माध्यम है। अब यह लेखक पर निर्भर करता है कि अपने आसपास की बेचैनियों और दुखों में उसे अपना दुःख कितना दिखाई देता है। दरअसल यह इस बात पर ज्यादा निर्भर करता है कि लेखक की पृष्ठभूमि क्या है। लेखक जिस सामाजिक परिवेश में रहता है, उसकी लेखनी उस समाज के अंदर होने वाली घटनाओं से कितना प्रभावित होती है। लेखक जहाँ रहता है, उसका समाज कैसा है, क्या वह धर्म, जाति, समुदाय इत्यादि वर्गों में विभाजित है। राजनैतिक-आर्थिक घटनाओं का प्रभाव उसके आस-पास के जीवन पर कैसा पड़ता है, लेखक चूँकि बेहद सम्वेदनशील होता है, अतः उनसे वह मानसिक रूप से गहरे प्रभावित होता है।

आप जानते हैं कि भारतीय समाज वर्ग विभाजित समाज के साथ जाति विभाजित समाज है। फिर इनमें कई उप-वर्ग व उप-जातियाँ हैं। समाज और साहित्य के बीच महत्त्वपूर्ण कड़ी है – लेखक का व्यक्तित्व। साहित्य के रूप में समाज की जो छाया प्रकट होती है – वह लेखक के व्यक्तित्व के माध्यम से आती है। साहित्य के निर्माण में इस बीच की कड़ी लेखक के व्यक्तित्व का बहुत महत्त्व है और यह महत्त्व इस बात का है कि एक और इसका सम्बन्ध समाज से है तो दूसरी ओर साहित्य से। साहित्य रचना की प्रक्रिया में समाज लेखक और साहित्य परस्पर एक दूसरे को इस तरह प्रभावित करते है कि इनमें से प्रत्येक क्रमशः परिवर्तित और विकसित होता रहता है – समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य से पुनः समाज। क्रिस्टोफर कॉडवेल ने कहा है कि "रचना सामाजिक संसार में अपना अस्तित्व रखती है। उसकी निर्मिति उन वस्तुओं से होती है जो अपना सामाजिक सन्दर्भ रखता है।"

रचना की निर्मिति से लेकर अध्ययन तक सामाजिक पृष्ठभूमि की अनिवार्यता होती है। लेखक जो समाज का सर्वाधिक सम्वेदनशील प्राणी है, वह रचना कर्म के लिए उसी समाज पर निर्भर है। उसके भावजगत् का निर्माण और अनुभव सम्वेदन में पैनापन सामाजिक परिवेश से ही आता है। कला मनुष्य के अनुभूतिगत विकास का फल है जो सामाजिक परिवेश के प्रतिक्रियास्वरूप प्रकट होती है। इसलिए समाज का चित्रण करना कला का मूल धर्म है। पतन के गर्त में गिरता हुआ समाज हो या प्रगति के पथ पर चलता हुआ, साहित्य या कला उसकी प्रवृतियों को किसी न किसी रूप में अपने भीतर तरजीह देती है। यह संकटकाल में धैर्य, निष्क्रियता में सक्रियता और जड़ता में गतिशीलता का सन्देश देता है क्योंकि ये चीजें लेखक की मनोरचना को छेड़ती हैं और वह उसी अनुरूप प्रतिक्रिया करने को बाध्य होता है।

लेखक समाज का चित्रण दो रूपों में करता है – एक, यथार्थ रूप में और दूसरे आदर्श रूप में। यथार्थ रूप साहित्य या कला और समाज के बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव यानी साहित्य का दर्पण सिद्धान्त से जुड़ा हुआ है। इसमें परिस्थितियों और घटनाओं का यथातथ्य वर्णन करता है, जबकि लेखक न केवल वस्तुस्थिति को सामने लाता है अपितु समाज के भावी जीवन की संरचना तथा रूपरेखा भी प्रस्तुत करता है। लेखक का समाज से केवल 'As it is' वाला सम्बन्ध नहीं होता बल्कि इसके साथ 'What should be' का सम्बन्ध भी होता है। यथार्थ चित्रण के रूप में साहित्य समाज की सच्चाई, उसकी समस्याओं और विकृतियों को भी प्रस्तुत करता है, आदर्श रूप में यथार्थ से अलग एक काल्पनिक रूप पेश करता है, जिसमें उसका सुधरा हुआ संशोधित रूप सामने आता है। यथार्थ रूप में लेखक रोग का लक्षण दिखता है, आदर्श रूप में उसका उपचार। उत्तम लेखक इन दोनों पक्ष का समावेश करता है। प्रेमचंद इन दोनों को लेकर चले थे।

लेखक की रचना में समाज परिवर्तित रूप में व्यक्त होता है। समाज से साहित्य का सम्बन्ध कुछ-कुछ वही है जो धरती से फूल का है। फूल धरती से उत्पन्न होता है। इसका मतलब यह नहीं है कि उसके डाल, पात, पंखुड़ी, वर्ण, गन्ध आदि मिट्टी के हैं कि उससे मिट्टी की-सी सोंधी गन्ध आती है और रंग भी मटमैला होता है। धरती का रूप, रस, फूल में नया वर्ण व गन्ध उत्पन्न करता है। इसी तरह लेखक अपनी रचना में समाज को ज्यों का त्यों नहीं झलकाता है, बल्कि रूपान्तरित रूप में अन्तर्निहित रहता है।

लेखक की रचना में प्रवर्तित समाज की मान्यताओं के द्वारा होता है। यही वजह है कि स्वाधीन समाज की मानसिकता वही नहीं होती है, जो पराधीन समाज की होती है। स्वाधीन समाज में कलाकार की चेतना निर्द्वन्द्व और निर्भीक रूप से रचना में रूपायित होती है, जबकि पराधीन समाज में वह भयभीत होकर व्याजस्तुति अथवा अभिव्यक्ति के छायात्मक रूपों या प्रतीकों के माध्यम से लेखक प्रकट करता है। इसी तरह शान्ति के दौर से गुजरते समाज और हलचल पूर्ण परिस्थितियों में साँस लेते समाज की रचना के भावगत और शिल्पगत चरित्र में बुनियादी अन्तर आ जाता है। लेखक के सृजनशील कर्म में उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि भावगत और शिल्पगत रूप में भी अभिव्यक्त होते हैं। सामाजिक वस्तु-तत्त्व में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप ही नये विषयों की अभिव्यक्ति के नये रूपों तथा नई शैलियों का उद्भव होता है। यही वजह है कि लेखक की रचना एक ऐसे पौधे के रूप में होती है जो विशेष जलवायु में अपने आप फलती-फूलती है।

लेखक की रचना में समाज संशोधित होकर आता है। इसलिए मुक्तिबोध ने साहित्य को 'जीवन की पुनर्रचना' कहा है। जिसके द्वारा वह समाज को ऐसा प्रतिदान देती है, जिसका अनुकरण हमारी चेतना को सुसंस्कृत करता है सभ्यता संस्कृति के विकास के सोपान को दर्शाता है। यह विकट कार्य समाज के लिए प्रतिबद्ध एवं ईमानदार रचनाकार ही सम्पन्न कर सकता है, जिसमें सामाजिक परिवर्तन की छटपटाहट भरी हो। भारत में तुलसी और फ्रांस में बालतेयर ऐसे ही मनीषी थे। बालतेयर की उर्वर प्रतिभा ने युग चेतना को इस तरह प्रभावित किया कि समस्त यूरोप का सामाजिक ढाँचा चरमरा उठा और अप्रत्याशित परिवर्तन के चिह्न दिखने लगे। तुलसी के युगद्रष्टा व्यक्तित्व द्वारा की गई रामराज्य की परिकल्पना में समाज के प्रति कलाकार की अनुदान वृत्ति ही निहित है। इस तरह सामाजिक बदलाव में लेखक की रचना की भागीदारी की अपनी खास भूमिका होती है। सामाजिक परिवर्तन में लेखक आमतौर पर दो तरह की विधियाँ अपनाता है – सुधारवादी और क्रान्तिकारी। सुधारवादी दृष्टि ढाँचे को कभी परिवर्तित नहीं करती, ऊपरी भाग को ही बदलती है। क्रान्तिकारी विधि में समाज के तमाम ढाँचे को तोड़कर एक नया स्वरूप गढ़ने का विधान है।

व्यक्ति और समाज की ही तरह रचना और समाज का अटूट रिश्ता होता है। एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती है। कवि या रचनाकार जिस समाज में रहता है, उसे वह देखता है कि क्या उसका समाज सामन्ती है, पूँजीवादी है, ग्रामीण है, शहरी है, अर्ध ग्रामीण या अर्ध शहरी है, उसमें कितने तरह की असमानताएँ, अज्ञानताएँ, अन्धविश्वास, शोषण, अत्याचार, भ्रष्टाचार, व्यभिचार इत्यादि विकृतियाँ हैं, रचनाकार की दृष्टि समाज के सुन्दर पक्षों पर भी जाती है।

आइए, अब कुछेक रचनाकारों की सामाजिक पृष्ठभूमि को उदाहरण के माध्यम से समझते हैं। कबीर मध्ययुगीन सन्त कवि हैं। मध्ययुग हिन्दी साहित्य के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काल रहा है। मध्ययुग का पूर्वार्द्ध जहाँ भक्ति आन्दोलन का काल रहा है वहीं इसका उत्तरार्द्ध घोर भौतिकवादी मान्यताओं वालें रीतिग्रन्थकारों का भी काल रहा है। भारत में मध्ययुग सामाजिक रूप से उथल-पुथल का काल रहा है। शोषक सामन्त, निर्धनों और निम्नवर्ग का शोषण कर रहे थे। निम्नवर्ग अथवा स्पष्ट कहें तो निचली जातियाँ एक ओर तो सामन्ती उत्पीड़न से बेहाल थीं तथा दूसरी ओर सामाजिक भेद-भाव से त्रस्त थीं। जाति-पाति का भेद-भाव अपने चरम पर था। मानवीय मूल्यों का ह्रास होता जा रहा था तथा पाखण्ड और आडम्बर की जड़ें तेजी से फैलती जा रहीं थीं। कबीर का जन्म ऐसे ही समय में हुआ था। वे निम्न तबके के जुलाहे थे। उन्होंने सामाजिक भेद-भाव का विष-दंश झेला था। जाति प्रथा पर आधारित जन्मगत श्रेष्ठता का प्रचलन तथा श्रेष्ठ गुणों का तिरस्कार आदि उन्होंने स्वयं देखा था। कबीर को ये भेद-भाव स्वीकार नहीं थे। अतः उन्होंने व्यक्ति को जन्म के आधार पर नहीं, कर्मों और गुणों के आधार पर श्रेष्ठ माना है –

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार की पड़ी रहन दो म्यान॥

कबीर की सामाजिक पृष्ठभूमि में जाति-पाँति का भेदभाव का कितना चरम रूप रहा होगा, उसकी जानकारी हमें निम्नलिखित दोहे से मिलती है –

जो तम बांभन बंभनी जाया। आन बाट ह्वे क्यों नहिं आया॥
जो तम तुरक तुरकिनी जाया। भीतर ख़तना क्यों न कराया॥

इसी तरह आप देख सकते हैं कि हिन्दी साहित्य में नागार्जुन प्रगतिशील लेखक माने जाते हैं। उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि सामन्ती अवशेषों से जूझते हुए एक ऐसे समाज की है जो निरन्तर पुराने और नये मूल्यों से टकराता रहा है तथा विकास की नयी सम्भावनाएँ ढूँढने में परेशान है। उन्हीं परिस्थितियों और मान्यताओं का प्रभाव नागार्जुन पर पड़ा। उनकी विचारधारा पर निराला की विद्रोही चेतना, राहुल सांकृत्यायन की मार्क्सवादी दृष्टि और सहजानन्द सरस्वती की संघर्षधर्मिता का बड़ा गहरा प्रभाव है। वे राजनैतिक संघर्षों से जुड़ते हैं, किसान आन्दोलन में भाग लेते हैं और सामाजिक न्याय की माँग करते हैं। अत्याचार-अनाचार से राष्ट्र की मुक्ति, सत्य और न्याय की सुरक्षा, अमंगल और विषमता के उन्मूलन की भावना उनके लेखन की प्रेरणाभूमि है। नागार्जुन की रचना की प्रेरणा-स्रोत सामान्य जनता है, जनता के दुःख दर्द, हर्ष-उल्लास और आशा-आकांक्षा हैं। वे खुद स्वीकार करते हैं कि "जब कभी मैं ग्रामांचलों के किनारे बसी हुई दलित बस्तियों के अंदर अथवा महानगरों के पिछवाड़े गंदे नालों के इर्द-गिर्द झुग्गियों की दुनिया में जाता हूँ तो सुविधाप्राप्त वर्गों द्वारा परिचालित राजनीति के प्रति मेरा रोम रोम नफ़रत से सुलग उठता है।" उन्हें सामाजिक वैषम्य का गहरा अहसास है। उनकी एक ऐसी कविता का चित्रण देखिए –

गठरी बना गई
माघ की ठिठुरन
अद्भुत यह सर्वांगासन
वो देखो ! हिली-डुली गठरी
दे गया दिखायी झबरा माथा
सुलग उठी माचिस की तिल्ली
बीड़ी लगा फूँकने नाकहिं मुखड़ा
अँधेरे में डूब गयी ठूँठ।

कविता में देखिये कि कैसे कवि की सामाजिक पृष्ठभूमि चित्रित हुई है, जिसमें अमीरों के लिए जाड़ा आनन्द का मौसम है जबकि गरीबों के लिए जाड़ा मृत्यु और कष्ट का सन्देश लेकर आता है। उसी समाज में स्त्रियों की बेहद करुण स्थिति रही है। घर परिवार में दोयम दर्जे का व्यवहार तो रहा ही है, घर के बाहर थोड़ी सी चूक होते ही बलात्कार की शिकार होने में भी वक्त नहीं लगता है। देखिए कि नयी कविता के प्रसिद्ध कवि रघुवीर सहाय ने अपने इस सामाजिक अनाचार को कैसे व्यक्त किया है –

कई कोठरियाँ थीं कतार में,
उनमें किसी में एक औरत ले जायी गयी।

थोड़ी देर बाद उसका रोना सुनायी दिया,
उसी रोने से हमें जाननी थी एक पूरी कथा,
उसके बचपन से जवानी तक की कथा।

आज का लेखक हर तरह के सूचना-तन्त्र से घिरा हुआ है अर्थात् सोशल मीडिया ने बहुत-सी सत्ताओं और चौहद्दियों को नेस्तनाबूद किया हुआ है। मगर इसके साथ हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इसमें हो रहा लेखन या साहित्य कोई प्रचार या नाम कमाने का माध्यम या औजार भर नहीं है। न ही लेखन ज़िंदगी में सफल-विफल होने का कोई गुरुमन्त्र है। लेखन तो एक निरन्तर चलने वाली और लम्बी साहित्य-साधना है। समकालीन सृजनात्मक लेखन में दलित, आदिवासी और स्त्रियों की मौजूदगी से न केवल हिन्दी साहित्य का रक़बा बढ़ा है बल्कि वह और अधिक समृद्ध होता जा रहा है। कुछ ऐसे समुदाय, जिन्हें हमारा कुलीन सवर्णवादी लेखक समुदाय कभी स्वीकार नहीं करता था, आज दलित और आदिवासी साहित्य के बिना हिन्दी साहित्य की परिकल्पना ही असम्भव है। स्त्री लेखन ने अपनी जो पहचान और ज़मीन आज तैयार कर ली है वह इसी विमर्श का परिणाम है। ये सभी अस्मितावादी लेखक अपने समाज, अपने समुदाय के आस-पास जीवन स्थितियों का चित्रण कर रहे हैं। इसलिए अस्मितावादी कहानीकारों का कहना है कि उनकी कहानियों के पात्र उनके आस-पास के लोग ही हैं। जो उनके बहुत नज़दीक के लोग हैं, इन्हें बड़े गझिन हालात में संघर्ष करते, रास्ता तलाशते, तड़पते, टूटते-बिखरते इस हद तक देखते हैं कि उन्हें अपने से बाहर नहीं मान सकता या सकती। इसी के साथ अपने उस संघर्ष को भी देखता है, जहाँ आम लोगों के जीवन के दुखों-तकलीफों की साक्षी-सहभागी होते हुए भी, समझते-बूझते हुए भी अपने आप से लड़ रहे होते हैं।

इस प्रकार अब आप समझ गए होंगे कि लेखक के लिए उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि किस तरह से उसकी रचना के लिए खाद-पानी का काम करती है। उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि के बगैर उसकी रचना की कल्पना नहीं की जा सकती है। लेखक अपने सृजनात्मक लेखन के लिए कोई भी विषयवस्तु का चयन करता हो अर्थात् लेखक की रचना की विषयवस्तु भले ही ऐतिहासिक, पौराणिक, मिथकीय या फिर रचना में भविष्य की कल्पना ही क्यों न की गई हो। रचना का आधार लेखक की वर्तमान सामाजिक पृष्ठभूमि ही होती है और उस विषयवस्तु का कथ्य रचनाकार की वर्तमान सामाजिकता के लिए प्रासंगिक होना स्वाभाविक होता है।

2.1.3. लेखक का दार्शनिक विचार

सबसे पहले आपको समझना होगा कि दार्शनिक विचारधारा लेखक की एक निजी आवश्यकता होती है। वह दार्शनिक विचारधारा कितनी दार्शनिक अथवा कितनी व्यवस्थाबद्ध है, वह कितनी सत्याधारित है, यह एक अलग सवाल है। लेखक के लिए महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह अन्तःकरण स्थित जीवन-ज्ञान व्यवस्था को व्यापक दृष्टिकोण से व्याख्यायित करता है। लेखक अपनी रचना में दार्शनिक भाव-धारा को ज्यों का त्यों प्रकट नहीं करता है, बल्कि वह उसे एक दृष्टि रूप में ग्रहण करके उसके अनुसार जीवन-व्याख्या या जीवन-आलोचना (जैसा और जितना रचना में सम्भव है) उपस्थित करता है। उस दृष्टि द्वारा उसके हृदय में मूल्य भावना विकसित

होती है और उस मूल्यभावना के अनुसार वह किन्हीं विशेष अन्तर्तत्वों को महत्त्व प्रदान कर शेष को अभिव्यक्ति क्षेत्र से बहिर्गत कर देता है, अथवा उन्हें उपेक्षित करता है।

सृजनात्मक लेखन में यह मूल्यभावना बहुत सक्रिय होती है। वह किन्हीं विशेष जीवन-तत्त्वों को अभिव्यक्ति महत्त्व प्रदान करती हुई, उन्हें विशेष कोण से, विशेष दृष्टि से ही स्थापित करती है। यह कोण, यह दृष्टि क्या है – वह उस ज्ञानात्मक भावधारा का ही एक रूप है जिसे दार्शनिक विचारधारा कहा गया है। इसलिए लेखक अपने औचित्य स्थापना के लिए, आत्मविस्तार के लिए, अपने को उच्चतर स्थिति में उद्बुद्ध करने के लिए अन्तःसंगम दार्शनिक भावधाराओं से करता है। चूँकि वह लेखक है, इसलिए वह अपनी रचना में जीवन-चित्र ही प्रस्तुत करता है, न कि जीवन की व्याख्या। किन्तु, उसके पास अपना एक वैचारिक दृष्टिकोण रहता ही है जो एक मूल्याकन कर्मी और नियन्त्रणशील शक्ति के रूप में उसकी रचना के रूप-तत्त्व और तत्त्व-रूप को नियमित करता है। इसलिए यह कहना गलत है कि लेखक के पास जीवन-जगत् की व्याख्या अर्थात् विचारधारा का नितान्त अभाव है।

हाँ, यह सही हो सकता है कि अपनी एक विशेष अवस्था में वह एक सर्वांगीण जीवन-जगत् व्याख्या – ऐसी जो उसकी सब दृष्टियों से उसे सन्तोष प्रदान कर सके, उसने अभी प्राप्त नहीं की है, इसलिए उसने अमुक विचारधारा से अमुक तत्त्व लेकर भिन्न भाव-धारा से कोई अन्य तत्त्व लेकर, किसी दूसरी फ़िलोसॉफ़ी से कोई तीसरी बात लेकर आपने आपको परिपुष्ट करने का प्रयत्न किया है, अथवा जीवन-जगत् के वास्तविक क्षेत्र में किसी सामान्य ज्ञान से बहुत-सी बातों से उसने अपने को संतुष्ट कर लिया है। इस तरह स्पष्ट है कि लेखक व्यक्तित्व का एक पक्ष वैचारिक है, और यह वैचारिक पक्ष – वह अपनी पूरी रचना में भले ही उपस्थित न करे, वह स्वयं ओझल रहकर किन्तु एक शक्ति के रूप में उसके उस सम्वेदनात्मक-अनुभवात्मक पक्ष का, जो कि रचना में उपस्थित होता है, नियमन-नियन्त्रण अवश्य ही करता है।

इन्हीं बातों को देखते हुए लेखक के इस वैचारिक पक्ष के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए, साहित्य के क्षेत्र में अनेक विचारधाराएँ उपस्थित की जाती हैं, उपस्थित होती हैं – आध्यात्मिक, समाजवादी तथा समाजवाद-विरोधी तथा अन्य। लेखक का अन्तर्मन विचारों को आत्मानुभूत जीवन-सन्दर्भों से एकाकार करके ग्रहण करता है। अन्तर्मन में उपस्थित वास्तविक जीवन विचारों में प्रवाहित होता है। विचारों की यह प्रवहनशीलता लेखक की सारी सम्वेदनाओं से मिलकर उसके अन्तर्जीवन का अंश बन जाती है। लेकिन जहाँ ये विचार लेखक के मन में सम्वेदनात्मक रूप से उपस्थित जीवन-सन्दर्भों से ग्रहण नहीं किये जाते, वहाँ वे बाहरी ही रह जाते हैं। ऐसे पता नहीं कितने विचार हैं, जो अपने-आप में सुसंगत और न्यायोचित रहते हैं। किन्तु लेखक के लिए वे उसी ढंग से बाहरी हो जाते हैं, जिस प्रकार बाज़ार घर के बाहर होता है। ऐसी स्थिति में लेखक यह समझे कि ऐसे विचारों को उस पर लादा जा रहा है, तो मन ही मन या प्रकट रूप से वह विक्षुब्ध होकर विद्रोह कर उठता है। लेखक चूँकि किसी न किसी रूप से जीवन का चित्रण करता है, इसीलिए उसकी जीवनानुभूतियों को उसकी भावनाओं, कल्पनाओं और जीवनानुभूति-रंजित बुद्धि को उत्तेजित और प्रोत्साहित करने वाली शब्दावली और शैली में जब तक कोई समीक्षा नहीं की जाती तब तक वह उसे प्रभावित या प्रोत्साहित अथवा प्रेरित नहीं कर सकती।

आपको इस बात पर गौर करना चाहिए कि लेखक के चिन्तन के औजार, सोचने का ढंग, विचारों को छूने की प्रक्रिया कुछ अलग होती है; यह नहीं कि एक लेखक दार्शनिक नहीं हो सकता, किन्तु उसका 'दर्शन' हमें उसकी दार्शनिक स्थापनाओं में नहीं खोजना चाहिए। लेखक का दर्शन सोच के विषयों में नहीं, बल्कि स्वयं सोच की प्रक्रिया और उसके व्यवहार में निहित होता है। हिन्दी में भक्तिकाल से लेकर आज तक हर लोकप्रिय या गम्भीर लेखक या रचनाकर किसी न किसी विचारधारा का अनुकरण करता रहा है। भक्तिकालीन साहित्यकार ईश्वर से सम्बन्धित विचारों को अपनी रचना में जगह देते रहे। आधुनिक काल में ईश्वर सम्बन्धी विचार राजनैतिक होने लगे। दार्शनिकता का स्वरूप बदल गया। धीरे-धीरे रचनाकारों की दार्शनिकता का स्वरूप साफ झलकने लगा। वस्तुतः दार्शनिकता लेखक का निजी चयन होता है।

2.1.4. पाठ सार

किसी भी रचना को समझने के लिए उसके रचनाकार को समझना आवश्यक हो जाता है। उसी तरह किसी रचनाकार या लेखक को जानना हो तो उसकी पृष्ठभूमि या उसका परिवेश का ज्ञान होना भी उतना ही ज़रूरी है। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके आसपास के माहौल से गढ़ा गया होता है। कोई भी लेखक इस नियम का अपवाद नहीं होता है।

रचना की निर्मिति से लेकर अध्ययन तक सामाजिक पृष्ठभूमि की अनिवार्यता होती है। लेखक जो समाज का सर्वाधिक सम्वेदनशील प्राणी है, वह रचना कर्म के लिए उसी समाज पर निर्भर है। उसके भावजगत् का निर्माण और अनुभव सम्वेदन में पैनापन सामाजिक परिवेश से ही आता है।

लेखक की रचना में प्रवर्तित समाज सामाजिक मान्यताओं के द्वारा होता है, यही वजह है कि स्वाधीन समाज की मानसिकता वही नहीं होती है, जो पराधीन समाज की होती है। स्वाधीन समाज में कलाकार की चेतना निर्द्वन्द्व और निर्भीक रूप से रचना में रूपायित होती है, जबकि पराधीन समाज में वह भयभीत होकर व्याजस्तुति अथवा अभिव्यक्ति के छायात्मक रूपों या प्रतीकों के माध्यम से लेखक प्रकट करता है। इसी तरह शान्ति के दौर से गुजरते समाज और हलचल पूर्ण परिस्थितियों में साँस लेते समाज की रचना के भावगत और शिल्पगत चरित्र में बुनियादी अन्तर आ जाता है। लेखक के सृजनशील कर्म में उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि भावगत और शिल्पगत रूप में भी अभिव्यक्त होते हैं।

लेखक के लिए उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि किस तरह से उसकी रचना के लिए खाद-पानी का काम करती है। उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि के बगैर उसकी रचना की कल्पना नहीं की जा सकती है। लेखक अपने सृजनात्मक लेखन के लिए किसी भी विषयवस्तु का चयन करता हो अर्थात् लेखक की रचना की विषयवस्तु भले ही ऐतिहासिक, पौराणिक, मिथकीय या फिर रचना में भविष्य की कल्पना ही क्यों न की गई हो। रचना का आधार लेखक की वर्तमान सामाजिक पृष्ठभूमि ही होती है और उस विषयवस्तु का कथ्य रचनाकार की वर्तमान सामाजिकता के लिए प्रासंगिक होना स्वाभाविक होता है।

दार्शनिक विचारधारा लेखक की एक निजी आवश्यकता के रूप में होती है। दार्शनिक विचारधारा कितनी दार्शनिक अथवा कितनी व्यस्थाबद्ध है, वह कितनी सत्याधारित है, यह एक अलग सवाल है। लेखक के लिए महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि वह अन्तःकरण स्थित जीवन-ज्ञान व्यवस्था को व्यापक दृष्टिकोण से व्याख्यायित करता है। लेखक अपनी रचना में दार्शनिक भावधारा को ज्यों का त्यों प्रकट नहीं करता है, बल्कि वह उसे एक दृष्टि रूप में ग्रहण करके उसके अनुसार जीवन-व्याख्या या जीवन-आलोचना उपस्थित करता है। दार्शनिकता लेखक के हृदय में मूल्यभावना भरती है और उस मूल्यभावना के अनुसार वह किन्हीं विशेष अन्तर्तत्वों को महत्त्व प्रदान कर शेष को अभिव्यक्ति क्षेत्र से बहिर्गत कर देता है, अथवा उन्हें उपेक्षित करता है।

हिन्दी में भक्तिकाल से लेकर आज तक हर लोकप्रिय या गम्भीर लेखक या रचनाकर किसी न किसी विचारधारा का अनुकरण करता रहा है। भक्तिकालीन साहित्यकार जहाँ ईश्वर से सम्बन्धित विचारों को अपने रचना में जगह देते रहे वहीं आधुनिक काल में ईश्वर सम्बन्धी विचार राजनैतिक होने लगे और दार्शनिकता का स्वरूप बदलता गया।

2.1.5. बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. लेखक अपनी रचना में दार्शनिकता को ज्यों का त्यों प्रकट नहीं करता है क्योंकि –
   (क) वह नहीं चाहता है कि सिर्फ उसकी विचारधारा को पढ़ा या समझा जाय।
   (ख) रचनात्मक लेखक का उद्देश्य अपनी दार्शनिकता का प्रचार करना नहीं है।
   (ग) रचनात्मक लेखक अपनी कृति के माध्यम से अपने दार्शनिक विचारों से भी रू-ब-रू कराना चाहता है।
   (घ) दार्शनिक विचार लेखक की लेखकीय राजनीति होती है।
2. निम्नलिखित में से लेखक की सामाजिक पृष्ठभूमि में किन-किन तत्त्वों की गिनती की जा सकती है –
   (क) गाँव, घर, पास-पड़ोस, स्कूल, मुहल्ला
   (ख) पृथ्वी
   (ग) मंगल ग्रह
   (घ) उपर्युक्त सभी

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लेखक अपनी रचना-प्रक्रिया के समय जितना बेचैन होता है तो क्या उसके मानस में वह बेचैनी सामाजिकता को लेकर नहीं होती है ?
2. लेखक की सामाजिक पृष्ठभूमि से क्या आशय है ?
3. लेखक के दार्शनिक विचार का क्या मतलब है ?

4. हिन्दी साहित्य के किसी भी लेखक की किसी एक कृति की सामाजिक पृष्ठभूमि के बारे में संक्षेप में बताइए।
5. दार्शनिक विचार और राजनैतिक विचार में क्या अन्तर है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. क्या आप इस तर्क से सहमत हैं कि कोई भी लेखक अपने परिवेश के प्रति जितना अधिक जागरूक होगा, उसकी रचना में सामाजिक दायित्व का सन्देश भी उतना ही प्रभावकारी होगा ? अपना मत प्रकट करते हुए युक्तियुक्त विवेचना कीजिए।
2. किसी भी रचनाकार के लिए दार्शनिक विचारों की अहमियत कितनी आवश्यक होती है ? तार्किक विश्लेषण कीजिए।
3. किसी भी रचनात्मक कृति के लिए सामाजिकता कितनी ज़रूरी होती है ? सोदाहरण विवेचना कीजिए।
4. अपने पसंदीदा लेखक की किसी एक कृति की सामाजिक पृष्ठभूमि का विस्तृत आकलन कीजिए।
5. किसी भी लेखक की रचना में अभिव्यक्त दार्शनिक विचारों की विस्तृत विवेचना कीजिए।

2.1.6. व्यवहार

1. अपने क्षेत्र-विशेष के किसी रचनाकार से मिलकर उनके सामाजिक परिवेश के बारे में जानकारी प्राप्त कीजिए और एक सारगर्भित आलेख लिखिए।
2. किसी प्रसिद्ध रचना में अभिव्यक्त सामाजिक स्वरूप की अपने आस-पास के समाज से तुलना करते हुए एक सारगर्भित आलेख तैयार कीजिए।
3. अपने क्षेत्र के किसी विख्यात रचनाकार से मिलकर, वार्ताकर पता लगाइए कि दार्शनिकता किसी लेखक के लिए कितनी ज़रूरी होती है ? इस विषय पर उनसे हुई भेंटवार्ता को संवाद की शक्ल में लिपिबद्ध कीजिए।

2.1.7. कठिन शब्दावली

अन्तःकरण	:	पाठक या लेखक का हृदय
अनुभूतिगत	:	एहसास से सम्बन्धित
जीवनानुभूति	:	जीवन जीने का एहसास, इसे रचनाकार अपनी कृति में अभिव्यक्त करता है।
निर्द्वन्द्व	:	बिना किसी द्वन्द्व के अर्थात् बिना कोई संघर्ष किए
व्याजस्तुति	:	निन्दा की आड़ में प्रशंसा करना
पृष्ठभूमि	:	पीछे की भूमि अर्थात् किसी रचना की निर्मिति की वजहें, भूमिका
आध्यात्मिक	:	ईश्वर के प्रति लगाव
मिथकीय	:	ऐसी कहानियाँ जिनके पात्रों या चरित्रों को ईश्वरीय तत्त्वों से जोड़ दिया जाता है
बहिर्गत	:	बाहर करना या निकालना, बाहरी

2.1.8. उपयोगी / सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. नागार्जुन, सतरंगी पंखोंवाली (कविता संग्रह)
2. रघुवीर सहाय (2011), लोग भूल गये हैं, (कविता संग्रह), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, ISBN: 978-81-26706-00-6
3. निर्मल वर्मा (2001), कला का जोख़िम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, ISBN: 81-267-2074-5
4. मुक्तिबोद्ध (2008), नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, ISBN: 978-81-71190-91-7

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 2 : सृजनात्मकता के सामाजिक-दार्शनिक आधार

इकाई – 2 : लेखक के सामाजिक सरोकार

इकाई की रूपरेखा

2.2.0. उद्देश्य कथन
2.2.1. प्रस्तावना
2.2.2. सामाजिक सरोकार से आशय
2.2.3. लेखन का सामाजिक सरोकार और लेखक के सामाजिक सरोकार में फर्क
2.2.4. लेखक के सामाजिक सरोकार
2.2.5. पाठ सार
2.2.6. बोध प्रश्न
2.2.7. व्यवहार
2.2.8. कठिन शब्दावली
2.2.9. उपयोगी / सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

2.2.0. उद्देश्य कथन

सृजनात्मक लेखन पाठ्यचर्या के दूसरे खण्ड 'सृजनात्मकता के सामाजिक-दार्शनिक आधार' की यह दूसरी इकाई 'लेखक के सामाजिक सरोकार' विषय पर आधारित है। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. सामाजिक सरोकार के आशय से परिचित हो पाएँगे।
ii. लेखन का सामाजिक सरोकार और लेखक के सामाजिक सरोकार में फर्क को जान सकेंगे।
iii. लेखक के लेखन के साथ कौन-कौन से सामाजिक सरोकार होते है जैसे प्रश्नों के उत्तर जान पाएँगे।
iv. समय के बदलते हालात के साथ लेखक के सामाजिक सरोकार बदलते गए हैं जैसी प्रक्रिया को जान पाएँगे।

2.2.1. प्रस्तावना

कोई भी लेखक अपने समय की सामाजिकता से अलग नहीं होता है। जैसा कि आपको पता है कि लेखक समाज का सबसे अधिक सम्वेदनशील प्राणी है। समय बदलने के साथ उसके सरोकार बदलते गए हैं। इस सम्बन्ध में आप हिन्दी साहित्य के इतिहास पर नज़र डालेंगे तो समझने में आसानी होगी कि कैसे बदलते समय के साथ लेखकों के सामाजिक सरोकार बदलते गए हैं। आदिकालीन साहित्य में कवि स्वयं अपने राजा के साथ मिलकर दुश्मनों से युद्ध करते हैं और लौटकर कविता की रचना भी करते हैं। मध्यकालीन सन्त-भक्त कवि ईश्वर की आराधना के बहाने सामाजिक सरोकारों से पूरी तरह से जुड़े हुए थे। वहीं रीतिकालीन साहित्यकार अपने

परिवेश से जुदा होते दिखाई पड़ते हैं, इसलिए उनकी रचनाओं में सामाजिक सरोकार बहुत ही कम ही दिखाई देता है। आधुनिक काल में फिर से एक नये तरह के सामाजिक सरोकारों से लेखकों का सामना होता है। भारतेन्दु युग से लेकर अब तक का लेखक अपने सामाजिक सरोकारों से जुड़ा रहा है। आज के तमाम अस्मितावादी लेखन इसके साफ़ उदाहरण हैं। ये लेखन विविध रूप में नये माध्यमों से उभरकर आ रहे हैं।

2.2.2. सामाजिक सरोकार से आशय

सामाजिक सरोकार का अभिप्राय होता है – व्यक्ति को अपने दायित्वों का बोध होना अर्थात् समाज के स्वरूप और उसके महत्त्व को समझकर उसके प्रति जिम्मेदारी की भावना । सामाजिक सरोकार सामाजिक वातावरण में विकसित होते हैं। दूसरे शब्दों में, जब हम जन-साधारण के पास आते हैं, उनसे उनकी समस्याओं के बारे में बात करते हैं और उन समस्याओं के निराकरण के लिए अपनी भूमिका तय करते हैं, यह भूमिका ही हमारा सामाजिक सरोकार कहलाती है।

आप जानते हैं कि वर्तमान समाज बड़ी तेजी से बदल रहा है। इस परिवेश में सामाजिक सम्बन्ध सिकुड़ते जा रहे हैं। सामाजिक सरोकार से जैसे नाता ही खत्म होता जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक अलग दुनिया बन गई है, और वह किसी से कोई सरोकार नहीं रखना चाहता है। यह स्थिति केवल नगरों की नहीं, छोटे शहर से लेकर अब तो गाँव भी इससे अछूते नहीं हैं। इस स्थिति के लिए टेलीविज़न, कंप्यूटर और अब मोबाइल को दोषी माना जा रहा है। कुछ हद तक यह सही भी है। आज हर व्यक्ति अपना अधिक से अधिक समय स्क्रीन पर गुजारता है, फिर चाहे वह स्क्रीन मोबाइल की हो या कंप्यूटर की। मगर इसका एक दूसरा पहलू भी है और वह हमें सामाजिकता से जोड़ता है। इंटरनेट पर बहुत कुछ ऐसा है जो हमें सकारात्मकता की ओर ले जाता है। जैसे – फेसबुक, ट्विटर, ब्लॉग आदि। इनके माध्यम से आज सम्पूर्ण विश्व एक हो गया है। ये मंच विचारों के आदान-प्रदान के बेहतरीन माध्यम हैं। जिनके बारे में आगे की इकाइयों में विस्तार से जानेंगे।

2.2.3. लेखन का सामाजिक सरोकार और लेखक के सामाजिक सरोकार में फर्क

लेखक के सामाजिक सरोकार और लेखन के सामाजिक सरोकार में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इसे आप इस तरह भी समझ सकते हैं कि लेखक न केवल एक रचनाकार होता है बल्कि एक नागरिक भी होता है। वह चुनाव लड़ सकता है, चुनाव में किसी का विरोध या समर्थन कर सकता है, भाषण दे सकता है, जुलूस निकाल सकता है, नारा लगा सकता है, धरना दे सकता है और गोली भी चला सकता है। लेखक यदि आवश्यकता पड़ने पर राजनीति या जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी सक्रिय होता है तो उसके लिए उसकी प्रशंसा की जानी चाहिए। दुनिया में ऐसे लेखकों के उदाहरण कम नहीं है जिन्होंने साहित्य के बाहर सीधा कर्म का रास्ता भी चुना है। मगर उनका वह कर्म भाषा और साहित्य के बाहर का कर्म है। इससे उसके नागरिक धर्म का पता चलता है, लेखकीय धर्म का नहीं। लेखन-धर्म का प्रमाण तो लेखक की रचना ही देगी। इस बात को स्वीकार करते हुए सार्त्र लिखता है – "हम एक कवि की इस कारण भर्त्सना नहीं कर सकते कि उसने कवि रूप में उन दायित्वों को अस्वीकार कर दिया है

जिनको मनुष्य के रूप में स्वीकार करना उसके लिए आवश्यक था। हम चाहें इसलिए उसकी भर्त्सना करें कि वह कवि के अतिरिक्त और कुछ नहीं है – मनुष्य के रूप में उसे अपने दायित्वों का बोध नहीं है, लेकिन सामाजिक संघर्ष या रचनात्मक आन्दोलन में कवि के रूप में सम्मिलित न होने के लिए हम उसकी निन्दा नहीं कर सकते।" इसी बात को रघुवीर सहाय इस प्रकार कहते हैं – "सबसे मुश्किल और एक ही सही रास्ता है कि मैं सब सेनाओं से लड़ूँ – किसी में ढाल सहित, किसी में निष्कवच होकर – मगर अपने को अन्त में मरने सिर्फ अपने मोर्चे पर दूँ – अपने, भाषा के, शिल्प के, और उस दो तरफा जिम्मेदारी के मोर्चे पर – जिसे साहित्य कहते हैं।" मतलब लेखन कर्म भी सामाजिक जिम्मेदारी है। क्योंकि वह अन्ततः जीवन को पहचानने और उसे बदलने के लिए ही है – एक बेहतर ज़िंदगी और एक बेहतर दुनिया के निर्माण के लिए एक सचेत रचनात्मक कर्म। इस अर्थ में लेखन कर्म और नागरिक कर्म में कोई फर्क नहीं। लेखन जीने के कर्म की परिभाषा है और यह वह कर्म है जिसमें कोई दूसरा साझा नहीं कर सकता। विज्ञान की खोज कई लोग मिलकर कर सकते हैं। एक अधूरी खोज को दूसरा पूरा भी कर सकता है लेकिन साहित्य में ऐसा सम्भव नहीं है। यह एक निहायत निजी कर्म है। निजी और अर्थवान्। लेकिन लेखन कर्म और नागरिक कर्म को बहुत मिलाकर देखने का आग्रह कहीं लेखक को कर्म से या लेखन के प्रयोजन से काटने का आग्रह तो नहीं है ? आदमी का भीतरी संसार एक बाहरी संसार से प्रतिक्षण प्रभावित होता रहता है। इन दोनों संसारों को साथ रखकर ही सच्चाई को स्वीकार किया जा सकता है। लेखन में आन्तरिक संसार पर या लेखन दायित्व पर ही बहुत अधिक जोर देना एक प्रकार के कलावाद को जन्म देना है जो एक प्रकार की आग्रहपूर्ण संकीर्ण दृष्टि है। "लेखन एक सक्रिय कर्म है" – यह मान लेने के बाद भी तो यह जानना शेष रह जाता है कि वह किस प्रकार का कर्म है ? हत्या करना भी एक कर्म है और हत्यारे से जूझना भी। लेकिन दोनों में फर्क है। इसी तरह लेखन और लेखन में फर्क होता है। तभी तो रचनाकार के सामाजिक सरोकार या जनसंघर्ष में उसकी सक्रिय भूमिका के बारे में चर्चाएँ की जाती हैं ! आप पूछ सकते हैं कि यह सवाल लेखक के साथ ही क्यों उठाया जाता है ? वैसे तो कर्म करने वाले बहुत हैं – किसान हैं, मज़दूर हैं। उनके सामाजिक सरोकार की बात क्यों नहीं की जाती है ? क्यों बड़े-बड़े राजनेता अपने भाषणों में दोषारोपण करते हैं कि बुद्धिजीवी आपने दायित्व का निर्वाह नहीं करते ? शायद इसलिए कि साहित्यकार एक ऐसी स्थिति में होता है जिसमें आम आदमी या कहें कि शारीरिक श्रम करने वाला आदमी नहीं होता। साहित्यकार क्योंकि लिखता है अतः उसका एक सामाजिक दर्ज़ा होता है। वह चाहे तो अपने लेखन का दुरुपयोग भी कर सकता है और इस प्रकार एक बड़े या छोटे पाठक वर्ग को उससे प्रभावित कर सकता है। शायद इसीलिए उसके सामाजिक सरोकार का सवाल बार-बार उठाया जाता है। यह मानना कि लेखक का कोई दायित्व नहीं होता है, यह तर्कसंगत नहीं है। क्या कोई व्यक्ति कह सकता है कि वह दायित्वमुक्त है ? आदमी होने के लिए और समाज में रहने के लिए दायित्व को स्वीकार करना ज़रूरी है। यदि कोई कहता है कि वह दूसरे के प्रति दायित्व से मुक्त है तो वह इस दुनिया के बाहर होकर ही ऐसा कह सकता है और उसके लिए ऐसा संयोग मरने के बाद ही घटित हो सकता है। वह किसी के द्वारा पैदा किया हुआ अन्न खाता है, किसी का तैयार किया हुआ कपड़ा पहनता है, बीमार होने पर किसी से दवा कराता है और मरने के बाद भी आशा करता है कि कोई उसका अन्तिम संस्कार करेगा। यदि उसका किसी के प्रति दायित्व ही नहीं तो खुद किसी से कोई आशा क्यों करता है ? दरअसल दायित्वहीन आदमी की कल्पना ही असम्भव है – फिर लेखक तो एक विवेकसम्पन्न जागरूक प्राणी है।

तो फिर लेखक का सामाजिक सरोकार क्या है ? या यों कहें कि उसके लेखन का प्रयोजन क्या है ? यह एक पुराना सवाल है पर हर युग में बार-बार उठाया जाता है। इस प्रश्न के उत्तर में लेखकों के दो विरोधी विचार रहे हैं और आज भी हैं। एक वर्ग के लेखकों के अनुसार लेखन एक प्रकार की कलाकृति है जिसका कोई पृथक् प्रयोजन नहीं होता। उसका अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व होता है और उसका उपयोग चाहे जिस रूप में कर लिया जा सकता है। दूसरे वर्ग के लेखकों का कहना है कि लेखन एक कलात्मक सृजन तो है पर वह दुनिया को एक बेहतरीन ज़िंदगी के लिए बदलने के संकल्प से उत्पन्न है। अतः उसका एक मानवीय अर्थ है और स्पष्ट प्रयोजन भी।

लेखक के लेखन का सामाजिक सरोकार और लेखक का सामाजिक सरोकार दोनों एक दूसरे में घुले-मिले होते हैं। वह अपनी रचना के प्रति जितना प्रतिबद्ध होता है उतना ही अपने चारों ओर की ज़िंदगी के प्रति भी। अंदर और बाहर के दोनों ही संसार उसके भीतर एक हो जाते हैं। अंदर की उपेक्षा उसे एक प्रकार के सस्ते प्रचार की ओर ले जाती है तो बाहर की उपेक्षा उसे एक प्रकार के कलावाद की ओर। ये दोनों ही साहित्यिक छद्म हैं। लेखन छद्म नहीं होता। वह एक विवेक का नाम है। विवेक जन्म से प्राप्त नहीं होता। वह दृश्यजगत् के बीच चीजों को देखते हुए, उनके आपसी सम्बन्धों की छानबीन करते हुए, उनकी तुलनात्मक पहचान करते हुए विकसित हुआ करता है। यह निर्भ्रान्त विवेक ही लेखक की ईमानदारी है। समकालीन वास्तविकताओं के प्रति जागरूक ईमानदारी ही लेखक का दायित्व है और यही जनसंघर्ष में उसकी सक्रिय भूमिका भी। अब आप समझ चुके होंगे कि लेखक के सामाजिक सरोकार के आशय में लेखन के अतिरिक्त भी उसके सरोकार निहित हैं। जैसे – गोष्ठियों आदि में भागीदारी, जन सरोकारों से जुड़े आन्दोलनों में उसका भाग लेना, व्याख्यान या भाषण देना इत्यादि।

2.2.4. लेखक के सामाजिक सरोकार

साहित्यकार समाज का सबसे अधिक सम्वेदनशील प्राणी है। समय बदलने के साथ लेखक के सरोकार बदलते गए हैं। इसे आप अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास पर नज़र डालेंगे तो समझने में आसानी होगी कि कैसे बदलते समय के साथ लेखकों के सामाजिक सरोकार बदलते गए हैं। आदिकालीन साहित्य में कवि स्वयं अपने राजा के साथ मिलकर दुश्मनों से युद्ध करते हैं और लौटकर कविता की रचना भी करते हैं। मध्यकालीन सन्त-भक्त कवि ईश्वर की आराधना के बहाने सामाजिक सरोकारों से पूरी तरह से जुड़े हुए थे। वहीं रीतिकालीन साहित्यकार अपने परिवेश से जुदा होते दिखाई पड़ते हैं, इसलिए उनकी रचनाओं में सामाजिक सरोकार बहुत ही कम ही दिखाई देता है। आधुनिक काल में फिर से एक नये तरह का सामाजिक सरोकार से लेखकों का सामना होता है। भारतेन्दु युग से लेकर अब तक का लेखक अपने सामाजिक सरोकारों से जुड़ा रहा है। आज का तमाम अस्मितावादी लेखन इसका साफ़ उदाहरण है।

आप जानते हैं कि रचना जीवन मूल्यों से जुड़कर अभिव्यक्ति पाती है। लेखक का हदय बड़ा होना चाहिए, अन्यथा उसका लेखन बनावटी-सा लगता है। लेखक अपने दौर के लेखकों की रचनाओं में और उनके व्यक्तित्व में सामाजिक सरोकार और जीवन-दृष्टि को भी देखता है। वह लिखते समय उन लेखकों को याद करता

है । जिस लेखक की रचना और व्यक्तित्व में तारतम्यता होती है, उसी का सामाजिक सरोकार वाला लेखन प्रभावित करता है। वह अपने पूर्ववर्ती पीढ़ी से लेकर अपनी नई पीढ़ी के लेखकों की भाषा, उनके साहित्य और उनकी जीवन दृष्टि से प्रेरणा लेता है। दरअसल सच्चे लेखक और कलाकार में खुद को अभिव्यक्त करने की बेचैनी होती है। एक बड़े लेखक में इस तरह का सामाजिक सरोकार होता है। निराला और उनके समकालीन कई बड़े कवियों पर यह बात लागू होती है । आप आज भी ऐसे बहुत से लेखकों को देख सकते हैं, जिनके लेखन में सामाजिक सरोकार स्पष्ट तौर पर दिखाई देता है। लेकिन यह भी सच है कि कुछ ऐसे भी लेखक हैं जिनके लेखन में सामाजिक सरोकार बनावटी-सा लगता है।

आप यह भी जानते हैं कि आज हमारी ज़िंदगी काफी जटिल हो गई है। कई तरह की समस्याएँ हमारे सामने हैं। लेकिन आपको यह समझना होगा कि यदि समस्याएँ और चुनौतियाँ बढ़ी हैं तो उनका सामना करने का हमारा सामर्थ्य भी बढ़ा है । हर जमाने में समस्याएँ रहती हैं और हर पीढ़ी को उनका सामना करना पड़ता है । लेकिन आज हम एक ऐसे कठिन समय में जी रहे हैं जिसमें मुश्किलें काफी बढ़ गई हैं। वे कौन-कौन सी मुश्किलें हैं ? उन मुश्किलों से कैसे निपटा जाए, हमारे समय का लेखक इसका समाधान खोजता है। चूँकि साहित्य के साथ लेखक का सम्बन्ध जटिल रहा है। इतिहास में ऐसे तमाम उदाहरण हैं कि सत्ता के साथ रहते हुए भी लेखकों ने अच्छे साहित्य की रचना की है। लेकिन ज्यादातर लेखकों ने सत्ता से बाहर रहकर अच्छा लिखा है और खतरे भी उठाए हैं । फिरदौसी ने महमूद के वक्त महमूद को खुश करने के लिए 'शाहनामा' लिखा । महमूद गजनवी ने फिरदौसी को यह वचन दिया था कि वह हर शब्द के लिए एक दीनार देगा। वर्षों की मेहनत के बाद जब फिरदौसी 'शाहनामा' लेकर महमूद गजनवी के पास गया तो महमूद को वह किताब पसंद नहीं आई। उसने उसे प्रत्येक शब्द के लिए एक दीनार नहीं बल्कि एक दिरहम का भुगतान करने का आदेश दिया। फिरदौसी खाली हाथ अपने घर लौट गया। यह वादाखिलाफी थी जैसे किसी कवि के प्रति शब्द एक रुपये देने का वचन देकर प्रति शब्द एक पैसा दिया जाए। उसके बाद से फिरदौसी महमूद के खिलाफ लिखने लगा। उसके लिखने में ख़ास किस्म का असर था। उसके प्रभावी लेखन से भयभीत हो महमूद के मंत्रियों ने महमूद को सलाह दी कि फिरदौसी को उसी दर पर भुगतान किया जाए जो तय की गयी थी। महमूद ने आदेश दे दिया। दीनारों से भरी गाड़ी जब फिरदौसी के घर पहुँची तो फिरदौसी का जनाजा निकाल रहा था। पूरी उम्र गरीबी, बेबसी, तंगी और फटेहाली में काटते-काटते फिरदौसी मर चुका था।

जो लेखक सत्ता के साथ रहे हैं, उन्होंने देखा कि सत्ता जनता के प्रति प्रतिबद्ध थी या नहीं, क्योंकि एक लेखक के लिए आम जनता का हित सर्वोपरि है। लेखक जनता का प्रतिनिधि होता है। राज्यसत्ता की वह तभी तक तरफदारी करता है, जब तक सत्ता जनता के पक्ष में है। अगर राजसत्ता जनता से जुड़े अपने सरोकारों से पीछे हट जाती है तो लेखक को भी सत्ता से नाता तोड़ लेना चाहिए और साहित्य के इतिहास में लेखकों ने यह काम किया भी है। आप जानते हैं कि एक सच्चे लेखक के लिए सबसे पहली और ज़रूरी चीज है, 'आजादी'। वह अपने पक्ष बदल सकता है क्योंकि वह समाज और जनता का चौकीदार है।

यह बात कुछ हद तक सच है कि आज कुछ लेखक सत्ता और बाजार का समर्थन कर रहे हैं। लेखक को साहित्य और कला के उत्सवों के आयोजन के खिलाफ नहीं होना चाहिए लेकिन ऐसे मौकों पर भी लेखक का ध्यान साहित्य और कला से जुड़े विषयों और मुद्दों पर केन्द्रित रहता है। ऐसे उत्सव यदि लेखकों और पाठकों का ध्यान खींचते हैं और उन्हें एक दूसरे के साथ संवाद करने के मौके देते हैं तो ऐसे साहित्यिक उत्सव ज़रूर आयोजित होने चाहिए। लेखक साहित्य उत्सवों को एक अवसर के रूप में देखता है।

आज लेखकों पर गाहे-बगाहे सुविधाभोगी होकर अपने ही खोल में सिमटे रहने के आारोप लगते रहते हैं, जो कुछ सज्जनों के बारे में सही भी हो सकते हैं। लेकिन सामाजिक सरोकार रखने वाले अनेक लेखक सजगता के साथ समाज में घटने वाली घटनाओं पर लिखते रहे हैं, अपनी चिन्ता जताते रहे हैं, समाज को हकीकत से अवगत कराते रहे हैं, सचेत करते रहे हैं, मार्गदर्शन करते रहे हैं। इस योगदान के लिए इनका ऋणी महसूस होना लाजिमी है। ये लेखक ही हैं जिन्होंने हमें दुनियादारी को समझने की तहजीब दी है। समाज के हालात जब बद से बदतर होते गए, अभिव्यक्ति पर हमले तीखे होने लगे, विचार, तर्क और शब्दों का उत्तर गोली मार कर दिया जाने लगा तो समाज का विचलित होना स्वाभाविक है, जिसमें लेखक, साहित्यकार और कलाकार भी शामिल हैं। इसीलिए उन्होंने सम्मान वापस करके भी समाज के घुटन भरे माहौल को आवाज दी है, झकझोरने की कोशिश की है। यह भी लेखकों का सामाजिक सरोकार है। आप जानते हैं कि आपातकाल के दौरान बाबा नागार्जुन ने भोपाल में एक सरकारी आयोजन में ही सरकार विरोधी कविताएँ सुनायीं। लेखकों द्वारा सरकार के प्रतिरोध के अनेक उदाहरण साहित्य में दर्ज हैं और जगजाहिर हैं। वैसे भी यह तो कोई बात नहीं हुई कि पहले किसी गलती का विरोध नहीं हुआ इसलिए अब जो हो रहा है उसे अप्रासंगिक करार दिया जाए।

लेखक को अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों से मुँह फेरना नहीं चाहिए और न ही उससे उपजी राजनैतिक चेतना का गला घोंटना चाहिए। उसे सामाजिक प्राणी की तरह राजनैतिक ढंग से सोचना चाहिए क्योंकि ऐसा न करने से अज्ञान के कारण राजनीति करने वाले केवल अपराधियों, अवसरवादियों, झूठ-फरेब की तिजारत करने वाले कारोबारियों, तिकड़मबाजों, बाहुबलियों और धन पशुओं का ही एकाधिकार मान लिया जाएगा।

किसी भी देश या काल के साहित्य के उद्देश्यों में पीड़ित जनता की पक्षधरता इस बात में निहित होती है कि यदि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में किसी भी प्रकार की विसंगतियाँ, कुरीतियाँ पनप गई हैं, तो उनके निर्मूलन हेतु साहित्य का प्रयोग एक गाल पर तमाचा खाने के बाद दूसरा गाल करने या प्रेयसी की जाँघें सहलाने, प्रकृति-चित्रण करने के बजाय संस्कृति और सभ्यता के तस्करों की मानसिकता पर चाबुक बरसाने में ही सार्थक होगा। प्रेयसी के घुटनों पर लेटकर उसकी धड़कनों के ज्वार-भाटों और चेहरे पर प्रेम-प्रसंगों से चढ़ती-उतरती लालामी को ही यदि सूक्ष्म दृष्टि रेखांकित कर सकती है और उसकी अभिव्यक्ति समाज को विकृतियों से दोषमुक्त कर सकती है, तो अफसोस के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता है। साथ ही सामाजिक यथार्थ का तल्ख एहसास कोई बे-बुनियाद, वाहियात और स्थूल वस्तु है, जिसका अनुभव सिर्फ अपने अन्दर के मैले को बाहर फेंकने और अपने दोष दूर करने तक ही होना चाहिए। यानी 'आप भला तो जग भला' को चरितार्थ करना है तो यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि जब हम शोषण-व्यभिचार या चरित्रहीनता पर व्यक्तिगत दृष्टि के बजाय

सामाजिक दृष्टि रखते हैं, तब भी अपने ही दोषों को सर्वप्रथम टटोलते हैं, क्योंकि हम भी उसी समाज के अंग हैं जिस पर हम प्रहार कर रहे होते हैं। इस स्थिति में यह प्रहार क्या हमारे अपने ऊपर भी नहीं होता ?

यदि दृष्टि की व्यापकता या सामाजिकता काजीपन या स्वयंभू होने की स्थिति है तो लेखक को इस समाज में न रहकर गुफाओं-कन्दराओं में धूनी रमाकर अपनी सूक्ष्म दृष्टि के परीक्षण के लिए चले जाना चाहिए और अपनी आध्यात्मिकता का दम्भ भरते रहना चाहिए। हमारे देश में भी विडम्बना रही है कि जन-चेतना के लिये जिसने भी पहल की, उसे स्वयंभू काजी और न जाने किन-किन उपाधियों से विभूषित किया गया। 'स्वान्तःहिताय' की तथाकथित वांछित साधना, योग और आत्म-नियन्त्रण की साधना बनकर जब-जब साहित्य में उतरी, तब-तब उस साहित्य ने समाज को ऐसे 'सोच' के गर्त में डाल दिया, जिसमें मलवा तो हर जगह दिखाई दिया लेकिन उसे बाहर फेंकने की हिम्मत कोई नहीं रख सका। लोगों ने नाक पर या तो अकर्म और भाग्य का रूमाल रख लिया या फिर 'परमानन्द' की उस स्थिति में पहुँच गये, जिसमें सड़ाँध से उठता भभका भी गुलाबों की महक महसूस हुआ।

मनुष्य के आचरण की एक-एक इकाई में आमूल-चूल परिवर्तन करने या समाज में क्रान्तिकारी सम्भावनाएँ तलाशने के लिये आवश्यक है कि यातनामय, कारुणिक दृश्यों से भयाक्रान्त होकर आँखें मूँदने या फोड़ने, चीत्कार के बीच कानों में रुई ठूँसने के बजाय लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आँखें और कान खोले इसी संसार में रहकर करें। साथ ही साहित्य की प्रासंगिकता उसके यथार्थवादी दृष्टिकोणों से जोड़ें, नहीं तो लेखक साहित्य की उन्हीं कलात्मक या सौन्दर्यवादी रूढ़ियों से बँधे रह जाएँगे, जिसमें कबीर की प्रहार क्षमता, आडम्बरों को चुनौती देने की व्यग्रता या 'पुत्री बेच पिता धन खायो, दिन-दिन मोल सवायो', 'मोहि कहा तेरी सीकरी सों काम', 'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि ... कहे एक-एकन सों कहाँ जाई कहा करी', 'एकन को मेवा मिलै एकन को चने भी नाहिं', 'सब जादे मिटि के हरामजादे हो रहे' तथा 'अली-कली ही सों बंध्यौ आगे कौन हवाल' में कोई तिरोभाव दिखाई नहीं देगा। बिस्मिल, अशफाक, भगतसिंह को साहित्यकार मानना तो दूर, उनका जिक्र करना भी पसन्द नहीं करेंगे और रहीम को गैर साम्प्रदायिक होने के नाते ही काव्य का दूसरा 'कबीर' स्वीकार ही नहीं पाएँगे। धूमिल की कविताओं को हमें मात्र गाली-गलौज नहीं मानना होगा क्योंकि हमें सौन्दर्यानुभूति उसी साहित्याभिव्यक्ति में होती है जो कोमल, कर्णप्रिय और तिरोभाव से मुक्त होती है। ऐसे तथाकथित साहित्यकार होते हैं कि दहेज लालचियों द्वारा मिट्टी का तेल छिड़ककर जलाए जाने वाली बहू या बलात्कारियों के बीच छटपटाती नारी की चीत्कार या डकैतों द्वारा एक परिवार पर किये गये लाठी-चाकू और कट्टे से प्रहार की करुण-गाथा का वे कौन-से लालित्यपूर्ण, कोमल और सुन्दरतम शब्दों में व्यक्त कर देते हैं तथा ऐसी यातनामय स्थितियों के बीच वे साहित्य का कलापक्ष टटोलने लगते हैं। यदि कोई साहित्यकार ऐसी स्थितियों में कुव्यवस्था के प्रति सब कुछ कहने का अधिकारी होता है, कलुषता को ललकारता है तो वह वाद, खेमे, विधा का झंडा उठाए, बाल बिखेरे, कफन का उत्तरीय कन्धे पर डाले, कविता और साहित्य को कितना और कैसे नष्ट कर देगा ? यह सोचने का विषय है ?

समय के साथ लेखकों के सामाजिक सरोकार बदलते गए हैं। अब वह उन रूढ़िवादी मान्यताओं को नहीं मानता है जिसे मीरा ने प्रेम दीवानी की तरह जहर पीया था, तुलसी ने 'कोऊ नृप होई हमें का हानि' की रट लगायी

थी, लेकिन कबीर की तरह सामाजिक बदलाव लाने की चेतना अवश्य होनी चाहिए। साहित्य का बुनियादी सरोकार सामाजिक चरित्र की सार्थक अभिव्यक्ति के साथ-साथ उसे परिमार्जित करने में भी होना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि साहित्य समाज के उस हर चरित्र को जिये जो कहीं न कहीं समाज की सम्वेदना को छूता है। इस सन्दर्भ में स्त्री, दलित और आदिवासी साहित्यकारों ने समाज के उस दलित, शोषित, पीड़ित जन के चरित्र को जिया है जो भीतर ही भीतर सभ्यता को सौदागरों, राजनीति के ठगों, धर्म और समाज के ठेकेदारों के हत्यारे षड्यन्त्रों के बीच मुक्त होने के लिए छटपटा रहा है।

2.2.5. पाठ सार

सामाजिक सरोकार का अभिप्राय होता है – व्यक्ति का अपने दायित्वों का बोध होना अर्थात् समाज के स्वरूप और उसके महत्त्व को समझकर उसके प्रति जिम्मेदारी की भावना। सामाजिक सरोकार सामाजिक वातावरण में विकसित होते हैं। दूसरे शब्दों में, जब हम जन-साधारण के पास आते हैं, उनसे उनकी समस्याओं के बारे में बात करते हैं और उन समस्याओं के निराकरण के लिए अपनी भूमिका तय करते हैं। यह भूमिका ही हमारी सामाजिक सरोकार कहलाती है।

चूँकि लेखक के लेखन का सामाजिक सरोकार और लेखक का सामाजिक सरोकार दोनों एक दूसरे में घुले-मिले होते हैं। इसलिए वह अपनी रचना के प्रति जितना प्रतिबद्ध होता है उतना ही अपने चारों की ज़िंदगी के प्रति भी। अंदर और बाहर के दोनों ही संसार उसके भीतर एक हो जाते हैं। अंदर की उपेक्षा उसे एक प्रकार के सस्ते प्रचार की ओर ले जाती है तो बाहर की उपेक्षा उसे एक प्रकार के कलावाद की ओर। ये दोनों ही साहित्यिक छद्म हैं। लेखन छद्म नहीं होता। वह एक विवेक का नाम है। विवेक जन्म से प्राप्त नहीं होता। वह दृश्यजगत् के बीच चीजों को देखते हुए, उनके आपसी सम्बन्धों की छानबीन करते हुए, उनकी तुलनात्मक पहचान करते हुए विकसित हुआ करता है। यह निर्भ्रान्त विवेक ही लेखक की ईमानदारी है। समकालीन वास्तविकताओं के प्रति जागरूक ईमानदारी ही लेखक का दायित्व है और यही जनसंघर्ष में उसकी सक्रिय भूमिका भी।

इस तरह समय के साथ लेखकों के सामाजिक सरोकार बदलते गए हैं। अब वह उन रूढ़िवादी मान्यताओं को नहीं मानता है जिसे मीरा ने प्रेम दीवानी की तरह जहर पीया था, तुलसी ने 'कोउ नृप होउ हमहि का हानि' की रट लगाई थी, लेकिन कबीर की तरह सामाजिक बदलाव लाने की चेतना अवश्य होनी चाहिए। साहित्य का बुनियादी सरोकार सामाजिक चरित्र की सार्थक अभिव्यक्ति के साथ-साथ उसे परमार्जित करने में भी होना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि साहित्य समाज के उस हर चरित्र को जिये जो कहीं न कहीं समाज की सम्वेदना को छूता है। इस सन्दर्भ में स्त्री, दलित और आदिवासी साहित्यकारों ने समाज के उस दलित, शोषित, पीड़ित जन के चरित्र को जिया है जो भीतर ही भीतर सभ्यता को सौदागरों, राजनीति के ठगों, धर्म और समाज के ठेकेदारों के हत्यारे षड्यन्त्रों के बीच मुक्त होने के लिए छटपटा रहा है।

2.2.6. बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. लेखक अपनी रचना में अनुभवों को ज्यों का त्यों प्रकट नहीं करता है क्योंकि –
   (क) वह नहीं चाहता है कि सिर्फ उसकी विचारधारा को पढ़ा या समझा जाय।
   (ख) रचनात्मक लेखक का उद्देश्य अपनी दार्शनिकता का प्रचार करना नहीं है।
   (ग) रचनात्मक लेखक अपनी कृति के माध्यम से अपने दार्शनिक विचारों से भी रू-ब-रू कराना चाहता है।
   (घ) दार्शनिक विचार लेखक की लेखकीय राजनीति होती है।

2. निम्नलिखित में से कौनसा दायित्व लेखक के सामाजिक सरोकार में परिगणित नहीं किया जा सकता है –
   (क) गाँव-घर के लोगों की मदद करना
   (ख) स्कूल या कॉलेज में अध्यापन करना
   (ग) लेखक संघ का निर्माण करना
   (घ) जनान्दोलन में भागीदारी
   (ङ) केवल अपने लेखन कर्म में लीन रहना

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. क्या लेखक का केवल अपनी रचना में लीन रहना उसके सामाजिक सरोकार के दायरे में नहीं आता है ?
2. सामाजिक सरोकार से क्या आशय है ?
3. लेखक के सामाजिक सरोकार का क्या मतलब है ?
4. हिन्दी साहित्य के किसी लेखक की किसी एक कृति के सामाजिक सरोकारों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
5. लेखन के सामाजिक सरोकार और लेखक के सामाजिक सरोकार में क्या अन्तर है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. क्या आप मानते हैं कि कोई लेखक जितना अपने सामाजिक परिवेश के प्रति जागरूक होगा, उसकी रचना में सामाजिक सरोकार के मूल्य भी उतनी ही अभिव्यक्ति पाएँगे। युक्तियुक्त चर्चा कीजिए।
2. हिन्दी साहित्य के विभिन्न लेखकों के सामाजिक सरोकारों का विश्लेषण करते हुए एक सारगर्भित निबन्ध लिखिए।
3. लेखक अगर अपने समाज में कोई भूमिका नहीं निभाता है तो उसका लेखन सामाजिक सरोकार विहीन होगा। क्या आप इस तर्क से सहमत हैं ? यदि हाँ ! तो क्यों ! और यदि असहमत हैं तो क्यों ! तर्कसहित एवं सोदाहरण अपना मत प्रकट कीजिए।

4. "लेखक के लेखन का सामाजिक सरोकार और लेखक का सामाजिक सरोकार दोनों एक दूसरे में घुले-मिले होते हैं।" उक्त मंतव्य की विवेचना कीजिए।

2.2.7. व्यवहार

1. आप ऐसे कितने लेखकों को जानते हैं जिनका जीवन और लेखन सामाजिक सरोकारों के सन्दर्भ में एकमेक लगता है ? उनकी सूची बनाइए और एक सारगर्भित आलेख तैयार कीजिए।

2.2.8. कठिन शब्दावली

निर्भान्त	:	जिसमें कोई सन्देह या भ्रम न हो; भ्रमरहित, जो सन्देह उत्पन्न न करे; सुनिश्चित; स्पष्ट
दायित्व	:	कर्तव्य
निर्मूलन	:	समाप्ति, विनाश

2.2.9. उपयोगी / सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद (1987), रचना के सरोकार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, ISBN: 978-81705-51-05-8
2. मिश्र, विद्यानिवास (2007), साहित्य के सरोकार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, ISBN: 81-8143-639-3
3. मुक्तिबोध (2008), नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, ISBN: 978-81-71190-91-7

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://www.virarjun.com/news-376786
2. http://parikalpnaa.blogspot.in/2015/03/blog-post_24.html?m=1
3. https://www.jansatta.com/chopal/interest-of-writers/49027/
4. https://hindi.sahityapedia.com/साहित्य-का-बुनियादी-सरोकार-76721
5. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
6. http://www.hindisamay.com/
7. http://hindinest.com/
8. http://www.dli.ernet.in/
9. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 2 : सृजनात्मकता के सामाजिक-दार्शनिक आधार

इकाई – 3 : सृजनात्मकता में राजनैतिक विचारों का महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

2.3.00. उद्देश्य कथन
2.3.01. प्रस्तावना
2.3.02. सृजनात्मकता : एक विवेचन
2.3.03. राजनीति विज्ञान : एक विवेचन
2.3.04. राजनैतिक चिन्तन की भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणा
2.3.05. सृजनात्मक लेखन और राजनीति : पाश्चात्य अवधारणा
2.3.06. भारतीय साहित्य में राजनैतिक विचारों का महत्त्व
2.3.07. हिन्दी कविताओं में राजनैतिक विचारों का महत्त्व
2.3.08. हिन्दी कहानियों में राजनैतिक विचार
2.3.09. हिन्दी उपन्यासों के कैनवस पर उभरता राजनैतिक बिम्ब
2.3.10. पाठ सार
2.3.11. बोध प्रश्न

2.3.00. उद्देश्य कथन

सृजनात्मक लेखन पाठ्यचर्या के दूसरे खण्ड 'सृजनात्मकता के सामाजिक-दार्शनिक आधार' की यह तीसरी इकाई 'सृजनात्मकता में राजनैतिक विचारों का महत्त्व' विषय पर आधारित है। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. सृजनात्मकता क्या है, मौलिक लेखन कैसे किया जाता है, इस विषय में विस्तृत जानकारी हासिल कर सकेंगे।
ii. राजनीति क्या है, राजनीति की भारतीय तथा पाश्चात्य अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
iii. पाश्चात्य साहित्य में राजनैतिक विचारों का क्या महत्त्व है, इसका अवलोकन कर सकेंगे।
iv. हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं एवं राजनैतिक विचारों का विस्तृत विश्लेषण कर सकेंगे।

2.3.01. प्रस्तावना

एक कलाकार या सृजनकार जब समाज के विराट् फलक को अपनी रचना का केन्द्र बनाता है। उस स्थिति में वह पाठकों को अन्य अनेक सामाजिक गतिविधियों से परिचित कराने के साथ-साथ राजनैतिक अवधारणा एवं राजनीतिज्ञों के सकारात्मक व नकारात्मक गतिविधियों पर प्रकाश डालता है। इसके लिए कभी तो

वह सीधी-सादी भाषा का प्रयोग करता है और कभी राजनीतिज्ञों की समग्र सच्चाई व्यंग्यात्मक शैली के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।

साहित्य में राजनीति ने आधुनिक काल में लोकतान्त्रिक अवधारणा के साथ प्रवेश किया, जब साहित्यकारों को साहित्य में अपने सृजन के लिए स्वतन्त्र विचारों को स्थान मिलने लगा।

पाश्चात्य साहित्य में भी 19वीं शताब्दी जहाँ स्वच्छन्दतावादी काव्य चिन्तन के उद्‌भव और विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, वहाँ यथार्थवादी साहित्य चिन्तन को जन्म देने और विकसित करने का श्रेय भी उसी समय को दिया जा सकता है। वस्तुतः 19वीं शताब्दी में जिस समय काव्य रचना के क्षेत्र में स्वच्छन्दता का बोलबाला था, उस समय भी, बल्कि उसके पूर्व से भी उपन्यास तथा नाटक जैसी गद्य विधाओं के क्षेत्र में यथार्थवादी मान्यताएँ प्रश्रय पा रही थीं। इन यथार्थवादी मान्यताओं को सामने लाने में उन वैज्ञानिकों और आविष्कारों का बड़ा योगदान है, जो 19वीं शताब्दी में एक के बाद एक जीवन और जगत् के रहस्यों को हमारे समक्ष खोलते गये और जिनके कारण पश्चिम में न केवल औद्योगीकरण की एक अन्तहीन प्रक्रिया का जन्म हुआ, बल्कि लोगों की चिन्तन प्रणाली तथा जीवन और जगत् को देखने तथा समझने के दृष्टिकोण में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए।

कवि की सम्पूर्ण कला इस बात में निहित है कि वह पाठकों को एक ऐसी दृष्टि प्रदान करे जिसमें वह समूची प्रकृति को नक्शे पर बने विश्व की भाँति, लघु आकार में, छोटी अनुकृति के रूप में देख सकें, ऐसी सम्वेदनशीलता प्रदान करें जिससे वह उस श्वास का अनुभव कर सकें जो विश्व में व्याप्त है और वह ज्योति जगाये जो आत्मा की पोषक हो। सौन्दर्य का आनन्द है, क्षण भर के लिए अपने अहं को भूल जाना, प्रकृति के सार्वभौम जीवन के साथ सजीव सम्वेदन का अनुभव करना। पाश्चात्य साहित्यकार माओ टुन ने साहित्य और राजनीति का प्रश्न उठाते हुए चीनी लेखकों के प्रथम अधिवेशन में कुछ ऐसी बातें कहीं जो यूनानी सहित्य गोष्ठी में कही गयी माओत्से तुंग की बातों से पर्याप्त समानता सूचित करती है। प्रश्न है कि साहित्य में राजनीति का प्रवेश किस सीमा तक स्वीकार्य है, वह स्वीकार्य है भी या नहीं।

ऐसे लोगों के विचारों का विरोध करते हुए जो राजनीति के साहित्य की सीमा में प्रवेश को इस कारण वर्जित मानती हैं कि उससे साहित्य का अपना मूलभूत सौन्दर्य क्षत-विक्षत होता है, साहित्यकारों एवं कलाकारों से स्पष्ट माँग की कि वे अपने कृतित्व को राजनीति के तत्त्व से सम्पृक्त करें। राजनीति का यह तत्त्व उनके विचार से न केवल लेखकों तथा कलाकारों को अमूर्त मानववाद की कुहेलिका में जाने से रोकेगा, साहित्य तथा कला की राजनैतिक विशेषता को भी स्थिर रखेगा।

2.3.02. सृजनात्मकता : एक विवेचन

सृजनात्मकता सबसे पहले आत्माभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति के अनेक माध्यम हो सकते हैं। कोई शब्दों में, कोई रंगों और रेखाओं में, तो कोई शरीर की भाषा में अपनी बात अभिव्यक्त करने में सहजता और सुविधा अनुभव करता है। अनुकूल परिस्थितियाँ, उचित वातावरण, निरन्तर अभ्यास और लेखन की अनिवार्यता

की अनुभूति-सृजनात्मक लेखन के आधार हैं। जीवन अनुभवों का सबसे बड़ा भण्डार है और अनुभव सबसे बड़ा गुरु है। अपने किसी जीवनानुभव की छुवन हमारे भीतर सौन्दर्य की कौंध उत्पन्न करती है, जिससे प्रेरित होकर हम अभिव्यक्ति के लिए बेचैन हो उठते हैं और जब-जब विचारों की कौंध होती है – छोटा-बड़ा मानव उसे अभिव्यक्त करने के लिए व्याकुल हो उठता है। वह उस विचार और अनुभव को मौखिक या लिखित अभिव्यक्त रूप देता है तब शब्दों के मोती ढुलकने लगते हैं उनकी लड़ियाँ अपने आप बनने लगती हैं, जब उसे वह कागज पर लिख डालता है तो वह रचना दीर्घायु पाकर चिरंजीवी हो जाती है। कला और काव्य की रचना सुन्दर की सृष्टि के लिए होती है। क्रिस्टोफर कॉडवैल के अनुसार "जो असुन्दर है, उससे भिन्न जो कुछ है उसे सुन्दर कहा जा सकता है।" (Beauty Then is defined by all that is not beauty.)

वस्तुतः 'सुन्दर' अभावात्मक गुण नहीं है। सुन्दर-असुन्दर के निर्धारण में हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक संस्कार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं किन्तु कलाओं में इसी आधार पर श्लील-अश्लील का निर्धारण भी कई बार कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है। वास्तव में सौन्दर्य वह गुण तत्त्व है जिससे हम वस्तु के सच्चे स्वरूप को पहचान सकते हैं और जो हमारी चेतना को सत्, चित् और आनन्द से पूर्ण करता है। जो हमारी चेतना के अनुकूल और उपयोगी है, उसे सुन्दर माना जा सकता है। जो अनुपयोगी और कष्टदायी है वह असुन्दर है। कलाकार की सुन्दर की धारणा अपनी समझ और जगत् में आने वाले परिवर्तनों के साथ निरन्तर बदलती रहती है। सृजन (रचना) इसी सुन्दर की सृष्टि के लिए होती है। कलाकार स्थूल और भौतिक इच्छाओं से सूक्ष्म, मानसिक और आत्मिक आनन्द के लिए इस सौन्दर्यमयी सृष्टि की ओर आकर्षित होता है।

कला सौन्दर्यानुभूति है। किन्तु रचना का जन्म हमेशा सुन्दर की अनुभूति के क्षण विशेष में ही हो अथवा कौंध का क्षण प्रवाहित होकर रचना का रूप तत्काल ले अनिवार्य नहीं। अनुभूति के ये क्षण कभी-कभी इतने प्रबल भी हो सकते हैं – पर सदा ऐसा नहीं होता सभी रचनाएँ 'मानसिक श्रवण' के क्षण अथवा सौन्दर्य की कौंध के क्षण विशेष में नहीं लिखी जाती और न ही सौन्दर्य की यह अनुभूति निरन्तर अथवा दीर्घ समय तक सदा बनी रहती है। यह भी सम्भव नहीं कि जब तक 'रचना' न हो रचनाकार का मानस उस चौंध से कौंधियाता रहे और न ही कागज-कलम हाथ में लेते ही रचना बनने लगती है। कई बार ऐसा भी होता है कि कोई न कोई अतीत की स्मृतियाँ मानस पटल पर जाग्रत् हो उठती हैं और मानस उन विगत स्मृतियों के लिए व्याकुल हो उठता है, या मन की विकल रागिनी बजने लगती है, ऐसी स्थिति में अभिव्यक्ति ज़रूरी हो उठती है और इसी क्षण की अनुभूति सच्ची अनुभूति मानी जाती है और सच्ची अनुभूति की अभिव्यक्ति ही श्रेष्ठ रचना को जन्म दे सकती है। रचना के लिए अनुभव अनिवार्य है, अनुभव के अभाव में श्रेष्ठ रचना सम्भव नहीं है। रचनाकार यह अनुभव अपने जीवन से ही बटोरता है। दिन-प्रतिदिन के अनुभव अथवा जातीय या राष्ट्रीय अनुभव उसकी रचना को हृदयस्पर्शी बनाते हैं। लेखन के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण स्पृहणीय है। हमारे अपने अनुभव किसी के लिए बाधा न बने रचनाकार को इस बात का ध्यान रखना चाहिए। किसी भी रचना में आने वाली अर्थ-छवियाँ कल्पना से ही सम्भव होती हैं। लेखकीय कल्पना निराधार नहीं होती।

सृजनात्मक लेखन के लिए ज्ञानात्मक सम्वेदना और सम्वेदनात्मक ज्ञान अपेक्षित है। समस्त रचनात्मक कार्य अर्थ सूचना केन्द्रित भी होता है। तभी 'कल्पना' का पंछी अनुभवों के तालाब के इर्द-गिर्द मँडराता है। अनुभव से प्राप्त सम्वेदना, भावना, बुद्धि या विचार, कल्पना और उद्देश्य सर्जनात्मक लेखन के ये चार महत्त्वपूर्ण घटक हैं। फिर बारी आती है भाषा की। भाषा की रचनात्मकता सबसे पहले आत्माभिव्यक्ति है। प्रत्येक कलाकार की अभिव्यक्ति का माध्यम भिन्न होता है। कोई शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है, कोई रंगों या रेखाओं के माध्यम से या अभिव्यक्ति का माध्यम कुछ और ही हो सकता है। फिर बारी आती है भाषा की। भाषा की रचनात्मकता सबसे पहले आत्माभिव्यक्ति है। वह यहाँ अभिव्यक्ति का माध्यम भी है और भाव या अनुभूति तक पहुँचने का माध्यम भी। रचनात्मक लेखन में भाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अभिव्यक्ति का सम्बन्ध अनिर्वचनीयता से भी है। यदि रचयिता कुछ अभिव्यक्त नहीं कर पाता तो यह उसकी भाषा की सीमा हो सकती है।

अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए रचनाकार से लोक-व्यवहार की भाषा की अपेक्षा की जाती है। साहित्य में भाषा का रूप लोक-व्यवहार का भी हो और उससे अलग विलक्षण भी इसीलिए साहित्यिक अभिव्यक्ति में शब्द और अर्थ की कई गहरी छवियाँ होती हैं।

2.3.03. राजनीति विज्ञान : एक विवेचन

मनुष्य मूलतः अपने स्वभाव व आवश्यकता से सामाजिक प्राणी है। समाज से आशय लोगों के शान्तिपूर्ण, सुसंगठित व सामूहिक जीवन से है। समाज में सुरक्षा व अनुशासन बनाए रखने हेतु किसी न किसी रूप में शक्ति या सत्ता या प्राधिकार का होना ज़रूरी है। यही कारण है कि आदिकाल से मानव किसी न किसी रूप में सत्ता के अधीन रहा है। सत्ता के लिए संघर्ष होते हैं तथा सत्ता ही उन संघर्षों का समाधान भी करती है। इसी सत्ता ने राज्य व शासन का रूप धारण किया जिसके अध्ययन को राजनीति की संज्ञा दी गयी। शुरू में राज्य का अत्यन्त अपरिष्कृत रूप था जिसमें धीरे-धीरे सुधार हुआ। नगर राज्य व्यवस्था आई, फिर यूनानी व रोमन साम्राज्य बने, रोमन साम्राज्य के विखण्डन से सामन्ती राज्य बने। आधुनिक युग में राष्ट्रराज्य का उदय हुआ फिर साम्राज्यवाद आया। अब परा-राष्ट्र राज्य या विश्व राज्य की दिशा में प्रगति हो रही है। यही कारण है कि समय के साथ राजनीति या राजनीति विज्ञान का अर्थ बदलता व उसके अध्ययन का क्षेत्र बढ़ता रहा है।

यद्यपि इसे कई नामों जैसे पॉलिटिक्स (अरस्तु), राजनीति विज्ञान (विलियम गाडविन तथा मेरी बोलस्ट्रोनक्राफ्ट), राज्य का विज्ञान (आर.जी. गैटेल) तथा राजनीति का विज्ञान (सर फ्रैडरिक पोलक) के नामों से जाना जाता है। अत्यन्त सरल शब्दों में इस विषय को राज्य एवं शासन के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जाता है। राजनीति वहाँ है जहाँ समस्या है, राजनीति वहाँ नहीं है जहाँ समस्या नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि राजनीति एक सर्वव्यापक क्रिया है। वस्तुतः राजनीति सामाजिक जीवन की वह महत्त्वपूर्ण गतिविधि है जिसमें समाज के सभी सदस्य किसी न किसी रूप में किसी न किसी स्तर पर सहभागिता करते हैं।

वस्तुतः समय सापेक्ष राजनीति की परिभाषा बदली भी है। आधुनिक समय में मानव-जीवन अत्यधिक वैविध्यपूर्ण हो गया है और राज्य तथा सरकार के अतिरिक्त दूसरे समुदायों ने जन्म ले लिया है जो मनुष्य के राजनैतिक जीवन को प्रभावित करते है। आज पुलिस राज्य का स्थान 'लोककल्याणकारी' राज्य ने ले लिया है जिससे राज्य के क्षेत्र के बाहर कुछ भी नहीं रह गया है। वैज्ञानिक विकास की तीव्र होती गति व वैश्वीकरण ने सम्पूर्ण विश्व को एक इकाई के रूप में बदल दिया है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ राजनीति शास्त्र का विषय-क्षेत्र भी व्यापक होता जा रहा है।

अनेक विचारक राजनीति शास्त्र को एक कला मानते हैं। कला का अर्थ होता है किसी ज्ञान को व्यवहार में प्रयुक्त करना अर्थात् कला वह विद्या है जो हमें किसी कार्य को सुचारू रूप से करना सिखाये, जो व्यावहारिक जीवन के सिद्धान्तों को लागू करना बताये। इस प्रकार राजनीतिशास्त्र एक कला है क्योंकि यह हमें एक अच्छा नागरिक बनाती है। कला का अर्थ सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् से है।

2.3.04. राजनैतिक चिन्तन की भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणा

पाश्चात्य राजनैतिक चिन्तन की अवधारणा का उद्भव यूनानी चिन्तन और अवधारणा से माना जा सकता है। यूनानी दर्शन और चिन्तन पाश्चात्य राजनैतिक दर्शन का आधार है, जिसने विविध आयामों में राजनैतिक दर्शन के विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। प्राचीन पाश्चात्य दर्शन और दार्शनिकों, जिसमें सुकरात, प्लेटो और अरस्तु विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, के दर्शन और सिद्धान्तों में न्याय, राज्य, शिक्षा, विधि, समता, नागरिक अधिकार, साम्यवाद जैसे आधुनिक विषयों की विवेचना किसी न किसी रूप में दिखाई देती है। यूनानी चिन्तन ने समग्रता में न सिर्फ पाश्चात्य राजनैतिक चिन्तन को दिशा दी है, अपितु सम्पूर्ण राजनैतिक व्यवस्था के बेहतर संचालन, बेहतर समाज और बेहतर व्यक्ति के साथ बेहतर राज्य के विकास के मूलभूत सिद्धान्त भी दिये हैं। जिसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

यूनानी दर्शन में राजनैतिक दर्शन का इतिहास राज्य के तत्त्वों और उसके मौलिक विषयों की पहचान और उनकी मीमांसा के द्वारा निश्चित सिद्धान्त की स्थापना, सर्वाधिक स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होता है। यद्यपि भारतीय चिन्तनधारा में भी यह मीमांसा दिखलाई पड़ती है। उसके बाद भी राजनैतिक चिन्तन के सन्दर्भ में स्वतन्त्र बुद्धिवाद की जितनी स्पष्टता यूनानी चिन्तन धारा में दिखलाई पड़ती है उतनी कहीं और नहीं है। यूनानी चिन्तन की प्रक्रिया, जिसकी परम्परा प्लेटो और अरस्तु से पूर्व सोफिस्ट, सुकरात, सिनिक्स और साइरेनेइक्स के रूप में दिखाई देती है, यूनानी चिन्तनधारा कहीं न कहीं प्लेटो और अरस्तु के साथ-साथ कालान्तर में पाश्चात्य दर्शन को भी प्रभावित और निर्देशित करता रहा है। यूनानी राजनैतिक संरचना, व्यक्ति और समाज की धारणा, भौगोलिक स्थिति, नगर राज्यों का विशिष्ट महत्त्व और स्वतन्त्र बौद्धिक विमर्श, यूनानी राजनैतिक चिन्तन की विशिष्ट पहचान रही है। यूनानी चिन्तन की इसी विशिष्टता ने पाश्चात्य राजनैतिक दर्शन में दिग्दर्शक की भूमिका निभायी है। पाश्चात्य चिन्तनधारणा को समग्रता से समझने के लिए प्लेटो के पूर्व के दर्शन को भी गहराई से समझना होगा, जिसकी सतत प्रक्रिया के रूप में आज समस्त राजनैतिक चिन्तन और विमर्श अपने आधुनिक स्वरूप में खड़े हैं।

प्लेटो के चिन्तन का आधार जहाँ सुकरात का दर्शन रहा है, वहीं सोफिस्ट दर्शन का बिम्ब भी उसमें प्रस्फुटित होता है। यूनान के स्वतन्त्र बौद्धिकता और अस्तित्व की संकल्पना जहाँ हीगल के चिन्तन में है वहीं यूरोप ही नहीं अपितु विश्व को प्रभावित करने वाला उदारवाद और साम्यवाद का सिद्धान्त भी इन्हीं से अपनी प्रेरणा और ऊर्जा प्राप्त करता है।

2.3.05. सृजनात्मक लेखन और राजनीति : पाश्चात्य अवधारणा

साहित्य एवं कला सम्बन्धी लेनिन के विचार प्रसंगतः प्राप्त होते हैं जिन्हें उन्होंने पत्राचार के क्रम में, साक्षात्कारों के अवसर पर, नये सोवियत समाजवादी गणतन्त्र की भावी विकास दिशाओं की चर्चा करते समय जब-तब साहित्य एवं कला सम्बन्धी प्रश्नों की परिचर्चा के दौरान उन पर अपने गम्भीर मंतव्य प्रस्तुत करते हुए व्यक्त किया। इस सम्बन्ध में उनकी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रूस के महान् लेखक टोल्सटोय के व्यक्तित्व तथा कृतित्व के मूल्यांकन से सम्बन्धित है जो न केवल लेनिन की पैनी दृष्टि एवं साहित्य मर्मज्ञता का प्रमाण है अपितु वह इस बात का भी एक आदर्श नमूना प्रस्तुत करती है कि किसी साहित्यिक अथवा कलात्मक कृति के मूल्यांकन का सही मार्क्सवादी, सही आधार क्या हो सकता है ? लेनिन के साहित्य एवं कला-सम्बन्धी कतिपय विचारों को लेकर कुछ विवाद भी उठे हैं। रूस के समाजवादी गणतन्त्र और उसकी क्रान्तिकारी पार्टी (साम्यवादी दल) के प्रति लेखकों तथा कलाकारों से पूरी निष्ठा की माँग करते हुए भी उन्होंने कला तथा साहित्य को अनावश्यक अंकुशों से मुक्त रखने की सदैव कोशिश की।

लेनिन के बाद उनके उत्तराधिकारी जे.वी. स्तालिन के समय में कला एवं साहित्य का मार्ग विचार स्वातंत्र्य की अवरुद्धता के कारण उन्मुक्त रूप से विकसित न हो सका। साहित्य एवं कलाएँ पार्टी हित और पार्टी दृष्टिकोण के साथ अत्यन्त अस्वाभाविक और जड़ रूप में बाँध दी गयी। समाजवादी यथार्थवाद का चित्रण साहित्य एवं कलाओं में अनिवार्य माना गया और उसकी वही रूपरेखा प्रमाणित घोषित की गयी जो पार्टी तन्त्र तथा पार्टी की भी केन्द्रीय समिति के मंत्री जदानोव को मान्य हो। दल, साहित्य एवं कलाओं का संरक्षक ही न रहकर नियामक हो गया।

स्तालिन तथा जदानोव द्वारा साहित्य एवं कला-सम्बन्धी प्रश्नों पर दिये गये निर्देशों को उनके भाषणों तथा पार्टी के प्रस्तावों में स्पष्टतः देखा जा सकता है।

स्तालिन की मृत्यु के बाद रूस की समाजवादी शासन व्यवस्था के सूत्र जिन लोगों के हाथ में आये, एक निकिता खुश्चोव को छोड़कर, साहित्य एवं कलाओं के प्रति किसी ने भी विशेष दिलचस्पी नहीं दिखाई। निकिता खुश्चोव की गणना भी लेनिन जैसे साहित्य एवं कलामर्मज्ञ नेताओं में नहीं की जा सकती। किन्तु अन्य नेताओं और उनमें यह अन्तर अवश्य रहा कि जहाँ दूसरे नेतागण प्रशासनिक-राजनैतिक क्रिया कलापों के दौरान, पार्टी अधिवेशनों में, जब-तब साहित्य एवं कलाओं के विषय में औपचारिक वक्तव्य देने तक ही सीमित रहे वहाँ खुश्चोव ने अनेक औपचारिक-अनौपचारिक कार्यक्रमों के दौरान, अधिक अवसरों पर, साहित्य एवं कला सम्बन्धी चर्चाएँ

कीं और अपने खुले व्यक्तित्व के अनुरूप अपने मन्तव्य अधिक खुलेपन के साथ साहित्य में अपने व्यक्तित्व की पूरी छाप अंकित करते हुए व्यक्त किये ।

खुश्चोव ने साहित्य में पक्षधरता को शीर्ष महत्त्व प्रदान करते हुए साहित्यकारों तथा कलाकारों को पश्चिम की बुर्जुआ कलाभिरुचियों के प्रति सावधान किया और ऐसी अभिरुचियों को न केवल पतनोन्मुख कहा, वरन् स्पष्ट रूप से उन्हें प्रतिगामी तथा प्रतिक्रियावादी भी घोषित किया। इस सम्बन्ध में अमूर्त कला के प्रति उनका रोष अपने पूरे व्यंग्य के साथ व्यक्त हुआ है। रचनाकार की स्वतन्त्रता को महत्त्व देते हुए भी खुश्चोव ने ऐसी स्वतन्त्रता की माँग को गैर जिम्मेदाराना कहा जो सोवियत जीवन के एकांगी पक्षों को ही रुचिपूर्वक उद्घाटित करने में अपनी सार्थकता देखती हो। समाजवादी यथार्थवादी के आदर्श को उन्होंने साहित्य तथा कला के लिए आवश्यक बताते हुए रचनाकारों से आग्रह किया कि उन आदर्शों को ही अपनी रचनाओं में मूर्त करने के लिए वे सक्रिय हो। कारण उन्हीं में एक संतुलित स्वस्थ तथा ईमानदार रचनाशीलता के लिए गुंजाइश है। पार्टी का उद्देश्य उन्होंने ऐसे साहित्य तथा ऐसी कला को प्रश्रय देना माना जो वैचारिक तथा कलात्मक दोनों दृष्टियों से अत्यन्त परिष्कृत तथा पूर्ण हो। उन्होंने स्पष्टतः कहा कि हमारी जनता साहित्य, चित्र और संगीत की वे कृतियाँ चाहती हैं जो उसके श्रममय जीवन का संघर्ष अंकित करे साथ ही जिन्हें वे समझ भी सके। ऐसे साहित्य तथा कला का निर्माण तभी हो सकता है जब हमारे लेखक जनता के दैनन्दिन जीवन तथा लोगों की श्रम-प्रक्रिया से अपना सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित करें, कारण तभी वे जनता की आत्मा, उसके चरित्र, उसके विचार तथा आशाओं-आकांक्षाओं को समझ सकेंगे।

साहित्य एवं कला सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने वाले मार्क्सवादी दर्शन के व्याख्याताओं में एक अत्यन्त प्रमुख नाम चीनी जनवादी गणतन्त्र के संस्थापक एवं चीनी मुक्ति आन्दोलन के दिशानिर्देशक एवं नायक मओत्से तुंग तथा उनके अनुयायियों के साहित्य एवं कला सम्बन्धी विचार हमें कई स्रोतों से उपलब्ध होते हैं।

सृजनात्मक शक्ति में राजनैतिक विचारों के साथ हम प्रसिद्ध कथाकार मैक्सिम गोर्की की रचना का वर्णन कर सकते हैं जिन्होंने सृजन की मौलिकता और उसकी कलात्मकता का ध्यान रखते हुए जनता तथा क्रान्ति के लिए अपनी समूची सर्जना तथा चिन्तन अर्पित कर दिया था।

गोर्की ने केवल सर्जनात्मक साहित्य का ही निर्माण नहीं किया और न ही केवल कला को राजनीति का ही केन्द्र बनाया, दोनों की महत्ता को समझते हुए उन्होंने बीच का रास्ता चुना जहाँ कला की मौलिकता बची रहे और जनता को सत्ता की परिभाषा और उसके हर कार्य की आलोचना, सराहना के लिए प्रेरणा भी मिले उन्होंने साहित्य एवं कला से सम्बन्धित विविध प्रश्नों पर भी निबन्धों, भाषणों और पत्रों के रूप में अपने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। उनकी सर्जना के साथ ही उनके चिन्तन ने भी, रूस की ही नहीं, अन्य देशों की भी प्रगतिशील युवा लेखक पीढ़ियों को प्रभावित किया है। गोर्की के साहित्य एवं कला चिन्तन का केन्द्र बिन्दु जनता तथा उभरते हुए, नये जीवन की संगति में बदलती हुयी उसकी परिष्कृत रुचियाँ हैं। उन्होंने पश्चिम की व्यक्तिवादी पतनशील बुर्जुआ कला तथा संस्कृति की निर्मम आलोचना की है तथा उनके स्थान पर स्वस्थ कला मूल्यों का प्रतिपादन किया है। वे उन रचनाकारों में थे जिन्होंने साहित्य एवं कला सर्जना तक ही अपने कर्तव्य की इति न समझकर, रूस की तीनों

क्रान्तियों में, जनता और उसके नेता के कन्धे से कन्धा मिलाकर भाग लिया। अन्य पाश्चात्य रचनाकारों में 'शोलोखोव' तथा 'फादयेव' की कृति भी इस दृष्टि से महान् है कि 'शोलोखोव' तथा 'फादयेव', दोनों ही साम्यवादी आदर्शों के प्रति समर्पित एवं प्रतिबद्ध लेखक हैं। फलतः दोनों ने ही साहित्य एवं कला की चरितार्थता साम्यवादी आदर्शों के निर्माण के प्रति उनकी सक्रियता को ही स्वीकार की है। दोनों का ही विचार है कि कलात्मक परिष्कृति के साथ-साथ विचारधारा की परिष्कृति का भी होना अनिवार्य है। ये कला मूल्यों के प्रति सजगता को आवश्यक मानते हुए भी दलीय भावना तथा राजनैतिक दृष्टिकोण से उनकी सम्पृक्ति को भी अनिवार्य मानते हैं।

अगले पाश्चात्य रचनाकार में 'एहरेनबुर्ग' ने रचनाकार के निरीक्षण एवं उसकी ग्रहण क्षमता पर बहुत बल दिया है। युग के अनुरूप मनुष्यों के स्वभाव में होने वाले परिवर्तनों तथा वास्तविक जीवन के बदलते हुए स्वरूप को पहचानना तथा उन्हें अपनी मानस-चेतना तथा रचनात्मक क्रिया का अंग बना लेना, लेखक की बहुत बड़ी विशेषता मानी जाएगी। कहने का तात्पर्य यह है कि लेखक की क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि वह बदलती हुयी वास्तविकता को कितनी समग्रता से ग्रहण कर अपनी रचनात्मक प्रतिभा का अंग बना लेता है समग्रतः एहरेनबुर्ग के विचार महज सैद्धान्तिक कथन न होकर, एक रचनाकार होने के नाते रचना की व्यावहारिक स्थितियों, उनकी अनुभूत वास्तविकता से जुड़े हुए हैं, और इसी कारण मूल्यवान् हैं। एहरेनबुर्ग के ये विचार इस तथ्य को भी प्रमाणित करते हैं कि यदि रचनाकार में रचनागत क्षमता है तो उसकी रचना-धर्मिता उसकी राजनैतिक पक्षधरता या प्रतिबद्धता को साथ लेकर भी अपनी शक्ति प्रमाणित कर सकता है।

2.3.06. भारतीय साहित्य में राजनैतिक विचारों का महत्त्व

साहित्य मानव समाज की भावात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। अतः उसके प्रेरक तत्त्व के रूप में मनुष्य के परिवेश का बहुत बड़ा महत्त्व है। इस दृष्टि से आदिकालीन साहित्य के इतिहास के साथ तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों को समझना अनिवार्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में 993 ई. से 1318 ई. तक के कालखण्ड को आदिकाल कहा है। इस काल की राजनैतिक परिस्थिति वर्द्धन साम्राज्य के पतन से आरम्भ होती है। अन्तिम वर्द्धन सम्राट हर्षवर्द्धन के समय से ही उत्तरी भारत पर यवन आक्रमण आरम्भ हो गये थे। हर्षवर्द्धन ने दृढ़ता से उनका सामना किया, किन्तु आक्रमणों की उस आँधी को वह रोक न सका। उसकी समस्त शक्ति उस प्रतिरोध में ही समाप्त हो गयी। उसके साथ ही वर्द्धन साम्राज्य भी लड़खड़ा उठा। हर्षवर्द्धन की मृत्यु ने भारत की संगठित सत्ता के खण्डखण्ड हो जाने की सूचना दी तथा वे राजपूत राज्य सामने आये जो निरन्तर युद्धों की आग में जलते-जलते अन्ततः विशाल इस्लाम साम्राज्य की नींव में समा गए। आठवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी ईसवी तक के भारतीय इतिहास की राजनैतिक परिस्थिति हिन्दू सत्ता के धीरे-धीरे क्षय होने तथा इस्लामिक सत्ता के धीरे-धीरे उदय होने की करुण कहानी है। इसी ने उस मनःस्थिति को जन्म दिया था, जिसमें कोई भी एक प्रवृत्ति साहित्य में प्रधान न हो सकी।

आदिकाल के इस युद्ध प्रभावित जीवन में कहीं भी संतुलन नहीं था। जनता पर विदेशी आक्रान्ताओं के अत्याचारों के साथ-साथ युद्ध का और देशी राजाओं के अत्याचारों का क्रम भी बढ़ता चला गया। अराजकता, गृह-कलह, विद्रोह, आक्रमण और युद्ध के वातावरण में यदि एक कविवर्ग आध्यात्मिक जीवन की बातें करता था, तो दूसरा मरते-मरते भी जीवन का रस भोग लेना चाहता था। एक तीसरा कविवर्ग ऐसा भी था, जो तलवार के गीत गाकर गौरव के साथ जीना चाहता था। इस काल की राजनैतिक परिस्थितियों को देखकर यही कहा जा सकता है कि इस तरह के विपरीत राजनैतिक वातावरण में किसी कवि की क्या मनःस्थिति हो सकती है जिसके लेखन की स्वतन्त्र कल्पना, या सृजन की कल्पना की जा सके।

इसके बाद का समय हिन्दी साहित्य का मध्यकाल है जिसकी समय-सीमा चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक मानी जा सकती है। निश्चित रूप से भक्ति साहित्य किसी क्षणिक भावावेग अथवा इन्द्रियजन्य भावोन्माद की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है अपितु यह ठोस तथा उर्वर धरातल की उपज है। इसके साधन लौकिक अवश्य हैं, किन्तु इसका साध्य ऐसी लोकोत्तर अनुभूति है जिससे भक्त के चित्त को अनुपम शान्ति और आनन्द की उपलब्धि होती है। भक्तिकाल में उपासना भेद का आश्रय लेकर भक्ति विषयक सगुण और निर्गुण जैसे दो वर्गों की कल्पना कर ली गयी। भक्ति के इस विराट् साम्राज्य में राजनैतिक दाँव-पेंच को समझना उनको अपने साहित्य में स्थान देना तथा जनता को राजनैतिक पैमाने से अवगत कराना इस काल के सन्तों के वश की बात नहीं थी। तुलसीदास के रामचरितमानस में निश्चित रूप से राजा-प्रजा की परिकल्पना कर एक आदर्श स्थापित किया गया, वह भी भक्ति के छाजन के साथ। इस काल की यथार्थ राजनीति क्या है, जनता को राजनैतिक गतिविधियों के प्रति कैसे जाग्रत् करना है, क्या दिशा-निर्देश करना है, यह सब इस काल के सन्तों के लिए दूर की कौड़ी मात्र थी।

रीतिकालीन परिवेश जिसकी समय-सीमा 1700 से 1900 विक्रम संवत् मानी गई है, वह समय भी मौखिक सृजन के उपयुक्त नहीं था। छोटे-छोटे राज्य के राजा विलासी हो चुके थे। कवियों की विवशता राज्याश्रित हो चुकी थी। ऐसे समय में मौखिक सृजन ही सम्भव नहीं था तो रचना के अन्तर्गत राजनैतिक गतिविधियों पर टीका-टिप्पणी कैसे सम्भव थी।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल में काव्य के अन्तर्गत वीर भावनाओं की उत्ताल तरंगें दृष्टिगोचर होती हैं जहाँ वीर भावना भी शृंगार के साहचर्य में पनप रही थीं। भक्तिकालीन परिवेश भक्ति की भावना में लीन था। रीतिकालीन कवि चमत्कार प्रियता और शृंगार बहुलता के घेरे में जकड़ा हुआ था।

वास्तव में सृजनात्मक लेखन में राजनैतिक विचारों का महत्त्व आधुनिक काल में लोकतान्त्रिक व्यवस्था के साथ पनपा जब जनता को एक व्यापक कैनवस मिला। अपने विचारों की उन्मुक्तता के लिए कवि, साहित्यकार भी जनता के बीच गये और उनकी परिधि भी लोकतन्त्र में व्यापक हुई। राजनैतिक विचार मूलतः लोकतन्त्र की उपज है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था के साथ ही साहित्य में लोकतान्त्रिक विचारों का प्रादुर्भाव हुआ।

छठे दशक में भारत एक नये युग में प्रवेश कर रहा था। पाँचवें दशक का उत्तरार्द्ध नये भारत के सूर्योदय का कवि था। 15 अगस्त 1947 को देश एक साथ लगभग डेढ़ सौ साल की औपनिवेशिक गुलामी से और हजारों वर्षों के राजतन्त्रीय शासन से मुक्त हुआ। इसके साथ ही देश का विभाजन और एक तरह से एकीकरण भी हुआ। देश की आजादी के साथ ही उसका एक हिस्सा 'पाकिस्तान' के नाम से दूसरा देश बन गया और कुछ ही समय बाद 'देशी राज्यों' के नाम से जाने-जाने वाले क्षेत्र भारत के अभिन्न अंग बन गए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही पूरा हिन्दुस्तान साम्प्रदायिक उन्माद और राजनैतिक महत्वाकांक्षा से पैदा हुए एक प्रकार के गृह-युद्ध का शिकार हो गया और एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी जो मानवीय इतिहास में शर्मनाक कही जा सकती है। धर्म के नाम पर आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपना 'वतन' छोड़ने को मजबूर हुआ और एक अपरिचित, 'अपना' कहे जने वाले देश में रहने को मजबूर कर दिया गया। आजादी मिलने के लगभग साढ़े पाँच महीने बाद ही आजादी की लड़ाई के अघोषित सेनापति और मानवीय करुणा, मुक्ति और सत्य, अहिंसा के देवदूत महात्मा गाँधी की हत्या कर दी गयी। 1949 में स्वतन्त्र धर्मनिरपेक्ष और सम्प्रभुता सम्पन्न भारत का संविधान तैयार हुआ जो 26 जनवरी 1950 को एक भव्य समारोह के साथ लागू हो गया।

कांग्रेस पार्टी में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार, मोहभंग और ऊर्जा के क्षीण होने के कारण नेहरू ने 1948 में कहा था कि "हमने जो आदर्शवादी ढाँचा और मनोबल विकसित किया था उसके दिनोंदिन ह्रास के कारण कांग्रेस पार्टी के राजनैतिक मूल्यों और स्तर में गिरावट आने लगी थी।" कांग्रेस के सत्ता में आते ही देश में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, एक प्रकार की संरक्षण व्यवस्था लागू हो गयी जिसके फलस्वरूप राजनैतिक दलालों, मध्यस्थों और वोट बैंक की अवधारणा का उदय हुआ। 1948 में ही नेहरू ने लिखा था – "यह सोचना ही भयानक है कि हम लोग सभी मूल्यों को खो रहे हैं और अवसरवादी राजनीति के घिनौनेपन में डूब रहेहैं।"

गौर करने की बात है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य का पाठक और प्रायः लेखक भी, वही मध्यमवर्ग था जो ब्रिटिश शासन में विकसित और निर्मित हो रहा था। इसके समकालीन आदर्श गाँधीजी थे, जो मूल्यों के सजीव प्रतीक थे। इसके प्रेरक नेहरू थे जो आधुनिक, बौद्धिक और उदारवादी मूल्यों के प्रतीक थे। आजादी के बाद जो साहित्य लिखा जा रहा था उसके लेखक और पाठक भी उसी परिवेश की उपज थे।

2.3.07. हिन्दी कविताओं में राजनैतिक विचारों का महत्त्व

समसामयिक हिन्दी कविता में बड़े पैमाने पर राजनैतिक पहलू को आँकने की चेष्टा की गयी है। सामयिक हिन्दी कविता में राजनैतिक विसंगति के कई रूप प्राप्त होते है। नेताओं की गलत राजनीति को लेकर कवियों के मन में निरन्तर अन्तःसंघर्ष होता है, और वही अन्तःसंघर्ष व्यंग्य का रूप लेकर उनकी कविताओं में प्रक्षेपित है। मुक्तिबोध की कविता 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में उन राजनीतिज्ञों की गन्दी षड्यन्त्रकारी राजनीति पर गहरा आक्षेप किया गया है –

कोलतारी सड़क पर खड़े हुए सर्वोच्च
गाँधी के पुतले पर
बैठे हुए आँखों के दो चक्र
यानी की घुग्घु एक –
तिलक के पुतले पर
बैठे हुए घुग्घु से
बातचीत करते हुए
कहता ही जाता है –
" ... मसान में
मैंने भी सिद्धी की।

गाँधी और तिलक के नाम पर किस तरह नेता लोग खून चूस रहे हैं, मानवता की हत्या कर रहे हैं – इन तमाम षड्यन्त्रों का सही-सही परिचय मुक्तिबोध की इस कविता में पाया जा सकता है।

मुक्तिबोध की इसी विचारधारा से मिलती-जुलती धूमिल की निम्नलिखित पंक्तियाँ राजनैतिक हथकण्डेबाजी और नेताओं के गलत इरादों का पर्दाफाश करती हैं। किस प्रकार चालाक सुराजिये आजादी के बाद अपने पुरखों के नाम पर उनकी कमाई हुयी थाती का गलत उपयोग कर रहे है –

मगर चालाक 'सुराजिये'
आजादी के बाद के अँधेरे में
अपने पुरखों का रंगीन बलगम
और गलत इरादों का मौसम जी रहे थे
अपने-अपने दराजों की भाषा में बैठकर
गर्म कुत्ता खा रहे थे
सफेद घोड़ा पी रहे थे।

सारी विसंगतियों के बावजूद अपने दायित्वों के प्रति सजग, सम्वेदनशील, चेतनासम्पन्न और निर्भीक आज का कवि इनसे डरता नहीं और खुलेआम घोषणा करता है कि –

जब तुम देश और आजादी की बात करते हो
मैं घर चला जाता हूँ।

जगदीश चतुर्वेदी सम्पूर्ण राजनैतिक चेतना को ही एक घृणास्पद कुचक्र के रूप में पाते हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि राजनीति का प्रत्येक संगठन किसी घृणास्पद कुचक्र का अंग है। कुछ दिनों तक पुस्तकों में अच्छे लगने वाले सिद्धान्त चाहे वे मार्क्स के हों या आरवेल के, उनके मतानुयायियों द्वारा अपने स्वार्थ के लिए उपयोग में लाये जाते हैं। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना भी इस विसंगति से पूरी तरह परिचित हैं। उदाहरणार्थ देखिए –

एक लाश खड़ी करके
दूसरी लाश उसके सर पर लिटा दी गयी है
ताकि उसकी छाँह तले
ठण्डक से ऐंठे हुए
दो बेहोश जहरीले साँपों के फन
एक ही कमल की पंखुड़ी पर सुलाए जा सकें।

इस कविता में उस राजनैतिक षड्यन्त्र का पर्दाफाश किया गया है, जिसमें कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा जोड़कर एक नया मतवाद पैदा करके जनता को गुमराह करना और अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए भ्रामक विश्वासों को पैदा कर जन-मानस के कोमल सम्वेदना तन्तु को दीमक के समान खोखला करना तथा अपनी दोमुँही राजनीति के विषाक्त दंश से दंशित करना राजनीतिज्ञों की आदत बन गयी है। यह सारे राजनैतिक गुटों पर एक गहरा व्यंग्य है। मतवादों को लाश से उपमित कर कवि ने उनकी जीवन्तता और अर्थवत्ता पर एक भयंकर प्रश्न चिह्न लगा दिया है। जिस तरह लाश में अर्थवत्ता समाप्त हो चुकी होती है, वह सारहीन होती है, उसमें चेतना नहीं होती, उसी प्रकार ये राजनीति अनेक सारहीन, चेतनाहीन, चेतनाशून्य मतों को जोड़कर उनके सहारे अपने को प्रतिस्थापित करना और अपने स्वार्थ की पूर्ति करना चाहती है। वे अपने ही मतों को सत्य की संज्ञा देते है, ताकि वे उसके बहाने स्वयं प्रतिस्थापित हो सकें।

सत्य के बहाने
स्वयं को चाहते हैं प्रस्थापित करना।

मुक्तिबोध की यह कविता समूचे राजनैतिक मतवादों की 'सत्यता' पर प्रश्न चिह्न लगा देती है। इन्हीं सब बातों को केन्द्र में रखकर धूमिल की कविता में जनतन्त्र की अर्थवत्ता के प्रति एक व्यापक प्रश्न चिह्न मिलता है।

दरअसल अपने यहाँ
जनतन्त्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है।

अपनी इस कविता 'पटकथा' में कवि जनतन्त्र को मदारी की भाषा कहता है। मदारी की भाषा, जो भीड़ इकट्ठी करने के लिए आकर्षक और बेबुनियादी, बेमानी शब्दों का प्रयोग है; शब्दों का एक अर्थहीन जंगल, जिसकी कोई अर्थवत्ता नहीं होती, कोई संगति नहीं होती, मात्र आवाज होती है और शोर होता है। अन्य कवियों में विजयदेव नारायण साही की कविता 'अगाधद्रष्टा, बर्बर और एक तीसरा' शीर्षक कविता को लिया जा सकता है। इसमें अगाधद्रष्टा समाजवादी हैं, बर्बर कम्युनिस्ट और तीसरा पात्र पण्डित नेहरू या उन जैसे लोग। साही की कविताओं में इतने सपाट या स्थूल रूप से राजनैतिक सन्दर्भ ढूँढना उचित नहीं लगता तथापि यह सही है कि गहराई में वे प्रखर राजनैतिक चेतना सम्पन्न कवि थे। इस कविता से जो पता चलता है वह यह कि वे समझते थे

कि यदि दुनिया में कम्युनिस्टों का शासन कायम हुआ है तो वह समाजवादियों की उदासीनता और निष्क्रियता के कारण। ये समाजवादी अगाध अर्थात् आध्यात्मिकता की खोज में रहे और इस तरह अपने हाथों पृथ्वी को बर्बरों को सौंपते रहे।

'अभी बिल्कुल अभी' केदारजी का कविता संग्रह जिसका प्रकाशन 'तीसरा सप्तक' प्रकाशन के अगले वर्ष ही हुआ, में संकलित सभी कविताओं की भावभूमि हर्षोल्लास वाली है। कविता की बुनावट में थोड़ा फर्क आया, कवि जैसे गाँव से शहर में आ गया हो। गाँव उसे भूल नहीं सकता, क्योंकि वह उसकी चेतना में मिला हुआ है, लेकिन अब उसका ध्यान जैसे अपने शहरी परिवेश पर है। इस संग्रह की कविताओं से कवि का हर्षोल्लास छलक पड़ता है। वह देश-देशान्तर की अनदेखी, छापहीन और खुलती राहों पर हस्ताक्षर कर देता है, अपनी छोटी बच्ची को ओंस भरे काँपते गुलाब की टहनी पर तितली के पंख सी सटी हुयी धूप का नाम देता है। कहता है – "मैं मन्त्र-द्रष्टा नहीं हूँ, फिर भी अँधेरे कैलेण्डर पर हाथ रखकर वह एक निश्चित तिथि बतला सकता हूँ, जब मेरे पड़ोसी वकुल में फूल आते हैं और उसने एक टहनी की तरह पाँचों उंगलियों में नदी को पकड़ रखा है।"

प्रकृति के सौन्दर्य से उसका मन अभिभूत है। उसे सुबह-सुबह सिहरते जलाशय के लहरदार पानी में धूप की हँसी मुग्ध करती है, तो शाम को गिरती धूप की टूटी सात रंगों की पताकाएँभी। उसके मन में प्यार की रेखा रह-रहकर कौंधती रहती है। उसके हर्षोल्लास को कोई चीज संयमित करती है, तो प्यार की उदासी में डूबी पतझड़ की एक शाम या यह चिन्ता कि मैं अपना नन्हा गुलाब कहाँ रोप दूँ, या फिर यह आशंका कि मेरी देहरी के पास जो हल्दी रंगे पत्र सा कोई आज के दिन रख गया है, पता नहीं उसमें क्या लिखा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्यार की उदासी आनन्ददायक ही होती है। हाथों में गुलाब का पौधा हो, तो चिन्ता की क्या बात हो सकती है और हल्दी रंगे पत्र में कोई अशुभ समाचार होने की कल्पना बेकार है।

प्रश्न यह उठता है कि कवि के इस हर्षोल्लास का कारण क्या है ? निश्चय ही इसका कारण सिर्फ स्वाधीनता प्राप्ति नहीं है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के दशक में उत्साह का वातावरण था। शताब्दियों की पराधीनता समाप्त हुई थी। औपनिवेशिक शासन की जगह देश में अपना शासन स्थापित हुआ था। देशी राज्यों का खात्मा हो चुका था और भारतीय राष्ट्र की एक विराट् सत्ता अस्तित्व में आई थी। नये संविधान के लागू होने और प्रथम सामान्य निर्वाचन के साथ जनतान्त्रिक क्रियाएँ क्रियाशील हो उठी थीं। देश योजनाबद्ध विकास के मार्ग पर बढ़ चला था। जमींदारी प्रथा को खत्म करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्रों में उद्योग-धंधे खड़े करने तक के काम में तेजी आ रही थी। चारों तरफ स्कूल-कॉलेज खुल रहे थे और शिक्षित मध्यमवर्ग राष्ट्र-निर्माण में भरपूर योगदान करने को प्रस्तुत था। विश्व में भारत अपनी अस्मिता के साथ राजनैतिक से अधिक एक नैतिक शक्ति में रूप में उभरा था। पण्डित नेहरू औपनिवेशिक दासता से मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाले एशियाई और अफ्रीकी देशों के सबसे बड़े पक्षधर नेता के रूप में मान्य हो चुके थे। उनकी उपनिवेशवाद-विरोधी आवाज सबसे ऊपर सुनाई पड़ती थी। इसके साथ ही देश में, विदेश में भी वामपन्थी ताकतें मजबूत हो रही थीं। रूस के बाद चीन में क्रान्ति हो चुकी थी और तमाम दुष्प्रचारों के बावजूद भारत में समाजवादी विचारधारा प्रसार पर थीं, जिसका पक्का प्रमाण 1957 के सामान्य निर्वाचन के बाद केरल राज्य में कम्युनिस्ट पार्टी की सरकार के गठन के रूप में सामने आया था। इन

सभी का उत्साहवर्धक प्रभाव जैसे समकालीन हिन्दी कविता पर पड़ रहा था, केदारजी की कविताओं पर भी पड़ा, लेकिन सतही रूप में नहीं, क्योंकि इसमें उनकी अपनी कवि-दृष्टि की भी भूमिका थी।

2.3.08. हिन्दी कहानियों में राजनैतिक विचार

समसामयिक हिन्दी कहानियाँ भी राजनैतिक प्रभाव से अछूती नहीं रह सकीं हैं। वृन्दावन लाल वर्मा द्वारा लिखित कहानी 'मेंढ़की का ब्याह' में समकालीन जीवन की विसंगतियों के साथ सरकारी विभागों में बढ़ती रिश्वतखोरी, नकली नेताओं के पाखण्ड, उनके द्वारा चुनाव के समय जनता के हित के लिए की गयी झूठी घोषणाओं आदि पर व्यंग्य किया गया है। यद्यपि इस कहानी में व्यंग्य का स्तर बहुत ऊँचा नहीं है पर नेहरू युग के अन्तर्विरोधों और असफलताओं की सबक इस कहानी में देखी जा सकती है।

दूसरी कहानी बेचन शर्मा उग्र की 'उरूज' कहानी है जिसमें राजनैतिक दाँव-पेंच का सजीव अंकन प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद महाजनों द्वारा राजनेताओं के भ्रष्टीकरण और उनके भ्रष्ट हो जाने की प्रक्रिया पर करारा व्यंग्य किया गया है।

यशपाल द्वारा लिखित कहानी 'प्रधानमंत्री से भेंट' में आजादी मिलने के बाद भी आम जनता के प्रति सत्तारूढ़ नेताओं और नौकरशाही के उपेक्षापूर्ण और कठोर व्यवहार का चित्रण किया गया है । इस कहानी के माध्यम से जनता के प्रति सम्वेदना तथा राजनीतिज्ञों की कठोरता के प्रति लेखक के मन के भाव को अभिव्यक्ति मिली है।

अमृत राय द्वारा लिखित कहानी 'सपने और सपने' कहानी का कथ्य साम्यवादी दल के नारे – "आजादी झूठी है" के समर्थन से जुड़ा है। लेखक की मान्यता है, जो एकदम निराधार भी नहीं है, कि नेहरू की सरकार जनता को मात्र झूठे आश्वासन देती रही । बदला कुछ भी नहीं था जो बदलाव हुआ वह जनता की अपेक्षाओं के अनुरूप तो नहीं रहा और तर्कसंगत भी नहीं रहा। प्रशासन व्यवस्था और शिक्षा के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, बेकारी दिनोंदिन बढ़ती रही, भ्रष्टाचार में इज़ाफा होता रहा । पूरे छठे दशक तक जनता नेहरू के आश्वासनों की मृगमरीचिका में भटकती रही और यह भ्रम तब टूटने के कगार पर पहुँचा जब चीन से युद्ध में भारत की शर्मनाक पराजय हुयी और जनता को भूखों मरने से बचाने के लिए अमेरिकी पी.एल.-64 योजना की शरण लेनी पड़ी। यह कहानी 1952 में इतिहास विषय में एम.ए. पास करके रिसर्च करने वाले लड़के की संघर्ष कथा को बयां करती है जिसे व्याख्याता तो क्या, स्कूल के शिक्षक की भी नौकरी नहीं मिलती । जगह-जगह की ठोकरें खाने के बाद अन्ततः वह व्यक्ति बस-कंडक्टर की नौकरी करने को बाध्य होता है।

राजनेताओं की आर्थिक-नैतिक भ्रष्टता और चारित्रिक अन्तर्विरोध अपने समय का एक ज्वलन्त सत्य है और इसका आरम्भ थोड़े बड़े पैमाने पर आजादी मिलने के बाद ही शुरू हो गया था। कवि और लेखक अपनी रचनाओं में इस यथार्थ का उद्घाटन आरम्भ से ही कर रहे थे और जनता की सहानुभूति भी उन्हें सहज भाव से प्राप्त हो रही थी। उन परिस्थितियों में किसी सच्चरित्र, ईमानदार नेता की कल्पना करना मुश्किल था। इसी मुश्किल का

चित्रण 'मैं हार गयी' कहानी में किया गया है। स्वयं मन्नू भंडारी के अनुसार "आजादी के वक्त नेताओं से बहुत उल्लासपूर्ण उम्मीदें थीं, लेकिन आजादी के बाद यह नेता नाम की संस्था बहुत खोखली निकली।" मन्नू भण्डारी का कहना है कि "जो समाज का सच नहीं है, उसकी कल्पना साहित्य में भी नहीं की जा सकती।"

भीष्म साहनी की 'भटकती राख' एक प्रतीकात्मक कथा है, जिसके माध्यम से आजादी की लड़ाई, देश के स्वतन्त्र होने का सच और उसके 'राजा' के प्रजा-प्रेम का संकेत किया गया है। कहानी के अन्त में दादी माँ से यह कहलवाया गया है कि जब देश में सुख-चैन न हो "तो राजा की राख भटकने लगती है। जब देश पर संकट आता है, झोपड़ों से रोने की आवाजें आती हैं और देश में आँधियाँ और तूफान उठते हैं। तो राजा की राख बेचैन हो उठती है और लोगों को लगता है जैसे वह साँय-साँय करती गलियों, सड़कों और राहों पर भटक रही है, झोपड़ों से लिपट रही है और जिन लोगों के दिल में दर्द होता है, उन्हें लगता है, जैसे राजा की बेघर राख उनके दिलों पर दस्तक दे रही है, उनसे कुछ कहना चाह रही है और वे विचलित होकर कहते हैं – राजा बेचैन हैं। जब तक यह रोना बन्द नहीं होगा, तब तक उसे चैन नसीब नहीं होगा।" यह कहानी समकालीन आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों की ओर इशारा करती है। 'मौकापरस्त' कहानी में राजनीति के लिए मौत को भी भुनाने की मौकापरस्ती का चित्रण किया गया है। चुनाव की राजनीति कितनी सम्वेदनहीन हो गयी है, इस कहानी के माध्यम से राजनैतिक गतिविधियों का चित्रण कर समाज के सामने राजनैतिक सच को उजागर किया गया है।

'वाङ्चू' भीष्म कहानी द्वारा लिखित दूसरी राजनैतिक गतिविधियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती हुई कहानी है, जिसमें मानवीय सम्वेदना के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के दुष्चक्र में व्यक्ति सम्वेदना के बेमानी हो जाने और उसकी त्रासद परिणति का चित्रण किया गया है। भारत पर चीन के आक्रमण के प्रसंग से जुड़ी यह कहानी हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानी जा सकती है। इसे गहरे अर्थ की राजनैतिक कहानी मानते हुए विजय मोहन सिंह ने लिखा है " 'वाङ्चू' के स्वभाव की असली विशेषता यह है कि उस पर किसी चीज का कोई असर नहीं पड़ता। वह एक वास्तविक तथा अन्तस्तल तक अपनी सम्वेदना तथा स्वभाव में बौद्ध है। नितान्त निस्संग, निःस्पृह तथा अपने से बाहर के जगत् से सर्वथा असम्पृक्त। उसकी यही निस्संगता तथा निस्पृहता कहानी की उस विडम्बना को जन्म देती है जो उसकी यन्त्रणा तथा त्रासद अन्त का कारण बन जाती है। उसका कोई दुश्मन नहीं है, लेकिन अचानक उसका अपना देश चीन और विदेश भारत दोनों की शासन व्यवस्था इसलिए दुश्मन हो जाती है कि क्योंकि वे रातोंरात एक दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं। दो देशों के बीच दुश्मनी की सजा एक ऐसे निरीह तथा निश्छल व्यक्ति को मिलती है जो एक गहरे अर्थ में किसी देश का वासी नहीं है। कहानी की यह दूरगामी व्यंजना आज भी न जाने कितने वाङ्चूओं पर लागू हो रही है।"

विजय मोहन सिंह के अनुसार "भारत-पाकिस्तान युद्ध आजादी के बाद भारत की सबसे बड़ी ट्रेजेडी थी। एक सन्दर्भ में भारत-चीन विभाजन से भी ज्यादा इसने न केवल नेहरू के एकीकृत एशिया के सपने को चकनाचूर कर दिया बल्कि राजनैतिक स्तर पर एक बहुत बड़े विश्वासघात का बीज बो दिया। उस बदले हुए नये भारत में वाङ्चू नये सिरे से अजनबी बन जाता है और आजीवन अजनबी बना हुआ ही उस संसार से विदा हो जाता है। ... वाङ्चू मंटो के टोबा टेकसिंह की तरह पागल नहीं है लेकिन इस अर्थ में वह भी एक टोबा टेकसिंह है जिस तरह

मंटो का टोबाटेक नहीं जानता कि उसका देश हिन्दुस्तान है या पाकिस्तान और इसीलिए वह न तो हिन्दुतान का है और न ही पाकिस्तान का। वह सीमावर्ती एक पेड़ पर चढ़कर घोषित करता है कि यही उसका देश है, वह वहीं रहना चाहता है। वाङ्चू भी किसी देश का निवासी नहीं है। भारत में भी दुबारा पहुँचकर वह पाता है कि वह भी उसके लिए अजनबी बन चुका है। ... हर रोज, हर लम्हा, हर देश में नये वाङ्चू पैदा होते हैं और मर जाते हैं और फिर नये वाङ्चू ...।"

सन् 1970 के आस-पास प्रणव कुमार बन्धोपाध्याय द्वारा लिखित कहानी 'सलाखें' में 1947 के बाद की तथाकथित राजनैतिक उपलब्धियों का कच्चा चिट्ठा खोला गया है। उनकी दूसरी कहानी 'अग्निकोण' में समकालीन हारी पीढ़ी की कहानी कही गयी है और बताया गया है कि आये दिन भूखों के जुलूस पर गोली चल जाना कोई बड़ी बात नहीं है। अकाल की पृष्ठभूमि में लिखित इस कहानी में सरकार की निष्क्रिय भूमिका सामने आती है।

2.3.09. हिन्दी उपन्यासों के कैनवस पर उभरता राजनैतिक बिम्ब

कहानी और कविता के साथ ही साथ उपन्यासों में भी राजनीति ने दस्तक दी। स्वाभाविक रूप से इससे उसका फलक विराट् तथा चेतना व्यापक हुई फलस्वरूप जन-जीवन को राजनैतिक गतिविधियों को समझने एवं अपना दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में सहायता मिली। उदाहरणार्थ यशपाल ने 'झूठा सच' के बाद के अपने उपन्यास 'तेरी मेरी उसकी बात' में जीवन यथार्थ के नये पक्षों का कलात्मक प्रस्तुतीकरण किया है। यह वृहत्काय उपन्यास एक साथ दो स्तरों पर चलता है। इसमें एक ओर तो सन् 1942 तथा उसके बाद के राजनैतिक परिवेश को गहराई से पकड़ा गया है, दूसरी ओर सामाजिक परिवेश में अमर, नरेन्द्र, रजा, उषा आदि पात्रों को रखते हुए उनके वैचारिक संघर्ष को नये कोणों से चित्रित किया गया है।

स्वाधीनता के साथ उपन्यासकारों ने नये स्वतन्त्र भारत के नये भारतीय समाज के जो सपने देखे थे वे टूटने लगे। जिनके हाथ में स्वतन्त्र भारत की सत्ता आई और उन्होंने जिस प्रकार स्वतन्त्र भारत की जनता के साथ व्यवहार करना आरम्भ किया उसके प्रति पहले आक्रोश और फिर विरोध उत्पन्न हुआ लेकिन जनता में भारत के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आस्था बनी रही। जल्दी ही यह विरोध और आक्रोश ठण्डा पड़ने लगा, आस्था खण्डित होने लगी और आशा निराशा में बदलने लगी। इसका रोचक प्रमाण यशपाल के दो उपन्यासों 'झूठा सच' तथा 'वतन और देश' में देखने को मिलता है। रामदरश मिश्र के 'तेरी मेरी उसकी बात' तथा मधुरेश और कुँवर पाल सिंह के उपन्यासों में भी मोहभंग और हताशा का यथार्थ चित्रण हुआ है।

2.3.10. पाठ सार

सृजनात्मकता मूलतः ईश्वर प्रदत्त मानी जाती है। काव्यशास्त्रियों के अनुसार शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास मौलिक लेखन के लिए आवश्यक है अर्थात् ईश्वरीय शक्ति के साथ-साथ सभा एवं गोष्ठियों में जाना तथा महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का अध्ययन भी आवश्यक माना जाता है।

साहित्य में राजनैतिक विचार लोकतन्त्र की उपज है जो मूलतः आधुनिक काल की देन है । राजनीति किसी भी देश की एक सुसंगठित इकाई मानी जाती है जो नियमों से संचालित होती है तथा जो देश के अन्य जनता को सारे क्रिया व्यापारों को संचालित एवं शासित करतीहैं। चूँकि साहित्यकार इसी जीव जगत् का प्राणी होता है अतः स्वाभाविक ही वह देश एवं समाज की गतिविधियों से आँखें बंद कर नहीं रखता वरन् पूरे होशोहवास में आँखें खुली रखता है और उसकी यही सजगता उसकी रचनाओं में प्रस्फुटित होती है। जब साहित्य में राजनैतिक गतिविधियों का ब्योरा प्रस्तुत किया जाता है तो इसमें दो बातें काम करती हैं । एक तो साहित्यकार उक्त गतिविधियों की कितनी जानकारी रखता है, उन सारी गतिविधियों को वह सिर्फ व्यक्तिवादी सोच से नहीं बल्कि पूरे समाज के परिदृश्य में उसका चित्रण करता है। समाज को वह अपने सृजन के माध्यम से राजनीति के प्रति जाग्रत् करता है, उसकी सोच को परिष्कृत व विकसित करता है तथा समाज व देश हित में कार्य न होने पर वह आक्रोश भी व्यक्त करता चलता है। कहीं सीधे-सपाट तरीके से तो कहीं व्यंग्य के माध्यम से। जहाँ कहीं साहित्य में राजनीति का प्रवेश यदि सीधे-सीधे व्यक्त होने लगता है, जैसे कवि या साहित्यकार कभी-कभी राजनैतिक गतिविधियों को अक्षरशः शब्दों के माध्यम से पूरी प्रक्रिया ही व्यक्त कर देता है वहीं साहित्यकार की सृजनात्मकता क्षीण होने लगती है। सृजनात्मकता में राजनैतिक विचारों का महत्त्व तभी है जब राजनीति सीधे-सपाट तरीके से नहीं, छनकर आये। रचनाकार ऊपर-ऊपर उतराता न रहे बल्कि एक झीने आवरण के नीचे वह जनता को, पाठकों को राजनैतिक अवधारणा व उसका महत्त्व भी बता दे और उसकी सृजनात्मकता भी बची रहे।

2.3.11. बोध प्रश्न

1. राजनीति की भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणा का विवेचन कीजिए।
2. सृजनात्मक क्या है ? स्पष्ट कीजिए।
3. हिन्दी कविताओं में राजनैतिक अवधारणा का विवेचन कीजिए।
4. पाश्चात्य राजनीति एवं सृजनात्मक लेखन पर सारगर्भित टिप्पणी लिखिए।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 2 : सृजनात्मकता के सामाजिक-दार्शनिक आधार

इकाई – 4 : लेखकीय मनोविज्ञान

इकाई की रूपरेखा

2.4.0. उद्देश्य कथन
2.4.1. प्रस्तावना
2.4.2. लेखकीय मनोविज्ञान : वैचारिक पृष्ठभूमि
  2.4.2.1. लेखकीय मनोविज्ञान का अभिप्राय एवं स्वरूप
  2.4.2.2. लेखकीय मनोविज्ञान के घटक
2.4.3. लेखकीय मनोविज्ञान के सैद्धान्तिक आयाम
  2.4.3.1. साहित्य : मिथ्या अनुकृति
  2.4.3.2. विरेचन
  2.4.3.3. कल्पना
  2.4.3.4. प्रभाव-मूल्य
  2.4.3.5. निर्वैयक्तिकता
  2.4.3.6. लोकमंगल
  2.4.3.7. आत्माभिव्यक्ति
  2.4.3.8. लेखन (साहित्य) में वस्तु और रूप
2.4.4. लेखकीय मनोविज्ञान की सीमाएँ
  2.4.4.1. देश-काल व वातावरण
  2.4.4.2. लेखन का व्यावहारिक पक्ष
2.4.5. पाठ-सार
2.4.6. उपयोगी ग्रन्थ-सूची
2.4.7. बोध प्रश्न

2.4.0. उद्देश्य कथन

रचना और लेखकीय मनोविज्ञान का गहरा सम्बन्ध है। प्रत्येक रचना की संकल्पना, सृष्टि और विकास में कृतिकार का मनोविज्ञान अन्तर्निहित रहता है। रचना की पूरी प्रक्रिया के दौरान यह उसके साथ चलता है। प्रस्तुत इकाई लेखकीय मनोविज्ञान पर केन्द्रित है। इस पाठ में लेखकीय मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. लेखकीय मनोविज्ञान की वैचारिक पृष्ठभूमि को जान सकेंगे।
ii. लेखकीय मनोविज्ञान के सैद्धान्तिक आयामों से परिचित हो सकेंगे।
iii. लेखकीय मनोविज्ञान की सीमाओं से अवगत हो सकेंगे।

2.4.1. प्रस्तावना

लेखन के मूल में विचार प्रतिष्ठित रहते हैं। विचार मन में उद्भूत होते हैं किंवा मन विचारों का साधन है। मन स्वभावतः गतिशील है। इसकी गति समूचे ब्रह्माण्ड के किसी भी प्राणी-पदार्थ वा तत्त्व की गति से तीव्रतर है। वेगवान् गरुड़ और पवन भी इसकी तीव्रता की होड़ नहीं कर सकते। ऐसे चंचल एवं नित्य गतिशील मन मेंविचारों की स्थिति होती है। विचार के उत्पन्न होने से लेकर उसके अभिव्यक्त होने तक की पूरी प्रक्रिया में मन के स्वरूप का प्रभाव पड़ता है। यानी कोई भी रचना कृतिकार के मनोविज्ञान की आधारभूमि पर ही अवस्थित होती है।

स्वयं अपने मनोविज्ञान से प्रभावित रचनाकार अपने लेखन में अपनी दृष्टि से मानवीय व्यवहार का विश्लेषण करता है। लेखन की समस्त विधाओं में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में मानवीय मनोभावों का ही उद्भावन किया जाता है। कृतिकार अपने मनोविज्ञान से विकसित दृष्टि द्वारा चेतन-अचेतन क्रिया-प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है और उसे अपनी रचना में प्रस्तुत करता है । एक सुहृद साहित्यकार के लेखन में प्रेम, करुणा, मैत्री, सहानुभूति, परोपकार, दया, परदुःखकातरता, लोक-कल्याण आदि सद्प्रवृत्तियाँ उभर कर सामने आती हैं। लेखक की मानसिकता, उसकी वैज्ञानिक समझ, उसके दायित्वबोध का परिचय उसकी कृति स्वयमेव प्रस्तुत कर देती है। निःसन्देह लेखक की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ उसके मनोविज्ञान को गहरे प्रभावित करती हैं। इसी से समाज मनोविज्ञान, व्यक्ति मनोविज्ञान, व्यावहारिक मनोविज्ञान, बाल मनोविज्ञान आदि की तरह लेखकीय मनोविज्ञान का अध्ययन भी मानवीय एवं सामाजिक परिस्थितियों के अन्तर्गत किया जाता है।

2.4.2. लेखकीय मनोविज्ञान : वैचारिक पृष्ठभूमि

लेखन प्रकृति-प्रदत्त प्रेरणा है। मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इसका प्रस्फुटन हुआ। मानवीय जीवन-दर्शन, मनोविज्ञान एवं व्यवहार में लेखन को अन्तःसूत्रों में गूँथकर काल्पनिक सृष्टि द्वारा आह्लाद और उत्साह से रागात्मक वृत्तियों को परितृप्त किया गया। लेखन-प्रक्रिया मन और स्वभाव का विस्तार है इसलिए जिन बातों का प्रभाव मानव के स्वभाव और जीवन पर पड़ता है, उसका प्रभाव लेखन पर भी पड़ता है। लेखन के अनेक रहस्यों की गुत्थियाँ लेखकीय मनोविज्ञान का अध्ययन करने से सुलझ सकती हैं । रचना में लेखक की सम्वेदना, बिम्ब, संवेग आदि के अनुभव का ज्ञान निहित होता है, वहीं लेखकीय मनोविज्ञान लेखक के मन के तन्त्रबद्ध और सामंजस्यपूर्ण ज्ञान को उद्घाटित करता है। कोई भी लेखन एक मायने में कृतिकार के चेतन-अचेतन मन का ही प्रस्तुतीकरण है जो लेखकीय मनोविज्ञान के अवचेतन की पवित्र गहराइयों व तहों के गुप्त रहस्यों का आविष्कार है।

2.4.2.1. लेखकीय मनोविज्ञान का अभिप्राय एवं स्वरूप

मानवीय सभ्यता का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव मन के विकास का इतिहास। इसी विकास के साथ जुड़ी है, सोच, समझ तथा ज्ञान की परिवर्तित यात्रा। मनोभाव की अभिव्यक्ति के रूप में ही लेखन के विभिन्न विधाओं का प्रसार होता है, चाहे किसी भी देश या क्षेत्र विशेष का व्यक्ति क्यों न हो, उसे सुख-दुःख,

आह-कराह, आमोद-प्रमोद आदि का अनुभव तो होता ही है। लेखक अपने मनोभावों को कविताओं, कथाओं, गीतों, लोकोक्तियों आदि के रूप में प्रकट करता है। यह मानव जीवन पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव का ही सुफल है। समय तथा काल की गतिविधियाँ मानव के मनोजगत् को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार लेखन और मनोविज्ञान एक दूसरे की परिपूर्ति करते हैं। वे मानव मन को स्वस्थ, सक्रिय और सुसंस्कृत बनाते हैं। इसी से मानव समाज व्याधिरहित होकर स्वस्थ जीवन जीने का प्रयत्न करता है। लेखकीय मनोविज्ञान जीवन के उन रहस्यों का उद्घाटन करता है जहाँ आनन्दमय नैसर्गिक संगीत निहित है। अपनी रचनात्मक प्रतिभा के माध्यम से लेखक जन सामान्य के मनोभावों का अध्ययन करके उसे साहित्य के रूप में परिणत कर देता है जो मनोविज्ञान के अधिक निकट होता है। इस आलोक में साहित्यकार एवं आलोचक प्रो॰ श्याम कश्यप का कथन उल्लेखनीय है कि "कोई भी विधा हो, लेखन में हृदय की कोमलवृत्तियों के मधुर उद्गारों के रूप में जीवन के सर्वांगीण चित्रण का अथक प्रयास शामिल होता है जिसमें काल्पनिक सृष्टि व लेखकीय-मनोविज्ञान के लिए पर्याप्त अवसर होते हैं। एक अर्थ में तो मनोविज्ञान मानव-मस्तिष्क के बौद्धिक व्यापारों का सत्यस्वरूप भी होता है, लेकिन एक रचनाकार अपनी कृति में जीवन के सत्य कलात्मकता के भव्य रूपों को उद्घाटित करने का प्रयास करता है, जबकि विशुद्ध मनोविज्ञान में नग्न, कुत्सित एवं घृणित रूप को भी प्रकट करने की गुंजाइश होतीहै।"

मानवीय मूल्यबोध के प्रति लेखकीय मनोविज्ञान की प्रतिबद्धता की पुष्टि करते हुए डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवाल का कहना है – "साहित्यिक-लेखन की विभिन्न विधाओं में एक अनोखी एकरूपता देखी जा सकती है जहाँ सनातन जीवन मूल्यों का निर्धारण ही मुख्य प्रतिपाद्य है इसलिए भावात्मक एकता व सांस्कृतिक मूलधारा की सुदृढ़ भूमि से लेखकीय मनोविज्ञान पृथक् नहीं हो सकता है। लेखकीय मनोविज्ञान किसी भी समसामयिक घटना के प्रति बहुत सम्वेदनशील होता है तथा मानवीय मूल्यबोध को उसमें महसूस किया जा सकता है। लेखकीय चिन्तन एवं व्यवहार अपनी कतिपय सीमाओं के बावजूद मानव समाज की सम्वेदनाएँ, जीवन की सघन अनुभूतियों की अनुगूँज को अपनी प्रकृति अवस्था में होते हुए भी मानव जीवन की अनुकरणीय परम्परा हेतु छोड़ जाती है।"

2.4.2.2. लेखकीय मनोविज्ञान के घटक

मानव जीवन-मूल्य किसी वैचारिक क्रान्ति का परिणाम नहीं है अतः लेखकीय मनोविज्ञान को केवल किसी वैचारिक क्रान्ति व उसके परिणाम तक सीमित नहीं किया जा सकता है। लोकसंस्कृति से उपजे मानवीय मूल्य बाद में उसी के रक्षक भी बन जाते हैं। किसी भी देश की संस्कृति का सच्चा प्रतिबिम्ब वहाँ के मानव-मूल्य ही होते हैं। वस्तुतः ये मूल्य ही साहित्य, दर्शन और मानवीय संस्कृति के प्रणेता हैं जो युगबोध की विस्तीर्णता तक दिशा देते हैं। इनका बोध लेखकीय मनोविज्ञान का नियमन और संचालन करता है और सृजन की दृष्टि देता है। यह सृजनात्मकता ही जीवन-मूल्य है।

मनोविज्ञान की मूलभूत अवधारणा में मस्तिष्क की प्रायः तीन स्थितियाँ होती हैं – चेतन, अवचेतन और अचेतन। इनमें अचेतन सर्वशक्तिशाली होता है। प्रो॰ कान्तिकुमार जैन के शब्दों में "जिस प्रकार तैरते हुए

हिमखण्ड का एक भाग ऊपर दिखाई पड़ता है और सात भाग पानी के नीचे होता है, ठीक उसी प्रकार मानव व्यक्तित्व का एक अंश चेतन धरातल पर तथा सात अंश अचेतनमें होता है। अचेतन में व्यक्तित्व को निर्मित करने वाली शक्तियाँ कार्यशील रहती हैं।" वास्तव में अचेतन अवस्था में विभिन्न आदिवासनाएँ होती हैं जिन्हें 'चेतन' धरातल पर व्यक्ति कभी भी यथावत स्वीकार नहीं करता है। शिवप्रसाद सिंह के अनुसार "बुद्धि तो सामाजिक विधि-निषेधों पर ही विचार करती है और उसके अनुरूप अचेतन से चेतन धरातल पर आती हुई इच्छाएँ स्वीकृत-अस्वीकृत होती रहती हैं। इस अनुक्रम में जो कामनाएँ अस्वीकृत हो जाती हैं, वे लौटकर पुन: 'अवचेतन' में चली जाती हैं। कभी-कभी तो ये निरस्त इच्छाएँ ग्रन्थियों का रूप ले लेती हैं, ऐसी दशा में अपनी प्रतिक्रिया के रूप में ये जिन सम्वेदनाओं को चेतन धरातल पर प्रेषित करती हैं, वे मानसिक रोग का रूप धारण कर लेती हैं।"

मनोवैज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि यदि 'अचेतन' से आती हुई आदिम व्यवहारों (वासनाओं) को उदास नहीं बनाया गया तो वे कभी-न-कभी प्रतिक्रिया अवश्य करती हैं। यह प्रतिक्रिया एक समान न होकर भिन्न-भिन्न रूपों में हो सकती हैं। लेखकीय मनोविज्ञान के आलोक में इस 'प्रतिक्रिया' के दो धरातल होते हैं – प्रथम, ये प्रतिक्रियाएँ सीधे चेतन धरातल पर जाती हैं जिनका प्रभाव अनजाने व्यक्ति के विचार एवं व्यवहार पर पड़ता है तथा दूसरे, ये प्रतिक्रियाएँ 'अवचेतन-धरातल' पर ही कार्यान्वित होती हैं जो कि प्रतिक्रियात्मक सम्वेदनाएँ 'स्वप्न-चित्रों' का निर्माण करती हैं।

मनोवैज्ञानिकों का एक वर्ग यह भी मानता है कि मनोविज्ञान का अध्ययन एवं विश्लेषण कहीं-न-कहीं केवल व्यक्ति मन के अन्तरंग विवेचन में ही उलझा रहता है तथा बाह्य जगत् से वह अपना ध्यान हटाकर केवल अन्तर्जगत् की समस्याओं से जूझता रहता है। सच तो यह है कि व्यक्तित्व के निर्माण में केवल 'अचेतन' मन की ही भूमिका महत्त्वपूर्ण नहीं होती है, अपितु बाह्य जगत् से प्राप्त संस्कार भी चिन्तन एवं व्यवहार में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। वैसे यह भी सच है कि मनोविज्ञान 'मन की शक्ति' को पहचानता है और व्यक्ति के विचारों तथा व्यवहारों का सतही मूल्यांकन न करके उनकी गहराई में छानबीन करता है। यही उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। मनोविज्ञान यह भी सिखाता है कि बाहर जो नहीं दिखाई पड़ रहा है, वह अपने मूल रूप में वैसा ही नहीं है और यदि उसके अवचेतन का अध्ययन व विश्लेषण करते हुए हम उसके व्यवहारों, विचारों के मूल तक पहुँचने में कामयाब हो जाते हैं तो स्थितियों का सही-सही अवलोकन एवं निर्धारण कर सकते हैं।

कोई भी लेखन, चाहे वह लोक समुदाय के द्वारा ही क्यों न निस्सृत हुआ हो, मूल्य-विरहित और चिन्तनविहीन नहीं हो सकता। चिन्तन से विचार बनते हैं, विचारों से धारणाओं का जन्म होता है तथा धारणा से मूल्यों का निर्माण होता है। मूल्य से ही उसकी एक विशिष्टता, गरिमा और परम्परा का बोध होता है। 'मूल्य' नितान्त नये नहीं होते प्रत्युत अनेकानेक जाँच व परख के बाद ही मूल्य रूप में स्वीकृत होते हैं इसलिए लेखकीय मनोविज्ञान में 'मूल्य' विवेचन का महत्त्व बढ़ जाता है। इस सन्दर्भ में डॉ॰ विष्णु कुमार अग्रवाल का कथन उल्लेखनीय है कि "साहित्यिक-लेखन में हमारे उच्च आदर्शों एवं मूल्यों की वह थाती सनातन रूप से उपस्थित है जिसके ठोस व मजबूत आधार पर आदर्श समाज व्यवस्था तथा सम्प्रभु राष्ट्र सुरक्षित है। लेखकीय मनोविज्ञान में कोई-न-कोई मानव मूल्य दृष्टिगत हो ही जाता है। आचरण के श्रेष्ठत्व से समन्वित उदात्त प्रेरणा या सन्देश ही

जीवन-मूल्य कहलाते हैं। ये हमारे लिए पालनीय एवं करणीय होते हैं तथा उसके परिणामस्वरूप हमारा जीवन संतुलित, संयमित, मर्यादित, नियन्त्रित और आदर्शित बना रहता है। उनके अनुपालन से जीवन निर्विकार, निर्दोष और दूसरों के लिए उपयोगी बनता है।" इस प्रकार लेखकीय विचार हमारे जीवन को पारदर्शी एवं सुचितामूलक बनाते हैं।

2.4.3. लेखकीय मनोविज्ञान के सैद्धान्तिक आयाम

मनुष्य का आन्तरिक जीवन ही उसके बाह्य जीवन का अभिप्रेरक और परिचालक है। अन्तर्मन के अतल में दबी हुई प्रवृत्तियाँ वैयक्तिक जीवन को ही नहीं अपितु सामूहिक जीवन को भी प्रभावित करती हैं। मानव के वैयक्तिक एवं सामाजिक आचरण की मूल परिचालिका शक्ति उसकी अवदमित प्रवृत्तियों को मानना चाहिए। मनोवैज्ञानिक सिग्मंड फ्रायड ने कला अथवा साहित्य (लेखन) को अवचेतन मन की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में समस्त कला सृजन के मूल में रचनाकार की दमित और कुण्ठित कामवृतियाँ कारगर होती हैं। वे काम-भावना को मानव मन की मूल परिचालिका शक्ति मानते हैं। रचनाकार अथवा कलाकार कल्पनाशील होने के कारण अपनी वर्जनाओं को काम-प्रतीकों के रूप में अभिव्यक्ति देता है। विभिन्न वर्जनाओं के कारण भावनाएँ रचनाकार के अवचेतन मन में दबी हुई पड़ी रहती हैं। उचित अवसर आने पर साहित्य या कला के माध्यम से उन्हें सार्थक अभिव्यक्ति मिलती है। कलाकार अथवा रचनाकार अपनी प्रतिभा के द्वारा अपनी अतृप्त वासनाओं को इस प्रकार का छद्म रूप देता है कि वे समाज की दृष्टि में ग्राह्य हो जाती हैं। रचनाकार की रचना में पाठक वा दर्शक अपनी दमित वासनाओं एवं भावनाओं की सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति देखते हैं। इसी कारण वह कला अथवा कृति उन्हें सौन्दर्य और आनन्द प्रदान करती है। फ्रायड यह भी मानते हैं कि चेतन और अचेतन में निरन्तर द्वन्द्व चलता रहता है। चेतन और अचेतन के मध्य एक अर्द्धचेतन की भी दशा होती है।

फ्रायड के विपरीत प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एडगर कला का मूल काम-प्रवृतियों में न देखकर व्यक्ति के 'हीनता-भाव' में देखते हैं। उनका मानना है कि हीनता की अनुभूति मनुष्य के मन में अहं भाव को जन्म देती है और इससे परिचालित होकर वह अपने महत्त्व को अनुभव करने एवं कराने की आवश्यकता महसूस करते हुए तदनुसार आचरण एवं व्यवहार करता है। उनके अनुसार रचनाकार सामाजिक दृष्टि से एक दुर्बल व अनुपयोगी प्राणी होता है। 'कला-सृजन' के द्वारा वह एक तरह से अपनी उपयोगिता व महत्त्व को प्रमाणित करने का प्रयास करता है। इस परिप्रेक्ष्य में विचारक कार्ल युंग कला के मूल में एक प्रकार का द्वन्द्व स्वीकार करते हैं जहाँ एक स्तर पर उसे (कलाकार) अपनी वैयक्तिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अभिप्रेरित करता है, वहीं दूसरे स्तर पर सम्पूर्ण मानवता के अभिलाषाओं की तुष्टि हेतु सर्जना के लिए उत्प्रेरित करता है। उनकी स्थापना है कि मनुष्य की स्मृतियाँ मानसिक कार्य-व्यापार को चेतन मन में एकत्र नहीं रख पाती हैं तथा वे अचेतन में चली जाती हैं। अचेतन मन में दमित रहने वाली अनुभूतियाँ, स्मृतियाँ एवं विचार अहं को स्वीकार्य नहीं हो पाते, इसलिए वहाँ भय, आशंका, मृत्यु जैसी दशा पैदा हो जाती हैं जिससे व्यक्ति का जीवन प्रभावित होता है। इस प्रकार युंग कला के मूल में व्यक्ति मन के अवचेतन की स्थिति को को स्वीकार न कर 'सामूहिक अवचेतन' को स्थापित करते हैं, जिसका सम्बन्ध प्राणीमात्र से है।

2.4.3.1. साहित्य : मिथ्या अनुकृति

पाश्चात्य विचारक प्लेटो का मानना है कि 'काव्य' (लेखन) मिथ्या जगत् की मिथ्या अनुकृति है। कवि या लेखक जिन वस्तुओं या व्यक्तियों की अनुकृति करता है, वे पहले से ही भौतिक जगत् में मौजूद हैं। यह अनुकृति मिथ्या एवं भ्रामक है, क्योंकि अनुकरण कभी भी पूर्णरूपेण सम्भव नहीं है। जिन वस्तुओं की अनुकृति रचनाकार अपने लेखन में करता है, उनका सत्य रूप तो केवल 'विचार' रूप में अलौकिक जगत् में ही है। ऐसी मनोदशा में रचनाकार केवल नकल की नकल करता है। कवि अथवा लेखक की रचना लोगों का कोई उपकार नहीं करती, क्योंकि कलाकार या रचनाकार कला अथवा रचना से सर्वथा अनभिज्ञ होते हुए भी उसके कार्यों को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि सरल प्रकृति के लोग उसे वास्तविक समझने की भूल कर बैठते हैं। कला अथवा रचना को केवल 'अनुकृति' मानना प्लेटो के पूर्वाग्रह एवं दूषित चिन्तन को अभिव्यक्त करता है।

केवल 'उपयोगितावाद' को महत्त्व देना पशुधर्म है। मानव पशु नहीं है, इसलिए वह उपयोगिता के अतिरिक्त सौन्दर्य-बोध एवं आनन्द को अधिक महत्त्व देता है। इससे उसे मानसिक तुष्टि मिलती है। इस दृष्टि से प्लेटो का चिन्तन प्रभावी नहीं कहा जा सकता है। कला अथवा रचना में मनोरंजन के साथ-साथ जो नैतिकता का पक्ष है, वह किसी से छिपा नहीं है। लेखन 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' से समन्वित होता है अतः लेखन की स्थिति हर समाज में हमेशा से है और हमेशा रहेगी। लेखन से भावनाओं का जो उद्वेलन होता है, वह भी किसी प्रकार अहितकर नहीं है। लेखन की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि "कविता (लेखन) भाव प्रसार करती है और यह भावयोग ज्ञानयोग के समकक्ष है।"

2.4.3.2. विरेचन

प्लेटो के अनुसार करुणा, त्रास आदि भाव मन को दुर्बल बनाते हैं। प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने इस विचार का खण्डन करते हुए यह मत स्थापित किया कि ये भाव मन को दुर्बल न बनाकर उसे शुद्ध करते हैं। उससे मन और आत्मा दोनों का परिष्कार होता है। इस दृष्टि से लेखकीय मनोविज्ञान के अध्ययन एवं विश्लेषण हेतु अरस्तूके विचार महत्त्वपूर्ण हैं। 'मन' और 'आत्मा' के शुद्धिकरण के लिए अरस्तू ने 'विरेचन' शब्द का प्रयोग किया है। 'विरेचन' चिकित्साशास्त्र का शब्द है जिसका सामान्य अर्थ औषधियों के द्वारा शारीरिक विकारों की शद्धि व परिष्कार हेतु किया जाता है। अरस्तू ने अपने 'राजनीति' तथा 'काव्यशास्त्र' नामक ग्रन्थों में 'विरेचन' सिद्धान्त का उल्लेख किया है।

विद्वानों ने अरस्तू के 'विरेचन' की व्याख्या मूलतः तीन बिन्दुओं पर की है – पहला, धर्मपरक; दूसरा, कलापरक और तीसरा, मनोवैज्ञानिक। 'विरेचन' की मनोवैज्ञानिक व्याख्या इस मायने में महत्त्वपूर्ण है कि त्रासदी में करुणा, त्रास आदि मनोभावों की जागृति से विरेचन प्रक्रिया द्वारा प्रेक्षक के मन की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। घुटन एवं भ्रान्तियाँ दूर हो जाती हैं। साथ ही अवचेतनगत भावों का चेतनगत उचित निष्कासन परितृप्ति व सुख-शान्ति का हेतु बनता है। मानसिक संतुलन और स्वास्थ्य की सिद्धि होती है। यही मानसिक शुद्धि 'विरेचन' है।

जर्मन विद्वान् वारनेज के अनुसार "मानव मन के अनेक विकार वासना के रूप में स्थित होते हैं। उन्हें पूर्णतया दमित करने के बदले संतुलित करना वांछनीय है। उनमें करुणा एवं त्रास नामक मनोवेग मूलतः दुखद होते हैं। त्रासदी रंगमंच ऐसे दृश्य प्रस्तुत करती है जिसमें ये मनोवेग अतिरंजित रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। उन्हें देखकर ये भाग पहले तो उद्वेलित होते हैं, उसके उपरान्त उपशमित हो जाते हैं। प्रेक्षक त्रासदी देखकर मानसिक शान्ति का सुखद अनुभव करता है क्योंकि उसके मन में वासना रूप में स्थित करुणा और त्रास आदि मनोवेगों का दंश समाप्त हो जाता है।" इस प्रकार विरेचन एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें मनोविकारों के उत्तेजना के बाद उद्वेग का शमन होता है और तज्जन्य मानसिक विशदता से भावात्मक रुग्णता दूर हो जाती है।

2.4.3.3. कल्पना

रचनाकार प्रकृति की नकल न करके अपनी भावना के अनुसार उसका पुनर्सृजन करता है जिससे उसे आत्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है। जो भाव तत्त्व-जगत् से लेखक की चेतना में आते हैं, वह अपनी भावना के अनुसार उनका एकीकरण करता है। वह प्रकृति को और भी अधिक सुन्दर रूप में अभिव्यक्त करता है। कल्पना के द्वारा रचनाकार किसी वस्तु के अपूर्ण नमूनों को पकड़कर उसकी पूर्णता के स्वरूप तक पहुँच जाता है। काव्यशास्त्र के पाश्चात्य विचारक सैम्युअल टेलर कॉलरिज कहते हैं कि "कलाकार कुछ विवरणों को छोड़ता है, कुछ नये जोड़ता है और वस्तु के परिवर्तित रूप की कल्पना कर लेता है। कल्पना द्वारा निर्मित वस्तु का यह परिवर्तित रूप रचनाकार को सन्तोष एवं सुख प्रदान करता है।"

इस प्रकार लेखकीय मनोविज्ञान के आलोक में 'कल्पना' कहीं-न-कहीं विभिन्न तत्त्वों का एकीकरण करने वाली शक्ति है जो विरोधों का सामंजस्य करती है वा उनके मध्य संतुलन स्थापित करती है। लेखन-प्रक्रिया में 'कल्पना' ससीम-असीम, समानता-असमानता, सामान्य-विशिष्ट, विचार-बिम्ब, नये-पुराने, विवेक-संयम, उत्साह-उत्तेजना का सामंजस्य स्थापित करती है। कॉलरिज स्पष्ट करते हैं कि कल्पना की व्यापक प्रक्रिया की शक्ति अलौकिक है; वह समष्टि मानस की प्रतिनिधि है; उस ईश्वरीय सत्ता में यह दृश्यजगत् भी उद्घाटित होता है। समष्टि मानस से ही दृश्यजगत् का उत्सरण होता है। व्यष्टि मानस (लेखक का हृदय) इसी समष्टि मानस को अपने भीतर समेटता है। समष्टि मानस इस दृश्यजगत् को साकार करता है और इस प्रकार रचनाकार की कल्पना में विषय और विषयी या मन और प्रकृति का समाहार होता है।

2.4.3.4. प्रभाव-मूल्य

सर्वाधिक मूल्यवान् क्या है ! वास्तव में जो मनुष्य के प्रवृत्तिमूलक उद्वेगों की संतुष्टि करे, वही मूल्यवान् है, क्योंकि वह उसके मन की विविध माँगों की संतुष्टि करता है। वैयक्तिक तथा सामाजिक रूप से जीवन का मूल्य माँगों की संगतिपूर्ण व्यवस्था पर निर्भर करता है। लेखन का मूल्य इसमें है कि वह पाठक के उद्वेगों में संगति और संतुलन स्थापित करे। इस प्रकार रचना भौतिक वस्तुओं से कहीं अधिक मूल्यवान् है। इस सन्दर्भ में पाश्चात्य विचारक आई. ए. रिचर्ड्स ने काव्यकला (लेखन) का जीवन-मूलक मूल्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार किया है।

उन्होंने विशुद्ध-भ्रम स्वीकार करते हुए काव्य को जीवन से जोड़ने का प्रयास किया है। उनकी दृष्टि में काव्य-रचना (लेखन) एक मानवीय प्रक्रिया है। उसके मूल्य का मान नहीं होना चाहिए जो अन्य मानवीय क्रियाओं का होता है।

रिचर्ड्स का मानना है कि कृति में प्रभाव-मूल्य सम्बन्धी धारणाओं का सम्बन्ध मानसिक उद्वेगों से है जिसके दो रूप हैं – प्रवृत्तिमूलक (भूख, तृष्णा, वासना आदि) तथा निवृत्तिमूलक (घृणा, निर्वेद, वितृष्णा आदि)। रिचर्ड्स की स्पष्ट धारणा है कि जो प्रवृत्तियाँ किसी अनुभव या मानसिक क्रिया द्वारा की जाती हैं, वास्तव में वे ही मूल्यवान् हैं। किसी अनुभव का मूल्य उसके उत्तरकालीन प्रभाव द्वारा आँका जाता है। 'प्रभाव-मूल्य' को स्थापित करते हुए रिचर्ड्स ने कहा है – "कलाकार अथवा रचनाकार की अनुभूतियों में कम से कम अनुभूतियों में जो उनकी रचना (लेखन) को मूल्यवान् बनाती है, ऐसे आवेगों का सामंजस्य लक्षित होता है जो अधिकांशतः लोगों के मन में परस्पर अन्तःमूर्त, अस्त-व्यस्त तथा छन्दभूत हुआ करते हैं।" इस प्रकार जो लेखन श्रोता या पाठक के मन को जितना अधिक प्रभावित कर सकता है, वह उतना ही श्रेष्ठ एवं उदात्त माना जाएगा। अतः रचनाकार को ईमानदार व आत्मसमर्पण के भावों से युक्त होना चाहिए।

2.4.3.5. निर्वैयक्तिकता

लेखन का कार्य आत्मनिरपेक्ष होता है। इस विचार से प्रभावित होकर पाश्चात्य विचारक टी. एस. एलियट अनेकता में एकता बाँधने के लिए परम्परा को अत्यावश्यक मानते हैं जो कि वैयक्तिकता का विरोधी है। हालाँकि, उन्होंने साहित्य (लेखन) के जीवन्त विकास के लिए परम्परा का योग स्वीकार किया है जिसके परिणामस्वरूप किसी रचना में आत्मनिष्ठ तत्त्व नियन्त्रित हो जाता है और वस्तुनिष्ठ प्रमुख हो जाता है। उनकी स्थापना है कि "कवि (रचनाकार) व्यक्तिगत की अभिव्यक्ति नहीं करता, अपितु वह विशिष्ट माध्यम मात्र है। व्यक्तिगत भावों की अभिव्यक्ति कला नहीं है, वरन् उनसे पलायन कला है। कालान्तर में 'निर्वैयक्तिकता' को स्पष्ट करते हुए उन्होंने यह विचार प्रकट किया है कि निर्वैयक्तिकता के दो रूप होते हैं, एक वह जो कुशल शिल्पी मात्र के लिए प्राकृतिक होती है, दूसरा वह है जो प्रौढ़ कलाकार के द्वारा अधिकाधिक उपलब्ध किया जाता है। दूसरे प्रकार की निर्वैयक्तिकता उस प्रौढ़ रचनाकार की होती है जो अपने उत्कट और व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से सामान्य सत्य को अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है।

2.4.3.6. लोकमंगल

'चिन्तामणि' के प्रथम भाग में भावों और मनोविकारों की जो व्याख्या आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रस्तुत करते हैं, उनका सम्बन्ध सुख और दुःख दोनों ही क्षेत्रों में सम्बन्ध रखने वाले भावों तथा मनोविकारों से है। मानव जीवन की पूर्णता वे दोनों प्रकार के भावों के साथ उसके साहचर्य में देखते हैं। एकांगी दृष्टिकोण का उन्होंने सदैव विरोध किया है। उनका विचार है कि अनुभूतियों का क्षेत्र जितना अधिक व्यापक होता जाता है, कविता उतनी ही व्यापक और गम्भीर होती जाती है। 'चिन्तामणि' प्रथम भाग में 'रसात्मक बोध के विविध रूप' शीर्षक निबन्ध में

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि "संसार सागर की रूप तरंगों से ही मनुष्य की कल्पना का निर्माण और इसी की रूप गति से उसके भीतर विविध भावों या मनोविकारों का विधान हुआ है। सौन्दर्य, माधुर्य, विचित्रता, भीषणता, क्रूरता इत्यादि की भावनाएँ बाहरी रूपों और व्यापारों से निष्पन्न हुई हैं। हमारे प्रेम, भय, आश्चर्य, क्रोध, करुणा इत्यादि भावों की स्थापना करने वाले मूल आलम्बन बाहर ही के हैं, जब हमारी आँखें देखने में प्रवृत्त रहती हैं, तब रूप हमारे बाहर प्रतीत होते हैं, जब हमारी वृत्ति अन्तर्मुखी होती है, तब रूप हमारे भीतर दिखायी पड़ते हैं; बाहर-भीतर दोनों ओर रहते हैं रूप ही।"

आचार्य शुक्ल के अनुसार सच्चा कवि वह है जो जीवन की इस विविधता के बीच मानव जाति के (सामान्य) हृदय को देख लेता है। उनकी दृष्टि में सच्चा कवि वही है जिसे लोकहृदय की पहचान हो जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके। लोक में आनन्द और मंगल की साधनावस्था को लेकर चलने वाले कवियों को ही आचार्य शुक्ल पूर्ण कवि की संज्ञा प्रदान करते हैं। उन्होंने करुणा और प्रेम को मंगल का विधान करने वाले दो प्रमुख भाव माना है। उदाहरणार्थ वे तुलसीदास को सूर से अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। कहना गलत न होगा कि उनकी इस मनोस्थिति के पीछे वस्तुतः तुलसी के काव्य में लोकमंगल की प्रधानता ही है। जिसमें हित की भावना समाहित हो वही साहित्य है। तुलसी के राम असुरनिकन्दन हैं और भव-भयभंजन हैं। वे जब-जब धर्म की हानि होते देखते हैं अथवा अधम असुरों को बढ़ते देखते हैं, तब-तब मनुज शरीर धारण करके सज्जनों का दुःख दूर करते हैं, यही रचना का लोकमंगल है।

इस दृष्टि से लेखन की भावभूमियाँ बहुत विस्तार लेकर चलती हैं। जिस प्रकार जगत् अनेक रूपात्मक है, उसी प्रकार हमारा मानस भी अनेक भावात्मक है। आचार्य भगीरथ मिश्र कहते हैं कि "वैसे लेखकीय मनोविज्ञान के तहत रचनाकार का स्वभाव प्रायः आवेगमय प्रतीत होता है, लेकिन वह आवेग कहीं-न-कहीं सोचों के, विचारों के दबावों से उत्पन्न हुआ होता है। ऐसे में लेखकीय आवेग का व्यक्तिगत होना तभी सार्थक होता है, उसकी गतिशीलता व चैतन्यता तभी प्रासंगिक होती है, जब उसका लेखकीय प्रेरणास्रोत व्यापक चिन्ताओं को, मानवीय जगत् की सम्वेदनाओं को स्पर्श करता हो।"

2.4.3.7. आत्माभिव्यक्ति

लेखन का मानव-जीवन से चिरन्तन सम्बन्ध है। मानव-जीवन ही लेखन (साहित्य) का उपादान और विषयवस्तु है। इस प्रकार लेखन (साहित्य) से आशय है, 'विकासशील मानव-जीवन के महत्त्वपूर्ण या मार्मिक अंशों की अभिव्यक्ति।' लेखकीय-मनोविज्ञान की सैद्धान्तिकी में 'आत्माभिव्यक्ति' एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आयाम है। इस सन्दर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन उल्लेखनीय है – "मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ, जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गतिहीनता और परमुखापेक्षा से बचा न सके जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुःखकातर और सम्वेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।"

एक रचनाकार आत्माभिव्यक्ति से लेकर सम्पूर्ण मानव जीवन को अपने में समेटे बोध को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। अपने लेखन में वह सम्पूर्ण अनुभूतियों, सम्वेदनाओं, विचारों और भावनाओं को सम्प्रेषित करता है। डॉ॰ नगेन्द्र कहते हैं कि 'आत्माभिव्यक्ति' ही वह मूल तत्त्व है जिसके कारण कोई व्यक्ति साहित्यकार व उसकी कृति साहित्य बन पाती है। अपनी धारणा को अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि "साहित्य (लेखन) मूलतः हृदयव्यापी है और इसका माध्यम अनुभूति है। मानवमात्र के हृदय में देश-काल की सीमा का अतिक्रमण करता हुआ राग का तार अनुस्यूत है। रागात्मक धरातल पर जीवन के सभी स्थूल भौतिक भेद मिट जाते हैं। यह शुद्ध, शाश्वत मानवीय धरातल पर साहित्य का सहज धरातल है। मानव अपने अन्तरतम रूप में जो है, वही साहित्य का विषय है। यहाँ मनुष्य न नीतिवादी है, न बुद्धिवादी प्रत्युत वह विशुद्ध रागात्मक है। इसी से साहित्य का सम्बन्ध है।"

2.4.3.8. लेखन (साहित्य) में वस्तु और रूप

वस्तु और रूप के महत्त्व पर विचार करते हुए डॉ॰ रामविलास शर्मा कहते हैं कि "कला और विषयवस्तु दोनों समान रूप से साहित्य-रचना के लिए निर्णायक महत्त्व के नहीं हैं, निर्णायक भूमिका हमेशा विषयवस्तु की होती है।" उनकी दृष्टि में जिसके पास उच्च कोटि के विचार नहीं हैं, भावावेश नहीं हैं, यथार्थ का गहरा ज्ञान नहीं है, वह सिर्फ कला निखारने के सन्दर्भ में उत्कृष्ट साहित्य नहीं रच सकता। वस्तुतः कला का रूप हवा में नहीं निखरता, अपितु फूल के रंग-रूप के लिए जिस तरह धरती की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार कलात्मक कृति का सौन्दर्यात्मक निखार उसकी विषयवस्तु की सामाजिकता से जुड़ा हुआ होता है। मुक्तिबोध भी इसी भावभूमि पर अपने मनोवैज्ञानिक चिन्तन को सक्रिय करते हैं। डॉ॰ रामविलास शर्मा का अभिमत है कि लेखन में रूप अपनी दशा के लिए प्रायः तत्त्व पर ही अवलम्बित होता है और तद्दशा अपने प्रकट होने की प्रक्रिया में रूप निर्धारित एवं विकसित करता है।

लेखन (रचना) में वस्तुतत्त्व निश्चित रूप से रूपतत्त्व की अपेक्षा केन्द्रीय या प्रधान है; परन्तु रूपतत्त्व की उपेक्षा या अवहेलना कदापि सम्भव नहीं है। जिन कृतियों में स्थूल रूप से वस्तुजगत् की यथार्थता का नियोजन किया जाता है, वे कृतियाँ उल्लेखनीय हो जाती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में डॉ॰ नामवर सिंह लिखते हैं कि किसी भी रचना में विषय या वस्तु की प्रमुखता के नाम पर यदि किसी विचारधारा अथवा दल का अनुकथन मात्र किया गया है, तो वह वांछित नहीं है; ऐसा काव्य वस्तुप्रधान काव्य नहीं माना जाएगा।

2.4.4. लेखकीय मनोविज्ञान की सीमाएँ

महान् रचनाकारों की प्रासंगिकता प्रत्येक युग में बनी रहती है। लेखन में विषयवस्तु, शैली, भाषा-रूप आदि बदल जाते हैं परन्तु महान् रचनाकारों के लेखन का विषय जिन उल्लेखनीय तथ्यों एवं समस्याओं का दर्शन कराता है उसकी प्रासंगिकता कभी समाप्त नहीं होती क्योंकि वे सत्य मानव-जीवन के मूलभूत सत्य होते हैं। लेखकीय मनोविज्ञान की सीमाओं को झुठलाया नहीं जा सकता है। देश-काल व वातावरण, परम्परा और

आधुनिकता का द्वन्द्व, वर्गीय आधार सहित लेखन के कई ऐसे व्यावहारिक पक्ष भी हैं जिनके आधार पर एक रचनाकार अपने लेखन की भावभूमि तैयार करता है।

2.4.4.1. देश-काल व वातावरण

लेखकीय मनोविज्ञान के बनने में सदियों की परम्पराएँ, विश्वास, मान्यताएँ तथा भौगोलिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तत्त्व अपनी अहम भूमिका निभाते हैं। वस्तुतः देश-काल व वातावरण ही वह बिन्दु है जिसके अन्तर्गत एक रचनाकार अपने लेखन-कार्य को निष्पादित करता है। अज्ञेय कहते हैं कि "जीवन-पद्धति और युग-सन्दर्भ बदलने के साथ-साथ लेखकीय मनोविज्ञान, लेखन का स्वरूप, उसकी परख तथा पहचान के प्रतिमानों का बदलना भी आवश्यक है। उनकी दृष्टि में प्रत्येक रचनाकार का अपना एक सत्य होता है जो युग के बदलने के साथ-साथ बदल जाया करता है। अतः लेखकीय मनोविज्ञान का विवेचन देश-काल व वातावरण को केन्द्र में रखकर होना चाहिए।"

किसी भी रचना की प्रसिद्धि और उसकी अमरता का मूल कारण उसके रचयिता के लोकसंसक्ति होती है। इस सन्दर्भ में महादेवी वर्मा का कहना है कि "सच्चा रचनाकार लोकहृदय को पहचाने बिना नहीं हो सकता और जो लोकहृदय को पहचानता है, वही अमर होता है, जनता उसी को जीवित रखती है।" लेखन के उद्देश्य की व्यापक चर्चा करते हुए उनका कथन है कि "साहित्य (लेखन) का मूल उद्देश्य समाज के अनुशासन के बाहर स्वच्छन्द मानव स्वभाव में उसकी मुक्ति को अक्षुण्ण रखते हुए समाज के लिए अनुकूलता पैदा करना होता है। हमारी मानसिक वृत्तियों की ऐसी सामंजस्यपूर्ण एकता साहित्य के अतिरिक्त और कहीं सम्भव नहीं। उसके लिए न हमारा अन्तर्जगत् त्याज्य है और न बाह्यजगत्; क्योंकि लेखन का विषय सम्पूर्ण जीवन है, आंशिक नहीं।"

किसी भी लेखन के मूलवर्ती स्रोत अन्यत्र न होकर रचनाकार के अन्तर्गत ही विद्यमान रहते हैं। वस्तु और रूप उसके अन्तर्गत इस प्रकार अनुस्यूत रहते हैं कि उन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता। वैसे भी मनुष्य की मानसिक वृत्तियों की ऐसी सामंजस्यपूर्ण एकता रचनात्मक लेखन के अतिरिक्त कहीं और सम्भव ही नहीं है। यह अकारण नहीं है कि लेखकीय मनोविज्ञान के आलोक में एक रचनाकार लेखन के अन्तर्गत अपने भावावेगों के साथ-साथ जीवन-मूल्य भी अभिव्यक्त करता रहता है।

किसी भी लेखन के अन्तर्गत रचनाकार की सक्रियता और सार्थकता इस बात में देखी जाती है कि वह अपने विशिष्ट जीवनानुभवों को, अपने विशिष्ट भाव समुदाय को अपनी निजी और विशिष्ट भावभूमि से ऊपर उठाकर किस प्रकार सर्वसामान्य की भूमि पर प्रतिष्ठित कर देता है। इस सन्दर्भ में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का मत उल्लेखनीय है – "लेखकीय मनोविज्ञान और कुछ नहीं, वह एक सम्पूर्ण कल्याणकारी जनता के समस्त हितों की रक्षा करने वाली चेतना और कला की समस्त उपलब्धियों की प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक श्रेणी के लिए एक-सी उपयोगी और एक सी आनन्ददायक मानने वाली योजना का ही सांस्कृतिक आन्दोलन है। इसलिए लेखन का मूल लक्ष्य मानव-जीवन में अनुराग पैदा करने वाली स्थिति की पुनर्सर्जना है।"

2.4.4.2. लेखन का व्यावहारिक पक्ष

एक ही समाज में विभिन्न वर्गों की रुचियों, दृष्टियों तथा सामाजिक एवं नैतिक संस्कारों में भेद होता है। एक व्यक्ति पर्याप्त सीमा तक चेतन तथा अवचेतन संस्कारों से बँधा होता है और उसका लेखन इन सीमाओं से मुक्त नहीं हो पाता है। लेखकीय मनोविज्ञान के व्यावहारिक पक्ष को स्पष्ट करते हुए मुक्तिबोध 'कामायनी' के सन्दर्भ में अपना विचार इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं – "कामायनी जीवन की पुनर्रचना है – ऐसे जीवन की पुनर्रचना जिस जीवन के प्रति लेखक दीर्घकाल से प्रतिक्रियाएँ करता आया था, जिसे वह अपने अन्तस्तल में अनुभूत करता रहा ... मानों वह उसकी निजी गोपनीय सम्पत्ति हो। लेखक ने उन संचित प्रतिक्रियाओं और अनुभूतियों द्वारा एक फिलॉसफी तैयार की। लेखक के सम्वेदनात्मक उद्देश्यों ने स्वानुभूत और जीवन का कथासार एक फैंटेसी के रूप में बाँध दिया और अपने इच्छित विश्वासों के आधार पर समाधान उपस्थित किया। फलतः उस फैंटेसी में लेखक का पूरा व्यक्तित्व, पूरा स्वानुभूत जीवनसार, पूरा इच्छित जीवन-दर्शन उतर आया और साथ ही मानव सम्बन्धों का वह क्षेत्र घोषित हुआ जिस मानव सम्बन्ध में लेखक ने साँसें लीं, अपना जीवन जीया और जिसके मूल्यों-आदर्शों को सम्पादित कर उस मानव सम्बन्ध क्षेत्र की अर्थात् अपने वर्ग की दृष्टि को ही दार्शनिकत्व प्रदान किया।"

प्रो॰ नामवर सिंह ने लेखकीय मनोविज्ञान को साहित्य और समाज के सम्बन्धों के बीच एक कड़ी के रूप में स्पष्ट किया है। उनका मानना है कि "लेखन प्रक्रिया में समाज, लेखक और साहित्य एक दूसरे को इस प्रकार प्रभावित करते हैं कि इनमें से प्रत्येक क्रमशः परिवर्तित और विकसित होता रहता है। समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य से पुनः समाज। लेखक अपने व्यक्तित्व के माध्यम से समाज को साहित्य का रूप देता है। वह भले ही ऐसा कहे, उसने अपने निजी सुख के लिए रचना की है; किन्तु उसके इस स्वान्तःसुख में चूँकि उसका अपना दृष्टिकोण, उद्देश्य, अनुभव, अनुभूति, विचार, विश्वास सब कुछ निहित है और ये सब सामाजिक जीवन में बराबर उपस्थित रहता है।"

लेखकीय मनोविज्ञान के व्यावहारिक पक्ष की उपयोगिता एवं महत्ता को उद्घाटित करते हुए महेन्द्रचन्द्र राय लिखते हैं कि "लेखकीय मनोविज्ञान केवल चिन्तनात्मक भाव नहीं है, अपितु एक क्रान्तिकारी कर्मात्मक चेतना है। कर्म से ही मानव मन में नाना भाव, भावना और मनोवेग मनुष्य को नवीन कर्मों में अभिप्रेरित कर केवल बाह्य परिस्थितियों में ही परिवर्तन नहीं ला रहे हैं; बल्कि मनुष्य को अर्थात् उसकी भावना-वासनाओं को भी रूपान्तरित कर रहे हैं। यही वजह है कि लेखन केवल निष्क्रिय मानसिक रसास्वादन की वस्तु नहीं हो सकता।" लेखक भले ही किन्हीं दबावों के परिणामस्वरूप नितान्त व्यक्तिनिष्ठता की बातें करता हो किन्तु मूल रूप से समष्टि का हित ही वहाँ अन्तर्निहित होता है। यद्यपि अज्ञेय व्यक्तिवादी विचारक हैं तथापि लोक को वे दृष्टि से ओझल नहीं होने देते हैं। वे लेखन का एक उच्चतर नैतिक उद्देश्य स्वीकार करते हैं। लेखकीय प्रयोजन के सम्बन्ध में अज्ञेय की काव्य-पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं। 'इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये' में वे लिखते हैं –

जो पाता हूँ
अपने को मिट्टी कर उसे गलाता चमकाता हूँ

अनिर्वय आह्लाद-सा लुटाता हूँ।

लेखन विषय सनातन होते हैं; तथापि कुछ में समय के साथ परिवर्तन हुआ करता है। लेखक जीवन के विविध विषयों को अपनी सम्वेदना के अनुसार ग्रहण कर उन्हें ऐसी वस्तु द्वारा अभिव्यक्त करता है जो उसकी संवदेनाओं के साथ समुचित न्याय कर सके। मनोवैज्ञानिक धरातल पर तो वर्तमान, भविष्य और अतीत कोई भी लेखन-विषय रचनाकार के लिए वर्जित नहीं है। लेखकीय मनोविज्ञान मानव-जीवन के वैविध्य के अनुरूप विषयों की विविधता को स्वीकार करता है। उसमें रचना को किसी खास विषय से आबद्ध करने का अनुरोध भाव अन्तर्निहित होता है।

2.4.5. पाठ-सार

भावना, बुद्धि या विचार तथा कल्पना ही वे मूल तत्त्व हैं जो प्रत्येक युग की रचना के साथ आत्यन्तिक रूप से सम्बद्ध रहे हैं। इन्द्रियबोध के माध्यम से लेखक अपने संसार से परिचित होता है, जिसकी गहरी छाप उसकी रचना में अनुभूत होती है। लेखकीय मनोविज्ञान में भी यही वे मूल तत्त्व हैं जिसे विचारकों ने अपने ढंग से, युग की बदलती हुई सम्वेदनाओं के अनुरूप, अपनी नयी व्याख्या से समन्वित कर नयी सर्जना के प्रमुख तत्त्वों के रूप में स्वीकार किया है। इन तत्त्वों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। क्योंकि युगानुयुग लेखन का स्वरूप अवश्य बदला है किन्तु ये तत्त्व आज भी लेखन के साथ आधारभूत रूप में जुड़े हुए हैं।

2.4.6. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. मिश्र, आचार्य भगीरथ, कला साहित्य और समीक्षा, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली.
2. वर्मा, निर्मल, कला के जोखिम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
3. गौतम, रमेश, रचनात्मक लेखन, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली.
4. मुक्तिबोध, नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
5. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद, रचना के सरोकार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.
6. तिवारी, डॉ॰ संतोष कुमार, संवादों के सिलसिले, अमर प्रकाशन, मथुरा.
7. डॉ॰ शंभुनाथ, तीसरा यथार्थ, प्रभा प्रकाशन, इलाहाबाद.

2.4.7. बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लेखकीय मनोविज्ञान का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।
2. लेखकीय मनोविज्ञान की वैचारिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
3. लेखन-प्रक्रिया में समाज, लेखक और साहित्य एक दूसरे को किस प्रकार प्रभावित करते हैं ?

4. लेखन-प्रक्रिया के मूल तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।
5. "व्यक्तिगत भावों की अभिव्यक्ति कला नहीं है।" स्पष्ट कीजिए।
6. लेखन में एक रचनाकार की सक्रियता एवं सार्थकता किन-किन बातों में देखी जा सकती है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. "लेखकीय मनोविज्ञान केवल चिन्तनात्मक भाव तक सीमित नहीं है अपितु वह एक क्रान्तिकारी कर्मात्मक चेतना तक विस्तारित है।" उक्त कथन का युक्तियुक्तपरीक्षण कीजिए।
2. लेखकीय मनोविज्ञान के सैद्धान्तिक पहलुओं पर प्रकाश डालिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. लेखन विषय होते हैं –

(क) परम्परागत
(ख) आधुनिक
(ग) दोनों
(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

2. "प्रत्येक रचनाकार का अपना एक सत्य होता है जो युग के बदलने के साथ-साथ बदल जाया करता है।" उक्त कथन किस विद्वान् का है ?

(क) अज्ञेय
(ख) मुक्तिबोध
(ग) नगेन्द्र
(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. लेखकीय विचार हमारे जीवन-व्यवहार को कैसा बनाते हैं ?

(क) पारदर्शी
(ख) सुचितामूलक
(ग) दोनों
(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

4. लेखन का कार्य होता है –

(क) आत्मनिरपेक्ष
(ख) आत्मसापेक्ष

(ग) कर्मनिरपेक्ष

(घ) उपर्युक्त सभी

5. लेखन का मूल लक्ष्य है –

(क) लोकरंजन

(ख) लोकमंगल

(ग) दोनों

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 3 : फ़ीचर लेखन

इकाई – 1 : फ़ीचर लेखन : परिचय, अर्थ, स्वरूप एवं महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

3.1.0. उद्देश्य कथन
3.1.1. प्रस्तावना
3.1.2. फ़ीचर का परिचय
3.1.3. फ़ीचर का अर्थ
3.1.4. फ़ीचर का स्वरूप
- 3.1.4.1. फ़ीचर के अंग
  - 3.1.4.1.1. प्रारम्भ
  - 3.1.4.1.2. मध्य
  - 3.1.4.1.3. अन्त
  - 3.1.4.1.4. शीर्षक
- 3.1.4.2. फ़ीचर के मूल तत्त्व
  - 3.1.4.2.1. शब्द
  - 3.1.4.2.2. वाक्य
  - 3.1.4.2.3. भाषा
  - 3.1.4.2.4. शैली
  - 3.1.4.2.5. व्याकरणिक अशुद्धियों का प्रभाव
  - 3.1.4.2.6. कल्पनाशीलता, मौलिकता और ज्ञान

3.1.5. फ़ीचर का महत्त्व
3.1.6. पाठ सार
3.1.7. कठिन शब्दावली
3.1.8. उपयोगी ग्रन्थ-सूची
3.1.9. अभ्यास / बोध प्रश्न

3.1.0. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. फ़ीचर के सैद्धान्तिक पक्ष को समझ पाएँगे।
ii. फ़ीचर के अर्थ, स्वरूप और महत्त्व को समझ पाएँगे।
iii. समझ पाएँगे कि विभिन्न विद्वान् फ़ीचर के विषय में क्या सोचते हैं।
iv. जान पाएँगे कि फ़ीचर के मूल तत्त्व क्या-क्या होते हैं।

v. यह भी समझ पाएँगे कि क्या आपकी रुचि फ़ीचर में है। क्या वह रुचि मात्र फ़ीचर पढ़ने तक सीमित है या लिखने में भी है।

vi. समझ पाएँगे कि फ़ीचर लेखन के लिए जितना सम्बन्धित विषय का ज्ञान ज़रूरी है उतना ही भाषा पर अधिकार भी।

3.1.1. प्रस्तावना

वर्तमान समय में फ़ीचर पत्र-पत्रिकाओं का अपरिहार्य अंग है। समाचार पत्र के लिए आज जितना ज़रूरी समाचार है उतना ही ज़रूरी फ़ीचर भी है। फ़ीचर लेखन ऐसा सृजनात्मक लेखन है जो पत्रकारिता में ही नहीं साहित्य जगत् में भी अपना खास महत्त्व रखता है। यह विधा कल्पना, कथा और सत्य का मिश्रण है। यह अपने कथात्मक स्वभाव से पाठक को आकर्षित करती है। सत्य और तथ्य के कारण विश्वसनीय होती है। फ़ीचर के साथ चित्र के होने से उसकी सम्प्रेषणीयता तो बढ़ती ही है, विश्वसनीयता में भी वृद्धि होती है। इसके विषय समाज, राजनीति, अर्थ, स्वास्थ्य, चिकित्सा, तीर्थ, मेला, प्रदर्शनी, कला, साहित्य, पर्यावरण, रहस्य, रोमांच, संस्कृति, व्यक्ति, घटना, देश, विदेश की नवीनतम जानकारियाँ, विकास के समाचार, मनोरंजन कुछ भी हो सकते हैं। लेकिन हाँ, गम्भीर-गूढ़ विषयों की प्रस्तुति भी फ़ीचर में रुचिकर तरीके से इस तरह की जाती है कि पाठक मोहित हो जाता है। सच्चाई यह है कि फ़ीचर ही है जो पाठक को पत्र-पत्रिका तक खींचकर लाता है। अकेले समाचारों के बूते तो समाचार पत्र कितनी दूर तक जा पाएँगे।

फ़ीचर किसी भी पत्र-पत्रिका की पहचान होता है। यह पाठक की जानकारी बढ़ाता है, उसका ज्ञानवर्द्धन करता है। उसका मनोरंजन करता है। अच्छा फ़ीचर समाचार पत्र की अन्य सामग्री से कहीं अधिक रोचक होता है इसलिए पाठक उसे पढ़ने के लिए तरसते हैं। समाचार पत्र की प्रतीक्षा करते हैं। फ़ीचर की प्रकृति समाचार पत्र अथवा पत्रिका की नीति के साथ ही सम्पादक की अपनी रुचि और रुझान पर भी निर्भर करती है।

3.1.2. फ़ीचर का परिचय

'फ़ीचर' को प्रारम्भ में 'रूपक' नाम से भी जाना जाता था। लेकिन रूपक से आज के फ़ीचर का जो रूप या चेहरा है वह पूरी तरह से परिभाषित नहीं होता है। रूपक शब्द आते ही नाट्यकृति, अलंकार, खेल, नाटक आदि का ध्यान आता है। जबकि फ़ीचर इन सब तक सीमित नहीं। उसका अर्थ विस्तार पाए हुए है। कोई कहता है कि – फ़ीचर के आवश्यक अंग हैं भावना और आलोचना। कोई बताता है – सच्चाई और विश्वास। कोई मानता है कि – फ़ीचर की सर्वप्रथम आवश्यकता है उसकी तर्कसंगतता। कोई कहता है – फ़ीचर को गतिशील होने के साथ ही मोहक और तथ्यात्मक भी होना चाहिए। इतना विशिष्ट होता है फ़ीचर। तब प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच फ़ीचर छह ककारों अर्थात् क्या, कब, कैसे, कहाँ, क्यों, कौन आदि प्रश्नों से पूर्णतया मुक्त हो सकता है? 'नहीं'। आप फ़ीचर से एक तरफ तो उम्मीद करते हैं कि वह पाठक को बताए कि घटना क्यों घटी तथा उसके परिणाम क्या होंगे लेकिन दूसरी तरफ आप क्या, क्यों, कैसे के जवाबों से बचें भी, तो बात नहीं बनेगी। ककार

यहाँ शर्तिया स्पष्ट रूप से भले उपस्थित नहीं मिलें, या सारे न मिलें लेकिन वे कहीं न कहीं, दो तीन तो अप्रत्यक्ष रूप में ही सही, आलेख में अनुस्यूत होंगे ही । फ़ीचर अपने भीतर समाचार तत्त्वों को इस तरह समेटकर रखता है कि वे हमें प्रत्यक्ष दिखते नहीं, लेकिन अपने होने का आभास देते रहते हैं। वे अपनी समूची रोचकता, आकर्षण, तथ्यात्मकता, सत्यता और नाटकीयता के साथ पूरे फ़ीचर में समाए रहते हैं, विचार और विश्लेषण के साथ।

फ़ीचर की भाषा भी समाचार की भाषा से कुछ अलग होती है। उतनी सीधी-सपाट नहीं होती जितनी आमतौर पर समाचारों की होती है। समाचार एक तो सूचना देते हैं दूसरे तात्कालिक होते हैं । इसलिए इनकी भाषा सूचनात्मक और आम पाठक को समझ में आए ऐसी होती है। समाचार में महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर इंट्रो में दे दिए जाते हैं लेकिन फ़ीचर में प्रश्नोत्तर आखिर तक हो सकते हैं। क्योंकि समाचार के लिए जो तथ्य महत्त्वपूर्ण है वह फ़ीचर के लिए भी उतना ही महत्त्व रखे, यह आवश्यक नहीं। एक बात जो फ़ीचर के विषय में कहनी अति आवश्यक है, वह यह कि फ़ीचर समाचार से अलग नहीं बल्कि उससे आगे की स्थिति है। अगर यह कहा जाए कि समाचार तत्त्वों की नींव पर फ़ीचर की इमारत खड़ी होती है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। समाचार की उम्र ज्यादा से ज्यादा एक दिन होती है जबकि फ़ीचर की उम्र बहुत बड़ी होती है। फ़ीचर पाठक की स्मृति में घर बना लेता है जबकि समाचार 'रात गई बात गई' की तर्ज पर याद रहता है और भुला दिया जाता है।

खबर और फ़ीचर के भेद को समझने के लिए संजय श्रीवास्तव अपनी पुस्तक 'फ़ीचर लेखन' में यूँ लिखते हैं कि – "फ़ीचर हार्ड न्यूज नहीं है। सॉफ्ट न्यूज इसका आधार हो सकती है। यह खबरों की तरह पूर्णतः या अति तात्कालिक नहीं है। यह बहुधा समाचारों से बड़ी और विस्तृत होती है पर आकार को आधार बनाने से बेहतर है इसकी प्रकृति पहचानें। अखबार में हो या पत्रिका में हो, इसमें सूचनापरक तत्त्व हो सकते हैं पर खबरों से आगे या खबरों के पीछे क्या है फ़ीचर इसकी सूचना देते हैं। फ़ीचर किसी भी विषय पर लिखे जा सकते हैं जबकि खबरों में इतनी स्वतन्त्रता कम होती है।"

फ़ीचर, समाचार में ज़िंदगी के रंग भरता है। पाठक फ़ीचर पढ़कर आनन्द और उत्साह से भर उठता है। पाठक एकबारगी समाचार को नज़रंदाज भले कर दे लेकिन फ़ीचर वह ज़रूर पढ़ता है। क्योंकि फ़ीचर उसे तथ्य, सत्य और अपने समय को देखने की नई दृष्टि देता है। एक अच्छा फ़ीचर सुबह के खिले फूल की सी ताजगी देता है। नाचते मोर को देखकर जो खुशी मिलती है वही खुशी अच्छा फ़ीचर पढ़कर मिलती है। कह सकते हैं फ़ीचर ऐसा आलेख होता है जो पाठक को विषय को देखने, समझने की नई दृष्टि तो देता ही है उसे उबाता भी नहीं है। बल्कि विषय में रुचि पैदा करता है। फ़ीचर घटना प्रधान हो या व्यक्ति प्रधान वह पाठक की उत्सुकता और जिज्ञासा को अन्त तक बनाए रखता है। वह पाठक को भले ही भावों में बहा नहीं ले जाता लेकिन भावनाओं से रीता नहीं होता है। वह भले बहुत सारी जानकारियाँ नहीं देता है लेकिन सम्बद्ध विषय की महत्त्वपूर्ण जानकारियों से रिक्त भी नहीं होता है।

सच तो यह है कि कोई भी विषय ऐसा नहीं है जो फ़ीचर का विषय नहीं बन सकता। सुई से लेकर तलवार तक, घर से लेकर बाजार तक, रसोई से लेकर बैठक तक, पशु पक्षी से लेकर इंसान तक, विद्वान् से लेकर सामान्य

जन तक, नदी से लेकर समंदर तक, शब्द से लेकर किताब तक, पेन से लेकर चश्मे तक, घाटी से लेकर मैदान तक, गाँव से लेकर शहर तक, स्त्री से लेकर पुरुष तक, बच्चों से लेकर बूढ़ों तक, लोकगीतों से लेकर फिल्मी गीतों तक, स्कूल से लेकर विश्वविद्यालयों तक, पुस्तकालय से लेकर सन्दर्भ केन्द्र तक, इंटरनेट से लेकर समाचार पत्रों की कतरनों तक, मोबाइल और रेडियो से लेकर टी.वी. तक, व्यक्ति से लेकर समाज तक, गोष्ठी से लेकर सम्मेलन तक सब जगह फ़ीचर के विषय भरे पड़े हैं।

विषयों की कमी नहीं है। बस देखना यह है कि कौनसा विषय फ़ीचर के लिए उपयुक्त होगा और कौनसा नहीं। फ़ीचर के लिए विषय वही उत्तम रहता है जिसका लेखक को ज्ञान हो और जिसके बारे में उसने देख-सुन-पढ़ रखा हो। अगर पूरी तरह से नया विषय है तो उसका अध्ययन-शोध करना होगा। पत्र-पत्रिकाएँ, किताबें, सम्बन्धित व्यक्ति, विषय के जानकार सब से बात करनी होगी। विषय के विशेषज्ञ या उस विषय की पत्रिकाएँ ज़रूरी तथ्यों से अवगत करवाएँगी। सभी कोणों से देख-परख-जाँच कर उसकी गहराई तक जाना होगा। विषय में गहरे पैठकर लिखा गया फ़ीचर ही सार्थक और सफल होगा वरना तो खानापूर्ति होगी। जल्दबाज़ी, तथ्यों की कमी और उपयुक्त भाषा-शैली के अभाव में लिखा गया फ़ीचर एकदिवसीय होकर रह जाएगा। उसे लम्बी उम्र का वरदान नहीं मिलेगा। वैसे भी दैनिक समाचार पत्रों के लिए लिखे गए फ़ीचर की बनिस्पत पत्रिकाओं के लिए लिखे गए फ़ीचर अधिक प्रभावी साबित होते हैं। लेखक को यहाँ समय मिलता है। यहाँ समय लेखक की मुट्ठी में कुछ समय तो रुकता ही है। जिसे वह तथ्य जुटाने, विषय के विशेषज्ञों से नई-नई बातें जानने, उनसे साक्षात्कार करने, अन्य लेखकों के उस विषय पर लिखे गए फ़ीचर पढ़ने, ज्ञात तथ्यों के चिन्तन-मनन-विश्लेषण करने के काम में लेता है।

फ़ीचर लेखन के लिए विषय-चयन करते समय लेखक इस बात का ध्यान रखता है कि विषय अधिक से अधिक लोगों की रुचि का हो, समसामयिक हो और वह जिस पत्र पत्रिका के लिए लिख रहा है उसकी नीति क्या है। उसके सम्पादक की अभिरुचि किस विषय में है। उसका पाठक वर्ग कौन है। पाठक की रुचि और पसंद, स्वयं की जानकारी और पैठ का ध्यान रखकर फ़ीचर लेखन किया तो निश्चित ही उसे पाठकों का प्यार मिलेगा। वह फ़ीचर साहित्य और पत्रकारिता की स्थायी सम्पत्ति बन जाएगा।

समाचार पत्र या पत्रिका के प्रकाशन के कई उद्देश्य होते हैं जैसे कि पाठकों को समाचार पहुँचाना, नयी जानकारियाँ साझा करना, मनोरंजन करना आदि। जाहिर है पत्र-पत्रिका का उद्देश्य है पाठकों तक पहुँचना। ज्यादा से ज्यादा पाठकों द्वारा पढ़ा जाना और उसकी प्रसार संख्या में इजाफा होना। समाचार पत्र के लिए चार चीजें बड़ा महत्त्व रखती हैं – समाचार, लेख, फ़ीचर और चित्र। फ़ीचर किसी समसामयिक विषय पर सरल भाषा और विनोदपूर्ण शैली में उपयोगी और रोचक जानकारी देते हैं। पाठक फ़ीचर के माध्यम से उसके आसपास, देश-विदेश में, अनेक क्षेत्रों में क्या कुछ घटित हो रहा है, क्या नया अनुसंधान और विकास हो रहा है आदि की जानकारी प्राप्त करता है। इस जानकारी का क्षेत्र सीमित नहीं होता बल्कि विस्तृत होता है। संसार का कोई भी विषय फ़ीचर का विषय बन सकता है। बनाने वाले में वह करामात होनी चाहिए कि उसे पढ़ने के लिए पाठक लालायित रहे, पत्र-पत्रिका का इंतजार करे।

3.1.3. फ़ीचर का अर्थ

फ़ीचर (feature) शब्द अँग्रेजी भाषा से हिन्दी में आया है, जिसका अर्थ है आकृति, नख-शिख, रूप-रेखा, लक्षण, विशेषता या व्यक्तित्व। भाषाएँ एक दूसरी भाषा से आवश्यकतानुसार शब्द लेती हैं, अपनाती हैं और समृद्ध बनती हैं। हिन्दी ने अँग्रेजी से और अँग्रेजी ने हिन्दी से अनेक शब्द लिए हैं जो आज भाषाओं में रच-बस गए हैं। फ़ीचर ऐसा ही एक शब्द है जो अँग्रेजी भाषा की तरह ही हिन्दी में अनेक अर्थों में काम में लिया जाता है। मगर हमारा तात्पर्य यहाँ पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले शब्द फ़ीचर से ही है।

'वर्धा हिंदी शब्दकोश' में फ़ीचर के कई अर्थ दिए हैं – किसी विषय या वस्तु का उल्लेखनीय या महत्त्वपूर्ण भाग। चेहरे का कोई अंग । पत्र-पत्रिका में प्रकाशित किसी विषय पर लिखा गया लेख; रूपक लेख; प्रसंग लेख। एक प्रकार की कथानक प्रधान काल्पनिक एवं मनोरंजकफिल्म; कथाचित्र।

'पत्रकारिता परिभाषा कोश' के अनुसार फ़ीचर – (संज्ञा रूप में) मानवीय सम्वेदना से परिपूर्ण लेख जो तथ्यात्मक समाचार या विवरण से भिन्न होता है। दूसरा अर्थ है – (क्रिया रूप में) किसी समाचार को विशेष महत्त्व के साथ प्रकाशित करना।

डॉ॰ विजय कुलश्रेष्ठ अपनी पुस्तक 'फ़ीचर लेखन' में फ़ीचर के अर्थ को इस तरह परिभाषित करने का प्रयास करते हैं – "रोचक एवं आकर्षक ढंग से लिखा गया तथ्यपरक एवं सप्रमाण सत्याधारित कथावृत्तमय आलेख फ़ीचर कहलाता है।"

फ़ीचर उस छोटी सी नाव सरीखा होता है जिसमें बैठकर आप अपनी दुनिया और प्रकृति के अनेकविध नजारों, दृश्यों का आनन्द स्वयं लेते हैं और पाठकों को भी लेने देते हैं। किसी खास दृश्य पर आपकी नज़र ठहरती है और फिर आप भी ठहरते हैं लेकिन अगली यात्रा तक ही। आप नाविक होते हैं आप ही लेखक होते हैं। उस दृश्य या व्यक्ति या घटना विशेष के आप दर्शक और श्रोता होते हैं। और उस घटना, व्यक्ति या दृश्य का चित्रण और विश्लेषण इस तरह करते हैं कि वह पाठक के दिल को छू जाए। फ़ीचर लेखक की कलम की सार्थकता इसी बात में निहित होती है कि वह पाठक को उस भाव दुनिया तक पहुँचा दे जिसमें उसके होठों पर मुस्कान खिल जाए या आँखों में हल्की सी नमी आ जाए। पर यह तब ही सम्भव होता है जब लेखक सम्वेदनशील हो और उसमें घटना को मार्मिकता के साथ विश्लेषित करने की क्षमता हो। यहाँ कोरी कल्पना से काम नहीं चलता। फ़ीचर को समझने के लिए हमें सबसे पहले यह समझना होगा कि यह फिक्शन नहीं फेक्ट पर आधारित होता है।

फ़ीचर विनोदपूर्ण शैली में लिखा गया ऐसा संक्षिप्त, समसामयिक और प्रासंगिक लेख है जो आपको गर्मी में ठण्डी हवा के झौंके की तरह छू जाए। बस शर्त यही कि वह सत्य, तथ्य और अनूठेपन के साथ कुछ नई-सी मौलिक बात करे कि पढ़कर लगे जैसे आज का पढ़ना तो समझो सार्थक हो गया। असल में समाचार पत्र के नीरस और उबाऊ समाचारों के उदास चेहरों के बीच एक आकर्षक चेहरा है फ़ीचर। दूर-दूर तक सूखे रेगिस्तान में खड़ी हरी-भरी खेजड़ी है फ़ीचर। थार के मरुस्थल में एकाएक दिख जाने वाली ठण्डे पानी की बावड़ी है फ़ीचर।

3.1.4. फ़ीचर का स्वरूप

फ़ीचर के स्वरूप को ठीक से समझने के लिए मोटे तौर पर उसके अंग या कहें कि मूल तत्त्वों को जान लेना भी ज़रूरी है। फ़ीचर के स्वरूप को समझने के लिए हमें उसके प्रारम्भ, मध्य और अन्त को समझना होगा। किसी भी फ़ीचर के स्वरूप निर्धारण में उसके तीन अंगों यथा – प्रारम्भ, मध्य और अन्त (आमुख, बॉडी और समापन) का एक समान महत्त्व होता है।

3.1.4.1. फ़ीचर के अंग

3.1.4.1.1. प्रारम्भ

प्रारम्भ को आमुख, मुखड़ा, इंट्रो या लीड भी कहते हैं। यूँ कहने को किसी कहावत, लोकोक्ति या मुहावरे से फ़ीचर का प्रारम्भ हो सकता है। आमुख नाटकीय या कथात्मक हो सकता है। किसी ऐतिहासिक घटना, पौराणिक कथा, लोककथा, शायरी, कविता से शुरू हो सकता है। पर सबसे ज़रूरी बात यह है कि आमुख को मोहक और आकर्षक होना चाहिए। कविता, कहानी भी बहुत सुनी-सुनाई नहीं होनी चाहिए। नई और ताजगी भरी होनी चाहिए। कहते हैं ना कि "पूत के पाँव पालने में ही दिख जाते हैं।" तो पहली पंक्ति से ही फ़ीचर में पाठक को अपनी ओर खींचने की क्षमता होनी चाहिए। चूँकि फ़ीचर बहुत बड़ा नहीं होता है इसलिए उसकी हर पंक्ति में जान होनी चाहिए। पाठक को पढ़ा ले जाने की ताकत ही आमुख का गुण है। पाठक की रुचि बनी रहे इसलिए आमुख को कोई नई जानकारी अथवा सूचना लिए हुए होना चाहिए। वह किसी प्रश्न के साथ भी हो सकता है तो किसी चित्र या उदाहरण के साथ भी। इससे पाठक की रुचि फ़ीचर पढ़ने-समझने में रहेगी। एक बात का स्पष्ट होना आवश्यक है कि फ़ीचर में समाचार की तरह सार आमुख में नहीं आता। अगर सार आमुख में ही आ गया तो शेष फ़ीचर पाठक शायद न पढ़े, कि सार जान ही लिया। पता है आगे क्या होना है। ऐसी बनावट समाचार को शोभा देती है। अगर समाचार का अन्तिम अनुछेद या पंक्तियाँ हटा ली गईं तब भी समाचार पाठक तक पहुँच जाता है लेकिन फ़ीचर की अन्तिम पंक्तियाँ काट ली गईं तो लगेगा जैसे उसका कोई अंग काट लिया गया। इसलिए आमुख में कुतूहल जगाने वाली सामग्री आनी चाहिए, जिज्ञासा शान्त करने वाली नहीं। फ़ीचर की सारी सामग्री महत्त्वपूर्ण होती है और समूचे फ़ीचर में फैली रहती है, जैसे दोपहर की धूप। जैसे फुल्के पर घी। कहीं से भी ग्रास तोड़ो एक जैसा स्वाद आएगा। इसलिए समाचार उलटे पिरामिड में दिए जाते हैं लेकिन फ़ीचर नहीं।

3.1.4.1.2. मध्य

मध्य को बॉडी, मेन बॉडी या विस्तार इन कई नामों से जानते हैं। जिस विषय को आमुख में स्थापित किया जा चुका है उसी को यहाँ विस्तार मिलता है। बॉडी का विस्तार कितना होना चाहिए, यह फ़ीचर के विषय और उसकी लम्बाई पर निर्भर करता है। लेकिन सामान्यतया विस्तार तीन-चार अनुच्छेदों में समा जाता है। इस भाग में लेखक का दायित्व हो जाता है कि वह पाठक को बाँधे रखे। सब बातें आ जाएँ, कोई बात न छूटे जो वह कहना चाहता है। जैसे कि फ़ीचर का उद्देश्य, लक्ष्य, केन्द्रीय भाव, सूचनाएँ, आँकड़े, उदाहरण आदि। लेकिन

विस्तार का अर्थ इतना विस्तार भी नहीं होता कि कथावस्तु फैल जाए या इतनी बिखर जाए कि समेटी ही न जाए। और पाठक निराश होकर लेख से दूर चला जाए। या कि उस बिखराव में खुद भी बिखरकर रह जाए और फ़ीचर के आनन्द से महरूम रह जाए। बल्कि विस्तार इस कदर बँधा हुआ हो कि कब अन्त तक आ गया खुद पाठक को भी ज्ञात न हो सके। लेखक के कला-कौशल, भाषा-ज्ञान, उसकी शैली, कल्पनाशीलता और रचनात्मकता सबकी परीक्षा का समय यही होता है। यही वह स्थान होता है जहाँ पाठक के लेख से छिटक जाने का खतरा सबसे ज्यादा रहता है। यहाँ तक लेखक अगर पाठक को ला पाने में सक्षम हो पाया तो उसकी काबिलियत पर कोई सन्देह नहीं हो सकता।

3.1.4.1.3. अन्त

अन्त को समापन, समाहार या उपसंहार कई नामों से पुकारते हैं। फ़ीचर का समापन सारगर्भित और प्रभावी होना चाहिए। समापन के बाद उस विषय से सम्बन्धित कोई जिज्ञासा पाठक के मन में नहीं रहनी चाहिए। समापन ऐसा हो कि दिनों, महीनों नहीं बल्कि बरसों तक उसकी याद बनी रहे। पाठक की स्मृति में कहीं अटकी रहे। जितना सुन्दर आमुख हो उतना ही सुन्दर समापन भी होना चाहिए वरना कोई कह देगा कि "मोर नाचता है मगर पाँवों को देख कर रोता है।"

3.1.4.1.4. शीर्षक

शीर्षक संक्षिप्त, सटीक और सारगर्भित होना चाहिए। फ़ीचर के आकार के हिसाब से शीर्षक कुछ बड़ा या कुछ छोटा हो सकता है लेकिन यह तरीका ज्यादा कारगर नहीं है। बल्कि सबसे अच्छा शीर्षक वह है जो लेख के केन्द्रीय भाव को प्रकाशित कर सके। कई बार तो शीर्षक पढ़कर पाठक फ़ीचर की तरफ आकर्षित होता है या उससे मुँह मोड़ लेता है। फ़ीचर का शीर्षक अनोखा और आकर्षक होता है। पाठक की जुबान पर छा जाने वाला शीर्षक लेख और पाठक दोनों के लिए उपयोगी साबित होता है। लेख पढ़ लिया जाता है और पाठक को एक अच्छी चीज पढ़ने को मिल जाती है।

3.1.4.2. फ़ीचर के मूल तत्त्व

3.1.4.2.1. शब्द

फ़ीचर के विषय हमें अपने इर्द-गिर्द, आसपास ही मिल जाएँगे। दुनिया का कोई भी विषय फ़ीचर का विषय बन सकता है बशर्ते फ़ीचर लेखक उसके बारीक से बारीक तन्तु से परिचित हो। फ़ीचर लेखक को विषय का ज्ञान हो। उसकी भाषा में रवानी हो। भाषा में रवानी तभी सम्भव है जब लेखक के पास विषय-विशेष से जुड़े नये-नये शब्दों का भण्डार हो। ऐसे शब्द जो फ़ीचर को सारगर्भित, ऊर्जावान् और प्रभावी बनाएँ। शब्द क्लिष्ट न होकर सरल, सहज हों चाहे वे हिन्दी के हों, उर्दू के हों, फारसी के हों और चाहे अँग्रेजी के। लेकिन एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि फ़ीचर में अपनी भाषा के शब्दों पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

3.1.4.2.2. वाक्य

शब्द चयन ठीक होगा तो उनसे बनने वाला वाक्य भी ठीक ही होगा। फ़ीचर में वाक्य छोटे, प्रभावी, सरल और सुगठित होते हैं जिससे अर्थ सम्प्रेषण में कठिनाई नहीं होती। यह तभी सम्भव हो पाता है जब वाक्य में एक भी शब्द अनावश्यक न हो। जिस प्रकार खरपतवार पौधों के विकास को रोकती है उसी तरह अनावश्यक शब्द फ़ीचर की सुन्दरता को कम करते हैं और उसके अर्थ सम्प्रेषण में बाधा उपस्थित करते हैं, उसके प्रभाव को शिथिल बनाते हैं। फ़ीचर में शब्दों का दोहराव भी न हो। ज़रूरत पड़ने पर उस शब्द का पर्याय शब्द काम में लें। क्योंकि मूल रूप से फ़ीचर की काया होती भी छोटी ही है। अगर उसमें भी बार-बार एक शब्द उपयोग में लिया जा रहा है तो पाठक यह जान जाएगा कि लेखक के पास शब्दों की कमी है। शब्दों की कमी कहीं न कहीं विषय के ज्ञान की कमी को भी दर्शाती है।

3.1.4.2.3. भाषा

लेखक की भाषा पर पकड़ मजबूत होनी चाहिए। उसे पर्यायवाची शब्द, लोकोक्ति, मुहावरों, कथा-कहानियों, लोक कथाओं में रुचि होनी चाहिए। वह जन-रुचि को ध्यान में रखते हुए फ़ीचर लिखता है। जब हम जन की बात करते हैं तो अनेक पृष्ठभूमि वाले पाठक होंगे। विद्यार्थी भी होंगे तो अध्यापक भी होंगे। सामान्य पाठक होंगे तो विद्वान् भी होंगे। ग्रामीण भी होंगे तो शहरी भी होंगे। स्त्रियाँ होंगी तो पुरुष और युवा भी होंगे। उन सबको फ़ीचर रुचना चाहिए। इसके लिए ज़रूरी है कि भाषा उन सबके लिए सुगम्य और सुपाठ्य हो। भाषा सरल हो पर इतनी सपाट भी न हो कि फ़ीचर, फ़ीचर न लगकर समाचार लगने लगे।

3.1.4.2.4. शैली

बात हो और बात कहने का अंदाज भी हो तो बात में वजन आ जाता है। फ़ीचर लेखक पर यह कथन सटीक बैठता है। आँकड़े, तथ्य, सत्य, पृष्ठभूमि, विषय का आगा-पीछा सब आपने जुटा लिया लेकिन इन सबको व्यवस्थित कर रचनाशीलता के साथ प्रस्तुत करना नहीं आया तो सारी मेहनत पर पानी फिर जाता है। बात कहने का तरीका भी हर लेखक का अपना होता है। यह तरीका लेखक को अन्य लेखकों से अलग करता है। इसलिए यह इतना अलग, नया-सा और प्रभावोत्पादक होना चाहिए कि पाठक एकबारगी चमत्कृत हो जाए। संजय श्रीवास्तव की मानें तो फ़ीचर की शैली विभिन्न प्रकार की हो सकती है। जैसे – सूचनात्मक शैली, विवरणात्मक शैली, विवेचनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली आदि। शैली हर रचनाकार की अपनी होती है लेकिन यह सतत अभ्यास से बनती है। कई बार किसी दूसरे बड़े रचनाकार की शैली की नकल भी करते पाए गए हैं लेखक। एक लेखक मित्र के लेखन के लिए किसी ने कहा "इसकी शैली निर्मल वर्मा की तीसरी खाद है। अब इस पर क्या प्रतिक्रिया दें।" इसलिए लेखन और लेखन शैली सब में मौलिकता होनी चाहिए आडम्बरयुक्त, सजावटी-दिखावटी चीजें ज्यादा नहीं चलतीं।

3.1.4.2.5. व्याकरणिक अशुद्धियों का प्रभाव

भाषा पर जिस लेखक का अधिकार होगा वह व्याकरणिक अशुद्धियों से भी बचेगा। व्याकरण की अशुद्धियाँ फ़ीचर के प्रवाह को रोकती हैं कई बार तो अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है। ऐसे में लेखक अनाड़ी कहलाता है।

3.1.4.2.6. कल्पनाशीलता, मौलिकता और ज्ञान

फ़ीचर में भाषा के सौन्दर्य की अपनी महत्ता होती है। लेकिन कल्पना की भी तो अपनी उड़ान और सुन्दरता होती है। इस रचनात्मक सौन्दर्य से ज्यादा सुन्दर क्या होगा। फ़ीचर में मात्र भाषा की रवानी से काम नहीं चलता बल्कि विषय का ज्ञान भी ज़रूरी है। ज्ञान के साथ ही सम्बन्धित विषय में लेखक की रुचि भी हो। अरुचिकर विषय पर लिखे गए फ़ीचर में वह अनूठापन, मनोरंजकता, विनोदप्रियता नहीं आ पाएगी जो फ़ीचर की जान है। फ़ीचर में जीवन्तता होगी उतना ही फ़ीचर पाठकों द्वारा ज्यादा पसंद किया जाएगा। इसलिए फ़ीचर लेखक का कल्पनाशील और रचनाशील होना ज़रूरी है और इसके साथ ही परिश्रमी भी जिससे वह सम्बन्धित विषय से जुड़े अधिकाधिक तथ्य जुटा सके। और फिर उन्हें इस तरह प्रस्तुत कर सके कि लगे कि इस विषय पर पहली बार कोई चीज पढ़ी है। और पढ़ें। कहने का अर्थ यह कि जितनी मौलिकता लेखक की शैली में अपेक्षित होती है उतनी ही मौलिकता अन्तर्वस्तु में भी होनी चाहिए। मौलिकता का सम्बन्ध कहीं न कहीं यहाँ नवीनता से भी जोड़ सकते हैं। जब तक लेखक की दृष्टि में मौलिकता अथवा नवीनता न होगी प्रभावी और अविस्मरणीय फ़ीचर भी नहीं लिखा जाएगा।

फ़ीचर लेखन के समय और किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए इस सम्बन्ध में बहुत महत्त्वपूर्ण दिशा-निर्देश देते हैं संजय श्रीवास्तव। वे अपनी पुस्तक 'फ़ीचर लेखन' में लिखते हैं – "अंकों को लिखते समय छोटी संख्याओं को तो शब्दों में लिखें जैसे – एक से दस तक। फिर हजार तक अंकों में लिख सकते हैं, पर बड़ी संख्याओं को शब्दों में लिखें जैसे – 'एक करोड़ अड़तीस लाख चार सौ बारह।' तथ्यों, आँकड़ों के साथ उनका स्रोत तथा तकनीकी आँकड़ों के साथ उनके मात्रक ज़रूर दें, यदि मात्रक मीटर, लीटर, किलो जैसे सुपरिचित नहीं हैं तो आवश्यकतानुसार उन्हें समझाएँ या फिर उन्हें प्रचलित और सर्वग्राह्य मात्रकों में रूपान्तरित कर दें। संकेताक्षरों, संक्षिप्त अक्षरों को कम से कम एक बार पूरा लिखें, संक्षिप्त रूप को कोष्ठक में, विदशी नामों, देश, राज्य, व्यक्ति आदि के नामों को लिखने से पहले उनकी शुद्धता जाँच लें। इसी तरह उद्धरणों, प्रतिक्रियाओं के साथ उसका स्रोत देना न भूलें। दूसरे के उद्धरणों, प्रतिक्रियाओं में अपने विचार या शब्दों का समावेश न करें। किसी पदनाम के प्रयोग से पूर्व उसकी वर्तमान स्थिति ज़रूर जाँच लें।"

3.1.5. फ़ीचर का महत्त्व

फ़ीचर ऐसा लेख होता है जिसके पत्र-पत्रिका में होने से पाठक की समाचारीय एकरसता टूटती है, नीरसता दूर होती है और पत्र की उम्र तथा लोकप्रियता भी बढ़ती है। फ़ीचर जब चित्र के साथ पत्र-पत्रिका में स्थान पाता है

तो हर किसी की निगाह वहीं जाकर ठहरती है। फ़ीचर में समाचार भी निहित रहता है। बस यह समाचार शहद की कई परतों से ढका हुआ रहता है। आजकल समाचार पत्रों में अनेक विषयों पर फ़ीचर लिखे जा रहे हैं। स्वास्थ्य, वस्त्र, बर्तन, शृंगार, जूते, चप्पल, घर की सजावट, पानी, गुटखा, मिठाई आदि से लेकर खेल फ़ीचर, सामाजिक फ़ीचर, राजनैतिक फ़ीचर, सांस्कृतिक फ़ीचर, आर्थिक फ़ीचर, शैक्षिक फ़ीचर, साम्प्रदायिकता की समस्या आदि तक फ़ीचर के विषय बन रहे हैं।

माना कि फ़ीचर पाठक का ज्ञानवर्द्धन और मनोरंजन करता है। और यह मनोरंजन रोचक और आकर्षक ढंग से होता है। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि फ़ीचर सिर्फ मनोरंजन ही करता है बल्कि यह तो हौसला बढ़ाता है। फ़ीचर व्यवस्था में समायी अव्यवस्था पर चोट भी करता है पर इसका अपना तरीका है। इसकी चोट हथौड़े की तरह नहीं पड़ती बल्कि यह तो च्यूँटी-सी काटता है कि आदमी तिलमिलाकर रह जाए। कभी-कभी तो हँसी-हँसी में सिर्फ पोल खोलता है। कभी-कभी तो जिसकी पोल खोली उसे पता ही नहीं चलता कि उसकी पोल खुली। वह सबके साथ फ़ीचर का आनन्द लेता है। यही फ़ीचर की खूबी है।

फ़ीचर सामाजिक समस्याओं को भी उजागर करता है। कहीं कुछ गलत हो रहा है तो उस पर भी अंगुली उठाता है। फ़ीचर के कुछ शीर्षक देखिए जो इस तथ्य की ताईद करते हैं, जैसे – 'जब सन्तान बुढ़ापे की लाठी न बने तो बुजुर्ग लें कानून का सहारा', 'पानी के नाम पर बिकता जहर', 'जिस थाली में खाया उसी में किया छेद', 'पान मसाला : चार ग्राम की पहेली', 'मुश्किल राह में आज तलाशो मुस्कान', 'विकलांगों का नाम सर्वांगों की चाँदी', 'लगने के बाद उतरना मुश्किल अच्छा हो कि चश्मा चढ़े ही न', 'कैसे जुटेगा भविष्य में भोजन', 'छीन ले गया सुकून खूनी जुनून', 'लोक धुनों ने कराया संस्कृतियों का संगम' आदि। सामाजिक फ़ीचर अपनी प्रतिबद्धता, पक्षधरता और सम्वेदना के साथ अपने कन्धों पर देश और समाज का बोझ उठाए चलते हैं। 'रहने को घर नहीं है सारा जहाँ हमारा' (जनसत्ता 16 दिसंबर 1990) में भारत डोगरा आवास की समस्या से जूझते लोगों की समस्या को उठाते हैं, एक बानगी देखिए – "राजधानी के लाखों परिवार आवास की समस्या से जूझ रहे हैं। गरीब परिवार ही नहीं, ठीक से खाने-कमाने वाले अधिकांश परिवार भी समझ नहीं पा रहे कि अपने परिवार के लिए एक छोटा सा दड़बानुमा घर भी खरीदा जाए तो कैसे। कभी मकान मालिकों की डाँट-फटकार सुनकर तो कभी प्रॉपर्टी डीलरों के आसमान छूते दाम सुनकर आदमी परेशान हो जाता है कि अपने नीड़ का निर्माण करे तो कहाँ करे और कैसे ... महानगरों में आवास की समस्या नई नहीं है। आवास की तंगी ने लाखों परिवारों की नींद हराम कर रखी है। लेकिन इसी के चलते कोलोनाइजरों और प्रॉपर्टी डीलरों की एक समान्तर दुनिया बनी है जो नई बस्तियाँ बसाने और मकानों की खरीद-फ़रोक्त पर टिकी है।"

इसी तरह चित्रेश रिझवानी 'हमारा सामाजिक ढाँचा और आत्महत्याएँ' (नया कारवाँ, जयपुर, मई 2015) में सत्य और तथ्य के साथ अनेक रिपोर्टों का हवाला देते हैं। चित्रेश आत्महत्या के अनेक कारणों, सामाजिक बुराइयों के खुलासे के साथ ही आत्महत्याएँ रोकी कैसे जाएँ, इस प्रश्न पर बड़ी मार्मिकता और आत्मीयता के साथ प्रकाश डालते हैं। वे कई प्रश्न भी उठाते हैं – "आखिर ऐसा क्यों हो रहा है कि लोग अपनी जान की कीमत को लगातार नज़रंदाज किए जा रहे हैं? रिपोर्ट तो हमें बताती है कि पारिवारिक समस्याएँ, बीमारी, गरीबी आदि इसके

कारण हैं पर क्या इसके लिए हमारे समाज के पूरे ढाँचे को जिम्मेदार नहीं माना जाना चाहिए ? पढ़ने वाले बच्चों का इसलिए आत्महत्या करना क्योंकि वे फेल हो गए या फेल होने का डर था – क्या इसके लिए सफलता का समाज द्वारा डाला जा रहा दबाव जिम्मेदार नहीं है ? एक गरीब का पैसे की कमी की वजह से आत्महत्या करना – क्या इसके लिए उसका हर कहीं से दुत्कारा जाना तथा मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित होना, समाज का जिसकी लाठी उसकी भैंस का अलिखित नियम जिम्मेदार नहीं ? एक बीमार व्यक्ति के आत्महत्या करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वास्थ्य सुविधाओं की अनुपलब्धता क्यों न उत्तरदायी मानी जाए ? यहाँ तक कि एक कारण का तो नाम ही है सामाजिक बदनामी।"

इन उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि फ़ीचर भी समाज के उत्थान और विकास की जिम्मेदारी का निर्वहन करता है। वह भी समाज में व्याप्त रूढ़ियों, पुरानी पड़ चुकी परम्पराओं, गरीबी आदि से व्यक्ति की मुक्ति का सपना देखता है। जिस तरह सुन्दर समाज का सपना साहित्य की अन्य विधाएँ, पत्रकारिता और मीडिया देखता है उसी तरह फ़ीचर भी देखता है। इस तरह फ़ीचर का महत्त्व स्वयं साबित होता है।

फ़ीचर के विषय में यह कहना गलत नहीं होगा कि इसे पढ़ने के बाद पाठक की मनःस्थिति वह नहीं रहती जो उसे पढ़ने से पहले थी। वह एक अलग भाव-भूमि में विचरण करने लगता है। वह कितने समय तक उस भाव-भूमि में विचरण कर पाता है, यह फ़ीचर की अपनी प्रकृति, विषय की गहराई, मार्मिकता और सम्वेदनशीलता के साथ ही पाठक की पसंद, विषय की समझ, रुचि, उसके विवेक और सम्वेदना पर भी निर्भर करता है।

फ़ीचर का कद समाचार से निश्चित ही बड़ा होता है। क्योंकि उसमें सम्वेदना और सरसता के तत्त्व विद्यमान रहते हैं जबकि समाचार में न सम्वेदना होती है न वेदना का लेश मात्र। वहाँ शुष्कता और सपाटता होती है। यही शुष्कता, सपाटता और सम्वेदनहीनता फ़ीचर और समाचार की एक दूसरे से दूरी बतलाती हैं। फ़ीचर में कल्पना और सच्चाई साथ-साथ कदमताल करती हैं और पाठक के मन-मस्तिष्क में कभी पीड़ा तो कभी खुशी, कभी उत्सुकता, ऊर्जा तो कभी विनोद का संचार करती हैं। उसे रोज़मर्रा के एकरस समाचारों से थोड़ा परे ले जाकर कुछ नया-सा ताजगीभरा समय और विषय उपलब्ध कराती हैं। पाठक रुचिकर विषय पढ़कर आनन्दित हो उठता है। यही वह स्थल है जो समाचार और फ़ीचर को अलग-अलग दर्शाता है और समाचार पत्र में फ़ीचर के महत्त्व को रेखांकित करता है। समाचारों के लिए समाचार पत्र पढ़ा जाता है पर ज्यादा पढ़ा जाने वाला समाचार पत्र वही होगा जिसमें फ़ीचर के लिए पर्याप्त स्थान होगा। लेकिन फ़ीचर भी हृदय के दरवाजे पर दस्तक देने वाला हो।

फ़ीचर की उपस्थिति समाचार पत्र, पत्रिका को खास बनाती है। उसे जीवन्त बनाती है। पुराने समय में घर के बीच के थोड़े से हिस्से में पक्का आँगन नहीं डालते थे। वहाँ मिट्टी रहती थी। उस मिट्टी में तुलसी का पौधा लगाते थे। फ़ीचर समाचारों के बीच तुलसी के उस पौधे जैसा है। जब तक तुलसी की महत्ता हमारे घरों में है तब तक समाचार पत्र और पत्रिकाओं में फ़ीचर की महत्ता रहेगी।

3.1.6. पाठ सार

फ़ीचर का विषय दुनिया का कोई भी विषय हो सकता है। फ़ीचर मनोरंजन करता है और इसे समाज के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास भी है। फ़ीचर ऐसी रचनात्मक विधा है जिसके बिना पत्रकारिता और साहित्य दोनों के आँगन सूने हैं। फ़ीचर में शब्दों के चयन का विशेष ध्यान रखा जाता है। इसमें एक भी अनावश्यक शब्द नहीं होना चाहिए। वाक्य भी संक्षिप्त और सारगर्भित होने चाहिए। फ़ीचर का महत्त्व समाचारों के बीच एकाएक बढ़ जाता है। क्योंकि समाचार नीरस और उबाऊ होते हैं जबकि फ़ीचर में जीवन बोलता है। फ़ीचर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह समसामयिक होता है और प्रासंगिक होता है। फ़ीचर में विनोद और गाम्भीर्य का संतुलन होता है। इसमें अतीत, वर्तमान और भविष्य समाया रहता है। इसमें प्रश्न होते हैं तो चिन्ताएँ भी होती हैं। शिकायतें-समस्याएँ होती हैं तो उनके समाधान भी होते हैं पर आत्मीयता और मानवीयता के साथ।

3.1.7. कठिन शब्दावली

रूपक	:	जिसका कोई आकार या रूप हो। किसी रूप की प्रतिकृति या मूर्ति। भेद, प्रकार। वह साहित्यिक रचना जिसका अभिनय होता हो; नाटक, ड्रामा। चाँदी। चाँदी का सिक्का या गहना। (काव्यशास्त्र) एक प्रकार का अलंकार जिसमें उपमेय में उपमान के साधर्म्य का आरोप कर के उपमेय का उपमान के रूप में ही वर्णन किया जाता है। सात मात्रा का ताल।
इंट्रो	:	मुखड़ा, आमुख। इंट्रोडक्शन का संक्षिप्त रूप। समाचार का प्रारम्भिक अनुच्छेद जिसमें समाचार का सार या उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश दिया जाता है। ये अक्षर बड़े या काले टाइप में और दो या अधिक कॉलमों में कम्पोज़ किए जाते हैं। इसे 'लीड' भी कहते हैं।
फिक्शन	:	काल्पनिक कथा। कहानी, उपन्यास आदि में काल्पनिक कथा होती है।
फैक्ट	:	तथ्य
छह ककार	:	क्या, कब, कैसे, कहाँ, क्यों, कौन आदि प्रश्न जो 'क' से शुरू होते हैं।
हार्ड न्यूज	:	समाचार का केवल तथ्य भाग। कठिन समाचार।
सॉफ्ट न्यूज	:	हल्की-फुलकी खबर। नरम समाचार।
कॉलम	:	स्तम्भ। आधुनिक समाचार पत्र का एक पूरा पृष्ठ आठ भागों में विभाजित होता है। प्रत्येक भाग को कॉलम या स्तम्भ कहते हैं। पत्रिकाओं के पृष्ठों में दो से पाँच तक कॉलम होते हैं। किसी विशेष स्तम्भकार के लेखन को भी स्तम्भ या कॉलम कहते हैं।
कम्पोज़	:	अक्षर योजन, कम्पोज़ करना। किसी समाचार विवरण या पाण्डुलिपि को मुद्रण हेतु मुद्राक्षरों में संयोजित करना। हिन्दी में इसके लिए कम्पोज़ शब्द का प्रयोग होने लगा है।
खरपतवार	:	खेत में फसल के साथ उगने वाली अन्य वनस्पति या घास-पात।
सम्प्रेषण	:	प्रेषित करना, भेजना, किसी बात, विचार आदि को पहुँचाना (कम्यूनिकेशन)।

मात्रक	:	(भौतिक विज्ञान) वह निश्चित मात्रा जिसे आधार मानकर अन्य वस्तुओं का मान निकाला जाता है; एकक; इकाई, जैसे बल का मात्रक।
रूपान्तरित	:	जिसका रूप, आकार आदि बदल दिया गया हो। परिवर्तित।
अनुस्यूत	:	गूँथा या पिरोया हुआ। परस्पर मिला हुआ।
पिरामिड	:	वह बहुफलक जिसका आधार बहुभुज होता है और दूसरे फ़लक त्रिभुजाकार होते हैं, जिनका एक सर्वनिष्ठ शीर्ष होता है।
ताईद	:	हिमायत
महरूम	:	वंचित

3.1.8. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. वर्धा हिंदी शब्दकोश, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, भारतीय ज्ञानपीठ, 2014
2. पत्रकारिता परिभाषा कोश, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 1989
3. फ़ीचर लेखन, संजय श्रीवास्तव, डायमंड बुक्स, 2009
4. पत्रकार-कला, विष्णुदत्त शुक्ल, गणेश शंकर विद्यार्थी, 1930
5. फ़ीचर लेखन, डॉ॰ विजय कुलश्रेष्ठ, हंसा प्रकाशन, 1994

3.1.9. अभ्यास / बोध प्रश्न

अभ्यास

1. निम्नलिखित कथनों में सत्य / असत्य कथन की पहचान कीजिए –

i. फ़ीचर में शब्द क्लिष्ट होने चाहिए।
ii. फ़ीचर समाचार पत्र की उम्र तथा लोकप्रियता बढ़ाने में सहायक सिद्ध होता है।
iii. फ़ीचर लेखन के लिए जितना सम्बन्धित विषय का ज्ञान ज़रूरी है उतना ही भाषा पर अधिकार भी।
iv. फ़ीचर लेखक के लिए ज़रूरी नहीं कि पर्यायवाची शब्द, लोकोक्ति, मुहावरों, कथा-कहानियों, लोककथाओं आदि के प्रति उसका रुझान हो।
v. फ़ीचर पाठक की जानकारी तो बढ़ाता है लेकिन मनोरंजन नहीं करता है।
vi. फ़ीचर हार्ड न्यूज है।
vii. व्याकरण की अशुद्धियाँ फ़ीचर के प्रवाह को रोकती हैं और कई बार तो अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है।
viii. फ़ीचर का शीर्षक संक्षिप्त, सटीक और सारगर्भित होना चाहिए।

2. नीचे दिए गए शब्दों से अधोलिखित वाक्यों के रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –
(मनःस्थिति, खरपतवार, मौलिकता, विष्णुदत्त शुक्ल, इंट्रो, फ़ीचर, फ़ीचर लेखन, स्तम्भ)
   i. आधुनिक समाचार पत्र का एक पूरा पृष्ठ आठ भागों में विभाजित होता है। प्रत्येक भाग को कॉलम या ..... कहते हैं।
   ii. फ़ीचर के विषय में यह कहना गलत नहीं होगा कि इसे पढ़ने के बाद पाठक की ..... वह नहीं रहती जो उसे पढ़ने से पहले थी।
   iii. ..... में समाचार का प्रारम्भिक अनुच्छेद जिसमें समाचार का सार या उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश दिया जाता है।
   iv. खेत में फसल के साथ उगने वाली अन्य वनस्पति या घास-पात को ..... कहते हैं।
   v. मानवीय सम्वेदना से परिपूर्ण लेख जो तथ्यात्मक समाचार या विवरण से भिन्न होता है,उसे ..... कहते हैं।
   vi. संजय श्रीवास्तव द्वारा फ़ीचर पर लिखी पुस्तक का नाम है – .....।
   vii. 'पत्रकार कला' पुस्तक के लेखक हैं – .....।
   viii. लेखन और लेखन शैली सब में ..... होनी चाहिए। आडम्बरयुक्त, सजावटी-दिखावटी चीजें ज्यादा नहीं चलतीं।

संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए –

1. समाचार और फ़ीचर
2. फ़ीचर लेखन : शब्द चयन
3. फ़ीचर का समापन
4. फ़ीचर की भाषा
5. फ़ीचर का मध्य
6. फ़ीचर का महत्त्व

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. फ़ीचर के क्या-क्या विषय हो सकते हैं ? सूची बनाइए।
2. किस फ़ीचर को लम्बी उम्र का वरदान नहीं मिलता है ? लम्बे समय तक प्रभावकारी फ़ीचर के लिए किन-किन बातों की आवश्यकता होती है ?
3. फ़ीचर के क्या-क्या अर्थ दिए गए हैं ?
4. फ़ीचर पाठक के मनोमस्तिष्क को किस तरह प्रभावित करता है ?
5. फ़ीचर के विषय-चयन में किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?
6. अच्छा फ़ीचर पढ़कर कैसा लगता है ? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

7. फ़ीचर लेखक में कलम की सार्थकता किस बात में निहित होती है ?
8. 'बच्चों पर बढ़ता किताबों का बोझ' विषय पर फ़ीचर लिखते समय किन-किन बातों पर ध्यान देना अपेक्षित है।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. "फ़ीचर सिर्फ मनोरंजन ही नहीं करता बल्कि सामाजिक समस्याओं को भी उजागर करता है।" उक्त कथन की मीमांसा कीजिए।
2. 'महिला आरक्षण' पर एक फ़ीचर लिखिए।
3. 'महानगरों में आवास की समस्या : कारण और निवारण' शीर्षक को केन्द्र में रखकर एक फ़ीचर तैयार कीजिए।
4. "आत्महत्याएँ क्यों बढ़ रही हैं ?" इस सवाल को जहन में रखते हुए उसे समसामयिक प्रसंगों से सम्बद्ध करते हुए एक फ़ीचर लिखिए।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 3 : फ़ीचर लेखन

इकाई – 2 : संचार माध्यम और विभिन्न विषयों पर फ़ीचर लेखन

इकाई की रूपरेखा

3.2.0. उद्देश्य कथन
3.2.1. प्रस्तावना
3.2.2. फ़ीचर लेखन और माध्यम
  3.2.2.1. फ़ीचर एवं फ़ीचर लेखन / प्रस्तुति
  3.2.2.2. फ़ीचर लेखन / प्रस्तुति की आवश्यकता
  3.2.2.3. फ़ीचर लेखन / प्रस्तुति के लाक्षणिक-मापदण्ड (Characteristic-Parameters)
    3.2.2.3.1. विषय-वस्तुगत-फीचर्स
    3.2.2.3.2. रूप (शैली) / ढाँचागत
    3.2.2.3.3. अन्य बिन्दु
  3.2.2.4. माध्यम, फ़ीचर-लेखन तथा प्रस्तुति के अन्तस्सम्बन्ध
    3.2.2.4.1. मुद्रित माध्यम
    3.2.2.4.2. श्रव्य-कार्यक्रम
    3.2.2.4.3. दृश्य-श्रव्य माध्यम
3.2.3. विषय-क्षेत्र, माध्यमगत फ़ीचर लेखन-कौशल एवं अनुप्रयोग
  3.2.3.1. विषयानुसार-माध्यमगत फ़ीचर रचना-प्रक्रिया
  3.2.3.2. विषय-क्षेत्र, माध्यम, फ़ीचर लेखन तथा प्रस्तुति-कौशल अनुप्रयोग
    3.2.3.2.1. सामाजिक
    3.2.3.2.2. आर्थिक
    3.2.3.2.3. वैज्ञानिक
3.2.4. पाठ-सार
3.2.5. बोध प्रश्न
3.2.6. व्यावहारिक (प्रायोगिक) कार्य
3.2.7. उपयोगी / सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

3.2.0. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आपको निम्नलिखित मुद्दों की व्यापक जानकारी प्राप्त हो सकेगी –

i. संचार माध्यमों के लिए फ़ीचर लेखन : तात्पर्य, आवश्यकता और दिशाएँ
ii. विभिन्न जनसंचार माध्यमों के लिए फ़ीचर लेखन
iii. विशेष विषय-वस्तु / पाठक-वर्ग / भौगोलिक क्षेत्र एवं फ़ीचर-लेखन-कौशल

iv. सामाजिक, आर्थिक, और वैज्ञानिक आदि विषयक फ़ीचर लेखन तथा रोज़गार के क्षेत्र

v. प्रस्तुतिजन्य व्यावहारिक अनुप्रयोगात्मक कौशल-अर्जन

3.2.1. प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने विशेषकर, मुद्रित माध्यम को लेकर फ़ीचर लेखन के बारे में जाना। साथ ही, यहाँ तक आते-आते आपने माध्यम एवं संचार के तकनीकी रूप तथा हिन्दी के सन्दर्भों से जुड़े उसके भाषिक पक्षों को भी समझा। अब हम, संचार-माध्यमों को लेकर सृजनात्मक लेखन के परिप्रेक्ष्य में, फ़ीचर लेखन की अवधारणा को समझते हुए, फ़ीचर लेखन के कौशल को आत्मसात करने का प्रयास करेंगे।

साथ ही आपके ध्यान में आएगा कि आधुनिक जनसंचार माध्यमों को ध्यान में रखकर, दृश्य-श्रव्य शैली में किसी विषय-विशेष को, 'खबर' न बनाकर उसे किस तरह फ़ीचर के रूप में निर्मित किया जाता है ? तथा इस व्यावहारिक प्रस्तुति – कौशल रूप को किस प्रकार अर्जित किया जाए ? फ़ीचर शैली को पसंद करनेवाले पाठकों / दर्शकों के विशेष वर्ग को ध्यान में रख कर, किस तरह किसी गम्भीर / बौद्धिक विषय को रोचक ढंग से सम्प्रेषित करना होता है ? चलिए, इन सब मुद्दों को समेटते हुए व्यावहारिक कार्य के साथ आगे बढ़ा जाए ...

इस कड़ी में, सबसे पहले हम फ़ीचर लेखन को लेते हुए, फ़ीचर-लेखन से तात्पर्य, उसकी आवश्यकता, तथा अलग-अलग माध्यमों के लिए उसके लेखन सम्बन्धी लक्षणों पर ध्यान देते हुए, माध्यम, फ़ीचर-लेखन तथा प्रस्तुति के अन्तस्सम्बन्धों को जानेंगे :-

3.2.2. फ़ीचर लेखन और माध्यम

जनसंचार माध्यमों का अवलोकन करते समय आपने ध्यान दिया होगा कि उनमें दी जा रही सामग्री कई रूपों / शैलियों में दी जाती है। शिक्षा, विज्ञान-प्रौद्योगिकी के विकास तथा 'विश्वग्राम / भूमण्डलीकरण' की वास्तविकता ने प्रबुद्ध पाठकों की अपेक्षाओं को पूरा करने के अनुरूप, पारम्परिक जनसंचार माध्यमों (समाचार पत्र / पत्रिकाएँ / पुस्तकें आदि) के साथ-साथ दृश्य-श्रव्य, इंटरनेट, मोबाइल आदि त्वरित जनसंचार-माध्यमों द्वारा ई-जर्नलिज़्म आदि को स्थापित किया। परिणामस्वरूप, जनसंचार माध्यमों द्वारा दी जाने वाली सामग्री के रूप, शैली, भाषा, प्रस्तुति आदि में भी तदनुसार अन्तर आता गया। इनमें फ़ीचर लेखन भी एक है। आइए, पहले फ़ीचर एवं फ़ीचर-लेखन / प्रस्तुति की आत्मा को लेकर विचार करें ...

3.2.2.1. फ़ीचर एवं फ़ीचर लेखन / प्रस्तुति

ज्ञातव्य है, 'फ़ीचर' शब्द लेटिन (लतिन) (factura) प्राचीन-फ्रेंच (Faiture) से अँग्रेजी में होता हुआ हिन्दी में प्रचलित हुआ। अँग्रेजी में, इसका शाब्दिक अर्थ है; Form, or Appearance अर्थात हिन्दी में, रूप, प्रस्तुत-आकार से है। इसी आधारभूत अवधारणा के साथ, जनसंचार माध्यमों में भी प्रस्तुत की जाने वाली सामग्री

को रोचक और मनोरंजक ढंग से उकेरना / आकार / रूप देना 'फ़ीचर' है। इसी शाब्दिक अर्थ को लेकर 'फ़ीचर' के लिए, कहीं-कहीं हिन्दी पर्याय के रूप में 'रूपक' का प्रयोग भी किया गया है। परन्तु साहित्य जगत् में, 'रूपक' जिस अलंकार के रूप में प्रयुक्त होता है, उसका जनसंचार माध्यमों के 'फ़ीचर' से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है; अतः हमें जनसंचार माध्यमों के सन्दर्भों में 'फ़ीचर' को स्वतन्त्र रूप से जनसंचारी-लेखन शैली के रूप में ही समझना होगा। हम जानते हैं मुद्रण माध्यम जनसंचार माध्यमों का बुनियादी माध्यम है। परन्तु कालान्तर में, विज्ञान की प्रगति के साथ आज यह – 'माध्यम' (Medium), > माध्यमों (Media) > बहु-माध्यमों (Multi-Media) > अनेक-त्वरित सामासिक माध्यमों (Hyper-Composite-Media) के रूप में हमारे सामने है।

अब देखें, जनसंचार माध्यमों के सन्दर्भ में 'फ़ीचर' को किस तरह परिभाषित किया गया है ? :- 'Dictionary of Media and Journalism' के अनुसार फ़ीचर को 'Story Type' बताते हुए इसे -> "As distinct from news story it tends to be longer, carrying more background information, colour, wider range of sources and journalist's opinion can be prominent /and/ to display prominently or emphasize." (Ed. by Chandrakant P. Singh, IIMC, N. Delhi, I.K. International Pvt. Ltd., N. Delhi, 110016, pg. 97-98, 2004) के रूप में परिभाषित किया गया है। अन्य सैद्धान्तिक परिभाषाओं के अनुसार, "फ़ीचर समाचारमूलक यथार्थ, भावना-प्रधान और सहज कल्पना वाली रसमय एवं संतुलित गद्यात्मक एवं दृश्यात्मक, शाश्वत, निसर्ग और मार्मिक अभिव्यक्ति है।" 'Features with Flair' (1972) के प्रसिद्ध मीडिया लेखक Brain Nicholls ने फ़ीचर को समाचार पत्र की आत्मा कहा है। फ़ीचर के इसी महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा गया है :- "The good newspaper is not just only paper and ink. The good newspaper lives. News is its life blood, leaders are its heart and features may be said to be its soul." (मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया से) डॉ॰ पुरुषोत्तमदास टंडन ने फ़ीचर को गद्य गीत कहा है, जो नीरस लम्बा और गम्भीर नहीं हो सकता ..., यह एक लेख ही है जो, पाठक का मनोरंजन करते हुए उसकी जानकारी बढ़ाता है ... यह किसी विषय अथवा व्यक्ति का रेखाचित्र प्रस्तुत करता है। मुख्यतः ये दो प्रकार के होते हैं :- समाचारी एवं विशिष्ट; सामान्यतः ये तीन शैलियों यथा -> वर्णनात्मक, चित्रात्मक और व्याख्यात्मक-तर्कसंगत में, प्रस्तुत किये जाते हैं (पत्रकारिता सन्दर्भ ज्ञानकोष, लेखक - याकूब अली खाँ, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 26, 1984)। ज़ाहिर है इसमें, समाचार (जानकारी), पाठक-रुचि, दृश्यात्मक पुट / झाँकी, अनौपचारिक / नाटकीय संवाद-शैली एवं मानवीय जीवन से जुड़ी बातों / समस्याओं की प्रमुखता, जैसे तत्त्वों का समावेश रहता है। इन तत्त्वों को लेकर, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक आदि विषयों पर फ़ीचर लेखन / प्रस्तुतीकरण किया जाता है।

अनेक-त्वरित सामासिक जनसंचार-माध्यमों (Hyper-Composite-Media) के अस्तित्व में आने के बाद मुद्रित माध्यम में प्रयुक्त फ़ीचर के पारम्परिक अर्थ का विस्तार हुआ। मसलन 1956 में, जब आकाशवाणी के राष्ट्रीय चैनल से रेडियो-फ़ीचर का प्रसारण आरम्भ हुआ तब उनमें राजनीति, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जैसे विषयों / मसलों पर विषय-सामग्री आने लगी। उसी प्रकार जब, भारत में सिनेमा का आरम्भ हुआ तो, 1913

में आई दादासाहब फालके की प्रथम मूक फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' को भी फ़ीचर फिल्म कहा गया; क्योंकि, इन सब प्रस्तुतियों में समय-विस्तार / लम्बाई के साथ-साथ 'कथातत्त्व' भी मौजूद था। ज्ञातव्य है, 'सिनेमा' के साथ-साथ 'फ़ीचर फिल्म' जैसी अवधारणा भी हमारे यहाँ फ्रांस और इटली से आई। बाद में, दूरदर्शन और अन्य इलेक्ट्रॉनिक माध्यम और उन पर आने वाले विभिन्न शैलियों के कार्यक्रमों में 'दृश्य-श्रव्य फ़ीचर' आने के बाद फ़ीचर शब्द के अर्थ को विस्तार मिला; और यह अपने एकांकी अर्थ (मुद्रित माध्यम) से निकलकर, 'परस्पर मिश्रित / सामासिक माध्यम' Interactive Mixed/Composite-Media का हिस्सा बनकर हमारे सामने आया। फ़ीचर के विस्तृत तात्पर्य को जानने के उपरान्त चलिए, अब तदनुसार फ़ीचर लेखन / प्रस्तुति की आवश्यकता पर विचार किया जाए

3.2.2.2. फ़ीचर लेखन / प्रस्तुति की आवश्यकता

लगभग हर जीव का स्वभाव है आनन्द पाना और आनन्द से रहना। अतः वह, मनोरंजक तरीक़े से रखी गई कठिन से कठिन चीजों को भी आराम से जान लेता है। फ़ीचर-लेखन की आत्मा ही है – 'किसी विषय-वस्तु को मनोरंजक शैली में रखना / सम्प्रेषित करना।' जनसंचार माध्यमों के द्वारा विभिन्न विषय अनेक तरह से परोसे जाते हैं। विशेषकर; विभिन्न घटनाओं / गतिविधियों से सम्बन्धित गम्भीर-समाचार, विज्ञान / प्रौद्योगिकी लेख, साहित्यिक / कला-रचनाओं जैसे विषय, जिस विशेष गहरे-सूचनात्मक / विश्लेषणात्मक लेखन / प्रस्तुति-शैली की माँग रखते हैं, ज़ाहिर है, वह सामग्री विशेष वर्ग के बौद्धिक पाठक / दर्शक को ध्यान में रखकर ही तैयार की जाती है। परन्तु, जनसंचार क्षेत्र की सच्चाई यह है कि उसका बहुत बड़ा प्रयोक्ता वर्ग सामान्य-रुचि रखने वाला सामान्य-शिक्षित होता है; अतः, फ़ीचर शैली में प्रस्तुत की गई सामग्री इस मास-वर्ग (Maas-Group) को भी अपनी ओर खींचती है; जिससे उस माध्यम के मूल्यांक (Rating-Points) में वृद्धि हो जाती है। अन्ततोगत्वा, उसके वाणिज्यिक-लाभ में इज़ाफ़ा होता है। इस प्रकार, आज फ़ीचर-लेखन / प्रस्तुति प्रत्येक जनसंचार माध्यम के लिए अत्यावश्यक मुद्दा है। आइए, हम समझें कि किसी विषयगत एवं रूप / शैलीगत मुद्दों को लेकर माध्यम फ़ीचर लेखन-प्रस्तुति के लाक्षणिक-मापदण्ड क्या हो सकते हैं ?

3.2.2.3. फ़ीचर लेखन / प्रस्तुति के लाक्षणिक-मापदण्ड (Characteristic-Parameters)

किसी भी लेखन को उसके विशेष लक्षण विशिष्टता प्रदान करते हैं। विभिन्न जनसंचारी माध्यमों हेतु विषय अथवा रूपगत सन्दर्भों में फ़ीचर-लेखन / प्रस्तुति के लिए उसके विशेष लक्षण हैं जो उसे, समाचार, लेख, रिपोर्ताज आदि से अलग व्यक्तित्व की पहचान देते हैं। चलिए, पहले हम फ़ीचर के लक्षणों पर विचार करें तदुपरान्त हम, निर्धारित विषय एवं माध्यम के आधार पर उनकी प्रस्तुति एवं अनुप्रयोगों को समझेंगे ...

3.2.2.3.1. विषय-वस्तुगत-फीचर्स

इस श्रेणी की विषय-सामग्री किसी खास बिन्दु / उद्देश्य को लेकर चलती है; तदनुसार उसकी, प्रस्तुति, शैली, ढाँचागत-बनावट, भाषा आदि अलग-अलग आकार ग्रहण करती है। इसी परिप्रेक्ष्य में, निम्नलिखित प्रमुख फीचर्स-प्रकारों पर विचार किया जाए ...

(i) व्यक्तिपरक फ़ीचर : किसी व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व या उसके किसी खास पहलू का जीवन्त / सजीव चित्रण / वर्णन पाठकों / दर्शकों के सामने सम्बोधन आदि शैली में इस प्रकार रखा जाता है कि कथित व्यक्तित्व एक चित्र की भाँति मूर्तमान हो उठे ... उसके नाक-नक्श, हाव-भाव, क्रियाएँ, पहनावा (ड्रेस-कोड) आदि, उसके विशेष व्यवहार का सटीक परिचय दे सकें। किसी चर्चित व्यक्ति या किसी साधारण वर्ग विशेष (मज़दूर आदि) का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे व्यक्ति, जिसने कोई चौंकाने वाला प्रेरक कार्य किया हो, को लेकर व्यक्तिपरक फ़ीचर की रचना की जा सकती है।

(ii) सूचनात्मक फ़ीचर : चूँकि, फ़ीचर भी एक तरह से रोचक शैली में, किसी समाचार का विस्तार है। यह पाठक की उन जिज्ञासाओं को पूरा कर सकता है जो किसी समाचार (सूचना) को पढ़ने के बाद पाठक के मन में पैदा होती हैं। फ़ीचर कथित सूचना को सटीक और विश्लेषणात्मक तरीक़े से दिलचस्प रूप में प्रस्तुत करता है। मसलन, मार्केट में ऐसा रोबोट आया है जो घर के छोटे-मोटे काम कर लेता है, अब इस सूचना पर चटपटे ढंग से फ़ीचर लिखना हो तो आप एक आकर्षक शीर्षक जैसे, "... लो आ गया गृहिणियों के लिए अल्लादीन" दे सकते हैं। और फिर इस जानकारी को विस्तार देते हुए, रोबोट द्वारा किये जाने वाले गृह-कार्यों (Functions), दी जाने वाली सेवाओं (Services) आदि की पूरी सूचना आराम से दे सकते हैं ... ध्यान रखिए, एक उत्पाद (Product) के रूप में, रोबोट की कीमत, उसके प्रकारों आदि के बारे में सांकेतिक जानकारी दी जा सकती है; परन्तु, उसकी निर्माता कंपनी की जानकारी देने की आवश्यकता नहीं है, अन्यथा कथित फ़ीचर विज्ञापन बन जाएगा। सूचना का उद्देश्य यह हो सकता है कि, मशीन मानव के लिए किस प्रकार सहायक बन रही है ...।

(iii) विवरणात्मक फ़ीचर : पर्यटन, किसी शहर / संस्थान की विशेष जानकारी देने, किसी नये मुद्दे / योजना-कार्यक्रम आदि जैसे विषय-क्षेत्र इसके अन्तर्गत आ सकते हैं। इस तरह के फ़ीचर की प्रस्तुति देते समय यह सावधानी बरतनी चाहिए कि फ़ीचर न्यूज़ या विज्ञापन न लगे। कुछ संवादात्मक शैली में इसकी रचना होनी चाहिए ताकि हर वर्ग का पाठक विषयवस्तु में दिये जा रहे विवरण को जानने के लिए उत्सुक लगे।

(iv) विश्लेषणात्मक फ़ीचर : नई शैक्षणिक-नीति, वैज्ञानिक / तकनीकी-अनुसंधान, किसी विशेष वित्तीय मुद्दे (जीएसटी-GST / नोटबंदी आदि), नई / पेचीदा संवैधानिक व्यवस्था जैसे विषय इसके अन्तर्गत आ सकते हैं। इस तरह की प्रस्तुति में जानी वाली सामग्री का चयन तार्किक एवं तुलनात्मक आधार पर होना चाहिए। इस तरह के विषय संतुलित एवं विशेष बौद्धिक रोचक भाषा-शैली की माँग करते हैं।

(v) साक्षात्कार फ़ीचर : किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा अर्जित की गई विशिष्ट उपलब्धि को आधार बना कर इस तरह के फ़ीचर की रचना की जा सकती है। सजीव-स्वाभाविक वार्तालाप को आधार बनाकर सम्बोधन शैली में, समय और स्थान / दूरी (Time and Space) के तकनीकी मानकों (Standards) का ध्यान रखते हुए इस प्रकार के फ़ीचर प्रस्तुत किए जा सकते हैं। विशेषकर, दृश्य-श्रव्य माध्यमों के लिए फ़ीचर रचना में इनका सधा हुआ प्रयोग किया जा सकता है।

(vi) विज्ञापन फ़ीचर : विज्ञापन किसी वस्तु, विचारधारा अथवा मान्यता आदि का हो सकता है। ज़ाहिर है, इस तरह की प्रस्तुति में प्रस्तोता अपनी वस्तु / विचारधारा / मान्यता आदि को आगे बढ़ाना / स्थापित करना चाहता है। यह सब सीधे रूप / तरीक़े में / से दो टूक शब्दों में सपाट बयानी के साथ या मनोरंजक शैली में रखा जाए तो विज्ञापन ही होगा। परन्तु अगर विज्ञापित की जाने वाली वस्तु / विचारधारा / मान्यता आदि को आधार बना कर किसी लेख अथवा नाटक / सिनेमा / टेलिविजन जैसे दृश्य-श्रव्य माध्यम द्वारा कथात्मक शैली में रखा जाए तो वह सशक्त फ़ीचर का काम करता है। अक्षयकुमार-अभिनीत पैडमैन जैसी फ़ीचर फिल्म या शौचालय-निर्माण अभियान को लेकर अमिताभ बच्चन के कई विज्ञापन हमारे सामने हैं, जिनमें कथा एवं सन्देश-कथ्य तत्त्व को खूबसूरती के साथ पिरोकर 'फ़ीचर-प्रस्तुति' के रूप में हमारे सामने रखा गया है।

विषयों / विचारधारों की कोई कमी नहीं है। खेल, कई सामाजिक मुद्दों आदि को लेकर भी नाना प्रकार के फ़ीचर लिखे / प्रस्तुत किए जा सकते हैं। चलिए, अब हम फ़ीचर के रूप / शैली और उसके ढाँचे को लेकर आगे बढ़ें ...

3.2.2.3.2. रूप (शैली) / ढाँचागत

(i) जहाँ, समाचार किसी ने किसी घटना / प्रकरण / गतिविधि जैसे क्रियाकलापों को आधार बनाकर सम्बन्धित तथ्यों, विवरणों, सूचनाओं तथा उपलब्ध विचार को देकर, कब, क्यों, कैसे, कहाँ, कौन पूरा हो जाता है। वहीं, फ़ीचर-प्रस्तुति में किसी भी विषय से जुड़े परिवेश, विविध पक्षों, प्रभावों का जानकारीपरक सामासिक शैली (दृश्य-श्रव्य / मुद्रित) में वर्णन होता है।

(ii) समाचार लिखने वाला स्वयं उस-समाचार का रचयिता नहीं होता, अतः भाषा और लेखन शैली को छोड़कर, उसकी व्यक्तिगत-वैचारिक झलक समाचार में नहीं होती। जबकि, फ़ीचर में, लेखक / निर्माता की विचारधारा, उसकी कल्पना / रचनाशीलता के साथ-साथ उसके व्यक्तित्व की झलक भी मिलती है।

(iii) फ़ीचर में कथातत्त्व की प्रधानता रहती है। लेकिन फ़ीचर केवल कथा नहीं होता अपितु, फ़ीचर कल्पनाजगत् की बातों में खो जाने के बजाय विषय की गहराई में जाकर पाठकों की जिज्ञासा को शान्त करने तथा उन्हें ज़्यादा जागरूक बनाने का काम करता है; अतः इसमें शोधपरक तथ्यों का भी समावेश रहना चाहिए, जो इसे इनडेप्थ फ़ीचर श्रेणी में ले आते हैं। चर्चित मीडियाविद Mr. Toncic ने इनडेप्थ फ़ीचर को इस प्रकार समझाया है : - "Hard news happens immediately after an event, it covers who, what, when, where, why, and how. Whereas soft news and feature articles, specifically in-depth feature articles, which we are doing here, that are a spotlight on something — you can be creative, you can write it in any way that you want, so far as you are telling the story of a specific concept."

(The Glen Echo | The In-depth Feature Feature theglenecho.com/.../12/the-in-depth-feature-feature (From Google)

(iv) फ़ीचर में, अभिधा, व्यंजना एवं लक्षणा शब्दशक्तियों का प्रयोग हो सकता है; जबकि समाचार, अभिधा / सपाटबयानी जैसी शैली को लेकर चलता है। बहुसंख्यक पाठकों में पठनीयता एवं विश्वसनीयता कायम रखने हेतु फ़ीचर को, मनोरंजक, सरस, सुबोध एवं शोधपरक तथ्यों पर आधारित होना चाहिए। इसलिए इसे, लेख या सम्पादकीय पृष्ठ पर प्रकाशित होने वाली विवेचनात्मक शैली में, समीक्षात्मक भी नहीं होना चाहिए। साथ ही, दृश्य-श्रव्य माध्यम के लिए निर्मित फ़ीचर में भाषा केवल सुनने, बोलने, पढ़ने, लिखने के कौशल के साथ-साथ भाषा को देखने के कौशल को भी अपने में समेट कर चलती है।

(v) फ़ीचर को आकर्षक एवं रुचिकर बनाने के लिए, विषय से सम्बन्धित चित्रों, रेखाचित्रों / कार्टूनों, ग्राफिक्स की कुशल तथा आकर्षक सजावटी-प्रस्तुति बहुत ज़रूरी है। हाइपर-मीडिया की वर्तमान तकनीक के कारण मुद्रित तथा दृश्य-श्रव्य माध्यमों में प्रस्तुति आसान और आकर्षक हो गई है जिसमें, तरह-तरह के रचनात्मक प्रयोगों की सम्भावना बढ़ गई है।

3.2.2.3.3. अन्य बिन्दु

(i) फ़ीचर का उद्देश्य : दृश्य-श्रव्य माध्यमों के लिए फ़ीचर निर्माण काफी श्रमसाध्य और खर्चीला होता है; अतः, हमें अपने मंतव्य को लेकर स्पष्ट होना चाहिए। इसी के आधार पर फ़ीचर के उद्देश्य का निर्धारण होता है। जैसे, किसी दुर्घटना को लेकर प्रस्तुत किए जाने वाले फ़ीचर का उद्देश्य तय हो जाने पर दुर्घटना के इतिहास, दुघर्टना के प्रभावों, दुर्घटना की रोकथाम के तरीकों या दुर्घटना के यान्त्रिक पक्ष पर प्राधिकृत जानकारी दी जा सकती है।

(ii) शीर्षक तथा आमुख : पाठक / दर्शक को फ़ीचर की ओर आकर्षित करने हेतु, विषय की सम्पूर्णता को ध्यान में रखकर फ़ीचर का उपयुक्त / आकर्षक शीर्षक एवं जिज्ञासु भाषा में लिखा जाना चाहिए। शीर्षक, बनावटी या तुकबन्दी वाली भाषा से दूर रहे तो अच्छा है।

अब हम विभिन्न विषयों पर फ़ीचर लेखन के व्यावहारिक पक्ष की ओर बढ़ेंगे परन्तु इससे पहले संक्षेप में हम, माध्यम, फ़ीचर-लेखन तथा प्रस्तुति के बीच के अन्तस्सम्बन्धों को समझ लें ...

3.2.2.4. माध्यम, फ़ीचर-लेखन तथा प्रस्तुति के अन्तस्सम्बन्ध

इसी (प्रस्तुत) पाठ '3.2.2.1. फ़ीचर एवं फ़ीचर लेखन / प्रस्तुति' के अन्तर्गत आपने फ़ीचर-लेखन / प्रस्तुति के सन्दर्भ में जनसंचार माध्यमों के उल्लेख पर ध्यान दिया होगा। इसी परिप्रेक्ष्य में हम, विभिन्न जनसंचार माध्यमों के लिए फ़ीचर-लेखन / प्रस्तुति कौशल को लेकर आधारभूत बिन्दु ओं को जानेंगे :-

3.2.2.4.1. मुद्रित माध्यम

विशेषकर, मुद्रित माध्यम की पत्रकारिता में, जहाँ; समाचारों, लेखों, सम्पादकीय जैसी तकनीकी शैली में लिखी गई सामग्री / विषय-वस्तु की भरमार रहती है, जो अधिकतर उच्च शिक्षित / प्रबुद्ध वर्ग को आकर्षित करती है; वहीं, सामान्य पाठक वर्ग के लिए फ़ीचर का विशेष महत्त्व रहता है। अतः इस वर्ग को ध्यान में रख कर फ़ीचर की भाषा-शैली, प्रचलित-सरल / मनोरंजक / शब्द-चित्रों / मुहावरों-कहावतों वाली सम्प्रेषणीय / सम्बोधनीय / विवरणात्मक / सटीक जैसे रूप को अपनाकर, रचित होती है। इसे रोचक और रचनात्मक बनाने के लिए, सम्बन्धित फोटो / कार्टून / रेखाचित्र / डायग्राम (आरेखन) आदि भी आकर्षक ढंग से दिये जा सकते हैं। अतः अब, गम्भीर विषयों पर भी मुद्रित-फ़ीचर आ रहे हैं।

3.2.2.4.2. श्रव्य-कार्यक्रम

आकाशवाणी पर आने वाले 'हवामहल' जैसे कार्यक्रम को कौन भूल सकता है। इस तरह श्रव्य-कार्यक्रमों के अन्तर्गत प्रस्तुत रेडियो-फ़ीचर शैली में न जाने कितने रूपक चर्चित हुए। इस फ़ीचर-शैली को लोकप्रिय बनाने में उपेन्द्रनाथ 'अश्क', डॉ॰ रामकुमार वर्मा, कर्तार सिंह दुग्गल, विष्णु प्रभाकर, कृष्णचन्द्र, के.पी. सक्सेना जैसे कई नाटककारों के नाम दिये जा सकते हैं। फ़ीचर की प्रस्तुतियों को सुनने पर आप पाएँगे कि इस प्रकार के लेखन के स्तर पर किस प्रकार शब्दचित्रों, विशेष-ध्वनियों, संगीत-लहरियों, संवाद-प्रस्तुतियों, पात्र / परिस्थिति अनुसार भाषिक-रूप आदि को समेटते हुए, माध्यम के अनुसार, नाटकीय-शैली में मानवीय-भावों आदि का प्रस्तुतीकरण हुआ है। आज की पीढ़ी को आकर्षित करने वाले, अत्याधुनिक इलेक्ट्रॉनिक साधनों से बद्ध (लेस) FM चैनल भी तरह-तरह के फ़ीचर, डॉक्यूड्रामा शैली का समन्वय करते हुए, सरकारी एवं निजी (ऑडियो-डिस्क, मोबाइल आदि) श्रव्य माध्यमों द्वारा, विषयानुसार विशेष ध्वनि-प्रभावों के साथ आसानी से सुने जा सकते हैं। चूँकि, रेडियो-माध्यम में समय की पाबंदी अहम मुद्दा है अतः, फ़ीचर प्रस्तुति-प्रारूप में संक्षिप्तता / सटीकता का विशेष ध्यान रखा जाता है।

3.2.2.4.3. दृश्य-श्रव्य माध्यम

(i) दृश्य-श्रव्य माध्यम की पत्रकारिता में फ़ीचर का विशेष महत्त्व है। जैसे कि इसी पाठ के मुद्दे 3.2.2.1. (फ़ीचर एवं फ़ीचर-लेखन / प्रस्तुति) में फ़ीचर को परिभाषित करते हुए बताया गया है कि "अँग्रेजी में, इसका शाब्दिक अर्थ है; Form, or Appearance अर्थात हिन्दी में, रूप, प्रस्तुत-आकार से है।" अतः फ़ीचर अपनी मूल प्रकृति / स्वरूप / व्यक्तित्व / पहचान को लेकर, अपने मूर्त होने के अर्थ को सार्थक करते हुए साकार के अधिक नज़दीक है। यही कारण है कि विचारों की प्रभावशाली एवं मूर्त / स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए, दूरदर्शन जैसी दृश्य-श्रव्य यान्त्रिक-माध्यम सुविधा उपलब्ध हो जाने के बाद पत्रकारिता के क्षेत्र में क्रान्तिकारी बदलाव आए। परिणामस्वरूप, दृश्य-श्रव्य यान्त्रिक-माध्यम का साथ पाकर 'फ़ीचर' सार्थक / सशक्त अभिव्यक्ति देने हेतु अपनी मूल आत्मा (दृश्यता /

Visuality) को प्राप्त हुआ। आज, विभिन्न विषय-क्षेत्रों (सामाजिक / राजनैतिक / आर्थिक / वैज्ञानिक / साहित्यिक-सांस्कृतिक आदि) से जुड़ा हुआ कोई भी महत्त्वपूर्ण विषय-मुद्दा, दृश्य-श्रव्य (जनसंचार) माध्यम (परम्परागत /, इलेक्ट्रॉनिक); -> थियेटर, सिनेमा, टी.वी., इंटरनेट, स्मार्ट-मोबाइल आदि का साथ पाकर अपनी अपेक्षित / लक्षित सार्थक अभिव्यक्ति को प्राप्त होता है। चूँकि, मनोवैज्ञानिक रूप से ये माध्यम सशक्त, प्रभावशाली एवं लोकप्रिय होने के कारण फ़ीचर-सामग्री की काफ़ी माँग रखते हैं, अतः दृश्य-श्रव्य माध्यमों के लिए फ़ीचर-पटकथा लेखन / निर्माण बहुत महत्त्वपूर्ण हुआ है।

(ii) फ़ीचर एवं फ़ीचर-फिल्म :- यहाँ, तक़नीकी सन्दर्भों में ध्यान देने वाली बात है कि कथा-फिल्म / सिनेमा को भी फ़ीचर-फिल्म कहा जाता है। स्पष्ट है, इस सन्दर्भ में फ़ीचर का वही अर्थ नहीं है जो पत्रकारिता जगत् में है। हाँ, प्रधानतः, फ़ीचर-फिल्म के रूप / की शैली में कथातत्त्व की प्रधानता होने के कारण इसे फ़ीचर फिल्म की श्रेणी में रखा जाता है। अतः, ज़ाहिर है मधुर भंडारकर की फिल्म पेज-3 (2005) पत्रकारिता के विषय पर आधारित होने के बावज़ूद श्रव्य-दृश्य पत्रकारिता का फ़ीचर न होकर फ़ीचर-फिल्म ही है। जबकि मोबाइल पर होने वाले लाखों रुपयों के साइबर-फ्रॉड को लेकर बनी टी.वी. चैनल-प्रस्तुति कथातत्त्व होने के बाद भी दृश्य-श्रव्य फ़ीचर ही है ... (सन्दर्भ :- 18/6/2018 को, सुबह 08.30 के आसपास आई / प्रस्तुति, न्यूज़-24 टी.वी. चैनल "जामताड़ा (छत्तीसगढ़) में साइबर फ्राड के सबसे ज्यादा मामले")

प्रस्तुत विवेचन से आपके ध्यान में आ गया होगा कि माध्यम, फ़ीचर-लेखन तथा प्रस्तुति के बीच किस तरह से अन्तस्सम्बन्ध हो सकते हैं। अब आप यह समझने के लिए उत्सुक होंगे कि विभिन्न माध्यमों को लेकर विभिन्न विषयों पर किस प्रकार से फ़ीचर लेखन किया जाए ? चलिए, इस दिशा में आगे बढ़ते हैं ...

3.2.3. विषय-क्षेत्र, माध्यमगत फ़ीचर लेखन-कौशल एवं अनुप्रयोग

विशेषकर भारत जैसे बहु-सांस्कृतिक, बहु-मतमतान्तरों, बहु-संख्यक एवं अपेक्षाकृत कम शिक्षा दर वाले देश में मीडिया की भूमिका बहुत अहम रहती है। ऐसी परिस्थितियों में फ़ीचर-शैली काफ़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ज्ञान-विज्ञान के विस्फोट से नये-नये क्षेत्र एवं सन्देश-सम्प्रेषण के कई माध्यम हमारे सामने हैं। ज़ाहिर है, विषय तथा माध्यम के अनुसार किसी रचना को ख़ास अंदाज़ में प्रस्तुत करने का तरीक़ा अलग होता है ... इसी सन्दर्भ में हम, माध्यम को ध्यान में रखते हुए विषय-विशेष पर फ़ीचर (लेखन / प्रस्तुति) को लेकर प्रायोगिक चर्चा करेंगे।

3.2.3.1. विषयानुसार-माध्यमगत फ़ीचर रचना-प्रक्रिया

सन्देश-सम्प्रेषण के लिए विषय एवं माध्यम को ध्यान में रख कर हम अपनी अभिव्यक्ति शैली के कौशल को प्रभावशाली बनाने का प्रयास करते हैं। इसी आलोक में, लक्षित विषयाभिव्यक्ति हेतु अलग-अलग जनसंचार

माध्यमों को ध्यान में रखकर फ़ीचर शैली की रचना-प्रक्रिया तय की जा सकती है। इस पक्ष को, यहाँ दिये जा रहे कतिपय उदाहरणों / नमूनों को ध्यान में रखकर, फ़ीचर-प्रस्तुति के कौशल (Skill) और उसके अनुप्रयोग (Application) को ध्यान में रख जा सकता है।

3.2.3.2. विषय-क्षेत्र, माध्यम, फ़ीचर लेखन तथा प्रस्तुति-कौशल अनुप्रयोग

चूँकि विषयों का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है, अतः सुविधा की दृष्टि से फ़ीचर-लेखन के तीन विषय-मुद्दों को उदाहरण के तौर पर दिया जा रहा है। इनको लेकर हम माध्यम एवं प्रस्तुति-कौशल पर विचार कर सकते हैं :-

3.2.3.2.1. सामाजिक

"सुरक्षा कवच-पोक्सो एक्ट ?" ये वो चंद शहर हैं जो पिछले कई दिनों से सुर्खियों में हैं। इन सभी शहरों में पिछले दिनों ऐसी घटनाएँ देखने को मिलीं, जिसने देश में रह रहे हर शख्स को अंदर से झकझोर दिया। कठुआ में 8 साल की बच्ची से रेप और हत्या, इंदौर में 4 महीने की बच्ची से बलात्कार के बाद हत्या, सूरत में 11 साल की लड़की का दुष्कर्म और हत्या। इन घटनाओं पर देशभर में इतना आक्रोश है कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कैबिनेट की बैठक में पॉक्सो एक्ट में बदलाव करने का फैसला लिया है।

अब सवाल ये उठता है कि आखिर 'पोक्सो ऐक्ट' या POCSO Act है क्या ... ? तो चलिए, जानते हैं ... 'पोक्सो ऐक्ट' या 'POCSO Act'. POCSO का पूरा नाम है The Protection Of Children From Sexual Offences Act या यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण करने सम्बन्धी अधिनियम। यह विशेष कानून सरकार ने साल 2012 में बनाया था। इसके जरिए नाबालिग बच्चों के साथ होने वाले यौन अपराध और छेड़छाड़ के मामलों में कार्रवाई की जाती है। यह एक्ट बच्चों को सेक्सुअल हैरेसमेंट, सेक्सुअल असॉल्ट और पोर्नोग्राफी जैसे गम्भीर अपराधों से सुरक्षा प्रदान करता है। वर्ष 2012 में बनाए गए इस कानून के तहत अलग-अलग अपराध के लिए अलग-अलग सजा तय की गई है। यह अधिनियम पूरे भारत पर लागू होता है। पॉक्सो कानून के तहत सभी अपराधों की सुनवाई, एक विशेष न्यायालय द्वारा कैमरे के सामने बच्चे के माता-पिता या जिन लोगों पर बच्चा भरोसा करता है, उनकी उपस्थिति में होती है। यदि अभियुक्त एक किशोर (टीन एज) है, तो उसके ऊपर किशोर न्यायालय अधिनियम में केस चलाया जाएगा। इस एक्ट में यह नियम भी है कि यदि कोई व्यक्ति यह जानता है कि किसी बच्चे के साथ गलत कृत्य हुआ तो उसे इसकी रिपोर्ट नजदीकी थाने में देनी चाहिए, अन्यथा उसे भी छह महीने तक की जेल हो सकती है। बच्चे की मेडिकल जाँच बच्चे के माता-पिता या किसी अन्य व्यक्ति, जिस पर बच्चे का विश्वास हो, की उपस्थिति में की जानी चाहिए। और पीड़ित अगर लड़की है तो उसकी मेडिकल जाँच महिला चिकित्सक द्वारा ही की जानी चाहिए। पुलिस की जिम्मेदारी बनती है कि मामले को 24 घंटे के अन्दर बाल कल्याण समिति की निगरानी में लाये। मेडिकल जाँच और केस की सुनवाई बंद कमरे में करने का प्रावधान है; इस दौरान बच्चे की पहचान गुप्त रखना भी ज़रूरी है। स्पेशल कोर्ट, उस बच्चे को दिये जाने वाली मुआवजे की राशि भी तय कर सकता है। (पाठ-लेखक द्वारा सम्पादित)

(स्रोत:- गूगल से साभार https://hindi.oneindia.com/news/features/here-s-you-need-know-about-pocso-act/) कठुआ, इंदौर, सूरत, उन्नाव ...

इस फ़ीचर सामग्री को, इसी पाठ के मुद्दे 3.2.2.4 में की गई चर्चा के आधार पर, रेडियो एवं टी.वी. द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

3.2.3.2.2. आर्थिक

*** नोट बंदी का जिन्न फिर बाहर आया**

"देश के अलग-अलग हिस्सों में एटीएम और बैंकों में नगदी की कमी को लेकर फिर देखिए लम्बी-लम्बी कतारें ... इसे सरकार ने अचानक बढ़ी माँग का नतीजा बताया है। सरकार ने सफाई दी कि इन जगहों पर कमी को तेजी से पूरा करने के लिए कदम उठाए जा रहे हैं। वहीं वित्त मंत्रालय के दावे के मुताबिक यह कैश संकट एक झटके में देशभर के एटीएम से हुई निकासी के चलते पैदा हुआ है। आर्थिक मामलों के सचिव ने बताया कि पिछले 15 दिनों में सामान्य से तीन गुना ज्यादा नोटों की निकासी हुई है।

कैश की कमी : क्या फिर जमा होने लगी ब्लैक मनी ? सरकार का जवाब – कह नहीं सकते

वित्त मंत्री अरुण जेटली ने कहा है कि बैंकों के पास पर्याप्त नगदी है और सरकार स्थिति की समीक्षा कर रही है। बिहार, उत्तरप्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में कैश की किल्लत अचानक बढ़ गई है। आर्थिक मामलों के सचिव एस.सी गर्ग ने मंगलवार को बाकायदा प्रेस कांफ्रेंस की और सरकार के पास नगदी की कमी वाली खबरों का खण्डन किया। एस.सी गर्ग ने कहा कि सरकार पाँच सौ के नोट की छपाई पाँच गुना बढ़ा रही है। मौजूदा वक्त में हर दिन जितने 500 के जितने नोट छापे जा रहे हैं, उनकी कुल कीमत 500 करोड़ है। जिसे पाँच गुना बढ़ाकर 2500 करोड़ रुपये प्रतिदिन किया जाएगा।

सरकार के मुताबिक उसके पास पर्याप्त मात्रा में करेंसी मौजूद है और अगले 2 से 3 दिनों के अंदर स्थिति को सामान्य कर लिया जाएगा। वहीं ममता बनर्जी ने इसे नोटबंदी पार्ट टू करार देते हुए दो और राज्यों का नाम दिया जहाँ कैश की किल्लत देखी जा रही है।"

ज़ाहिर है, इस तरह की प्रस्तुति टी.वी. पर प्रभावशाली तरीके से आई ...

साभार : (नेट से ... News Wrap: देश में कैश की किल्लत, क्या जमा होने लगी ब्लैकमनी, WhatsApp में जुड़ा नया फ़ीचर, (नई दिल्ली, 17 अप्रैल 2018, अपडेटेड 20:18 IST)

(* शीर्षक एवं सम्पादन पाठ-लेखक द्वारा)

3.2.3.2.3. वैज्ञानिक

मैंने विज्ञान लेखन कैसे शुरू किया ?

देवेंद्र मेवाड़ी

"अपने आसपास की घटनाओं को देखा, मन में कुतूहल हुआ, उनके बारे में पढ़ा, लगा कितनी रोचक बात है – मुझे दूसरों को भी बताना चाहिए। सर्दियों की शुरूआत में हमारे गाँव का सारा आकाश प्रवासी परिंदों से भर जाता था। माँ ने बताया वे 'मल्या' हैं। ठंड लगने पर दूर देश से आती हैं। गर्म जगहों को जाती हैं। जाड़ा खत्म होने पर फिर लौट जाती हैं। बिल्कुल हमारी तरह। हमारे गाँव के लोग भी सर्दियों में माल-भाबर के गर्म गाँव में चले जाते थे। पक्षियों के इस व्यवहार के बारे में पढ़ा और लेख लिखा – "जानि शरद ऋतु खंजन आए।" बरसात के बाद गायब हो जाने वाले मेंढ़कों, छिपकलियों, साँपों और घोंघों के बारे में एक और लेख लिखा – शीत निष्क्रियता। हम अपनी अंग्रेजी पाठ्यपुस्तक में बचपन में एक कविता पढ़ते थे। इस लेख की शुरूआत में शीत ऋतु की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए मैंने कवि की इन पंक्तियों का प्रयोग किया थाः

द नार्थ विंड देट ब्लो, एंड वी शैल हैव स्नो एंड व्हाट विल द स्वालो डू दैन ?

दोनों लेख एक भावुक पत्र के साथ सम्पादक 'विज्ञान जगत्' को भेज दिये कि न जाने ये लेख छपेंगे या नहीं, लेकिन मैं चाहता हूँ कि विज्ञान के रहस्यों के बारे में मैं लिखता रहूँ। उत्तर में मिले पत्र ने मुझे हतप्रभ कर दिया। उस पत्र ने मुझमें विज्ञान-लेखन की लौ जगाकर मुझे विज्ञान-लेखक बना दिया। 'विज्ञान जगत्' के सम्पादक श्री आर.डी. विद्यार्थी ने लिखा था – "तुम्हारे दोनों लेख 'विज्ञान जगत्' के संयुक्तांक में प्रकाशित कर रहा हूँ। तुम्हारे विज्ञान विषयक लेख मैं प्रकाशित करूँगा।" (साभार : www.newswriters.in, पाठ-लेखक द्वारा सम्पादित) इन उदाहरणों में आप विषय-प्रस्तुति, भाषा की सरलता एवं सम्बोधन शैली पर विशेष ध्यान दे सकते हैं। ज़ाहिर है, जनसंचार पत्रकारिता के सभी क्षेत्रों (दृश्य, श्रव्य एवं दृश्य-श्रव्य) के माध्यमों (मुद्रण / श्रव्य (रेडियो / सी.डी. / डिस्क आदि) एवं टी.वी. / कंप्यूटर / सोशल-मीडिया आदि चैनलों) में फ़ीचर विधा (सामग्री) की बहुत माँग है। निज़ी तौर पर भी इस दिशा में काफी कार्य कर रोज़गार प्राप्त किया जा सकता है। सैकड़ों चैनल हैं जो इस विधा में सामग्री चाहते हैं ...

3.2.4. पाठ-सार

प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि आज, पत्रकारिता के सभी क्षेत्रों, विधाओं और माध्यमों में अपने विचारों की अभिव्यक्ति / सम्प्रेषण के लिए, फ़ीचर अपनी जीवन्त शैली के चलते बहुत लोकप्रिय है। साथ ही, फ़ीचर-लेखन / प्रस्तुति के लिए कौनसे लाक्षणिक मापदण्ड काम में लाए जाते हैं ? आधुनिक बहु / त्वरित-जनसंचार माध्यमों को ध्यान में रखकर फ़ीचर-रचना और उसकी प्रस्तुति के लिए किन-किन तकनीकी बातों का ध्यान रखना होता है। इसी सन्दर्भ में आपने जाना कि, भाषा को, प्रयोजनमूलकता के आधार पर उसके प्रायोगिक/

तकनीकी रूप को विस्तार देना चाहिए ताकि इस दिशा में आए रोज़गार के नये अवसरों का पूरा लाभ उठाया जा सके। कुल मिलाकर, आप इस व्यावहारिक-तकनीकी ज्ञान को हासिल कर, मीडिया के क्षेत्र में बढ़िया रोज़गार प्राप्त कर सकते हैं।

3.2.5. बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. फ़ीचर से क्या तात्पर्य है ?
2. इन-डेप्थ-फ़ीचर (in-depth feature) लेखन की आवश्यकता क्यों पड़ती है ?
3. फ़ीचर लेखन के लिए कौनसी प्रमुख शैली अपनानी चाहिए?
4. फ़ीचर लेखन जनसंचार के किन-किन माध्यमों में प्रयुक्त होता है?
5. 'हवामहल' कौनसे जनसंचार माध्यम से जुड़ा हुआ है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. फ़ीचर लेखन के लाक्षणिक मापदण्डों को समझाइए।
2. दृश्य-श्रव्य माध्यम हेतु फ़ीचर प्रस्तुति पर 300 शब्दों की टिप्पणी लिखिए।
3. विषयानुसार-माध्यमगत फ़ीचर से क्या तात्पर्य है ? सोदाहरण समझाइए।
4. किसी खेल-टूर्नामेंट को लेकर समाचार-पत्र के लिए फ़ीचर तैयार कीजिए।
5. फ़ीचर की लोकप्रियता को लेकर अपने विचार लिखिए।

3.2.6. व्यावहारिक (प्रायोगिक) कार्य

1. किसी रेडियो / टी.वी.चैनल के लिए 5 मिनट का कोई फ़ीचर तैयार कीजिए।

3.2.7. उपयोगी/सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. जनसंचार कल, आज और कल, लेखक : चन्द्रकान्त सरदाना और कृ. शि. मेहता, ज्ञान गंगा, 205-सी चावड़ी बाज़ार, दिल्ली – 110006, प्रथम संस्करण 2004
2. जनसंचार : सिद्धान्त और व्यवहार, लेखक : प्रो. जे.वी. विलानिलम, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ आकदमी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, बानगंगा, भोपाल-462003
3. Mass Communication And Journalism In India; by D.S. Mehta, Allied Publication Pvt. Limited, 1/13-14 Asaf Ali Road, New Delhi, 1979
4. मीडिया भूमण्डलीकरण और समाज, सं. : संजय द्विवेदी, यश पब्लिकेशन 1/11848, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली- 110032, 2015

5. संचार माध्यम लेखन, लेखक : गौरीशंकर रैणा, वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली -110002, 2006
6. सम्पूर्ण पत्रकारिता, लेखक : डॉ॰ अर्जुन तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी -221001

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 3 : फ़ीचर लेखन

इकाई – 3 : रिपोर्ताज : अर्थ एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

3.3.00. उद्देश्य कथन
3.3.01. प्रस्तावना
3.3.02. रिपोर्ताज का परिचय
3.3.03. रिपोर्ताज का अर्थ
3.3.04. रिपोर्ताज का स्वरूप
3.3.05. रिपोर्ताज का ढाँचा
    3.3.05.1. प्रारम्भ
    3.3.05.2. मध्य
    3.3.05.3. अन्त
    3.3.05.4. शीर्षक
3.3.06. रिपोर्ताज के तत्त्व
    3.3.06.1. अन्तर्वस्तु
    3.3.06.2. प्रतिपाद्य
    3.3.06.3. भाषा-शैली
3.3.07. पाठ सार
3.3.08. कठिन शब्दावली
3.3.09. उपयोगी ग्रन्थ-सूची
3.3.10. अभ्यास / बोध प्रश्न

3.3.00. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. रिपोर्ताज के सैद्धान्तिक पक्ष की जानकारी प्राप्त करेंगे।
ii. रिपोर्ताज का अर्थ और उसका स्वरूप समझ सकेंगे।
iii. रिपोर्ताज के स्वरूप को ठीक से जानने के लिए उसके तत्त्वों से परिचित हो सकेंगे।
iv. समझ पाएँगे कि रिपोर्ताज लेखक को आरामदायक स्थितियों से बाहर निकलकर खतरों से खेलना भी पड़ता है।
v. जान पाएँगे कि रिपोर्ताज लेखन के लिए जितना भावुक होना ज़रूरी है उतना ही परिश्रमी और चिन्तनशील भी।
vi. जान पाएँगे कि रिपोर्ताज की मूलभूत विशेषता है – आँखों देखी घटना का तत्काल मार्मिक वर्णन।

vii. आजकल लिखे जा रहे संस्मरणात्मक रिपोर्ताजों से परिचित हो सकेंगे।

3.3.01. प्रस्तावना

गद्य विधा रिपोर्ताज का प्रभावी और परिपक्व रूप द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हमारे सामने आया। इस विश्वयुद्ध में सात करोड़ से अधिक लोग मारे गए थे। यह मानव इतिहास का सबसे बड़ा विध्वंसकारी और घातक युद्ध था। पत्रकार, साहित्यकार युद्ध-स्थलों से अखबारों को युद्ध की विभीषिकाओं की जो रिपोर्ट या समाचार भेज रहे थे वे बहुत मार्मिक थे। वे कोरे समाचार नहीं थे बल्कि सम्वेदना की स्याही से लिखे हुए दर्द भरे ऐसे लेख थे जिनको पढ़कर किसी पत्थर दिल का हृदय भी पसीज जाए। उन समाचारों ने मानव सभ्यता को झिंझोड़कर रख दिया था। युद्ध-स्थल से जो टिप्पणीयुक्त मार्मिक विवरण या समाचार या रिपोर्ट आयीं वे ही रिपोर्ताज की श्रेणी में आयीं। यही वह समय था जब रिपोर्ताज का अखबारी दुनिया से साहित्य की दुनिया में प्रवेश हुआ। वर्तमान में रिपोर्ताज का जितना महत्त्वपूर्ण स्थान पत्रकारिता के क्षेत्र में है उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान साहित्य जगत् में भी है।

रिपोर्ताज की सबसे पहली और अन्तिम खास बात यह होती है कि इसमें जो घटना घट रही होती है उसका आँखों देखा मार्मिक विवरण लेखक प्रस्तुत करता है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि रिपोर्ताज गत्यात्मक होता है। और रिपोर्ताज लेखक की सूक्ष्म दृष्टि से बारीक से बारीक चीज भी नहीं छूटती है। लेखक हर घटना, वस्तु, वातावरण, लोगों आदि को इस दृष्टि से रिपोर्ताज में समाहित करता है कि काम की एक भी बात न छूटे और बेकार की एक भी चीज उस आलेख का हिस्सा न बने। इस दृष्टि से लेखक को कभी-कभी निर्मम भी बनना पड़ता है। यह निर्ममता इसलिए कि सत्य और तथ्य के साथ रिपोर्ताज की कथात्मकता और काव्यात्मकता बाधित न हो।

3.3.02. रिपोर्ताज का परिचय

रिपोर्ताज का जन्म भले ही युद्ध की विभीषिका से हुआ मगर बाद में विशाल पैमाने पर फैली भूख, मौत, महामारी, अकाल, बाढ़ आदि आपदाएँ-विपदाएँ भी रिपोर्ताज के विषय बने। रिपोर्ताज उन गलत स्वार्थी नीतियों की बखिया भी उधेड़ता है जिन्होंने इन विद्रूपताओं को जन्म दिया। और जो मानव को जीते-जी लाश में तब्दील कर देती हैं। नारकीय जीवन जीने को बाध्य कर देती हैं। अपने जन्म के समय रिपोर्ताज की आँखों में आँसू थे। रिपोर्ताज समाचार की तरह या कहें रिपोर्ट की तरह मात्र सूचना नहीं देता बल्कि घटनाओं का हृदयविदारक चित्रण करता है और मानवीय तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना भी करता है। रिपोर्ताज 'घटना क्यों घटी' का विवेचन-विश्लेषण करता है। वह घटना को मात्र एक कोण से नहीं देखता बल्कि हर उस कोण से देखता है कि जिसके छूट जाने से रिपोर्ताज अधूरा लग सकता है ।

आँसुओं से जिस रिपोर्ताज का प्रारम्भ हुआ था आज उसकी झोली में दुःख के साथ खुशी भी शामिल है। आँसू ज़िंदगी की सच्चाई हैं लेकिन सिर्फ आँसू ही नहीं बल्कि जीवन का सच होठों पर हँसी की लकीर भी है।

इसीलिए अब रिपोर्ताज मेले, उत्सव, त्योहार आदि पर भी लिखे जाते हैं। रिपोर्ताज काल्पनिक नहीं होते लेकिन कहीं-कहीं काल्पनिक रिपोर्ताज के दर्शन भी होते हैं। इस दृष्टि से फणीश्वरनाथ रेणु का नाम लिया जा सकता है।

हिन्दी में रिपोर्ताज लेखन 1936 में शुरू हुआ। सर्वप्रथम 1938 में शिवदान सिंह चौहान द्वारा लिखित रिपोर्ताज 'लक्ष्मीपुरा', 'रूपाभ' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। शिवदान सिंह चौहान का 'मौत के खिलाफ ज़िंदगी की लड़ाई' रिपोर्ताज 'हंस' में प्रकाशित हुआ। 1944 में बंगाल के अकाल की भयावहता पर रांगेय राघव ने 'अदम्य जीवन' नाम से रिपोर्ताज 'विशाल भारत' में लिखे जो बाद में 1946 में 'तूफ़ानों के बीच' नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय 1942 में बंगाल में अकाल पड़ा। यह अकाल केवल प्राकृतिक प्रकोप नहीं था बल्कि साम्राज्यवाद और पूँजीवाद का जनता पर कहर था। उनकी शोषण की कुटिल नीतियों का नतीजा था। इस अकाल और रोग से पीड़ित लोगों की सेवा-सहायता के लिए डॉ॰ कुंटे के नेतृत्व में जो मेडिकल जत्था आगरा से बंगाल गया था उसमें लेखक के रूप में रांगेय राघव शामिल थे। उन्होंने वहाँ जो देखा उसी को 'तूफानों के बीच' में लिखा।

'तूफानों के बीच' में लेखक ने उन साम्राज्यवादी नीतियों का पर्दाफ़ाश किया है जिनके कारण मानवता शर्मसार हुई। रांगेय राघव ने पुस्तक की भूमिका में लिखा है "बंगाल का अकाल मानवता के इतिहास का बहुत बड़ा कलंक है। शायद क्लियोपेट्रा भी धन के वैभव और साम्राज्य की लिप्सा में अपने गुलामों को इतना भीषण दुःख नहीं दे सकी जितना आज एक साम्राज्य और अपने ही देश के पूँजीवाद ने बंगाल के करोड़ों आदमी, औरतों और बच्चों को भूखा मारकर दिया है। आगरे के सैकड़ों मनुष्यों ने दान नहीं, अपना कर्तव्य समझकर एक मेडिकल जत्था बंगाल भेजा था। जनता के इन प्रतिनिधियों को बंगाल की जनता ने ही नहीं, वरन् मन्त्रीमण्डल के सदस्यों तक ने धन्यवाद दिया था। किन्तु मैं जनता से स्फूर्ति पाकर यह सब लिख सका हूँ। मैंने यह सब आँखों-देखा लिखा है।"

'तूफानों के बीच' के रिपोर्ताजों के ऐतिहासिक महत्त्व का उल्लेख करते हुए अमृतराय ने कहा कि – "जहाँ तक मैं जानता हूँ रांगेय राघव के उन्हीं रिपोर्ताजों से हिन्दी में रिपोर्ताज लिखने का चलन शुरू हुआ। मैंने और दूसरों ने रिपोर्ताज लिखे, लेकिन जो बात रांगेय राघव के लिखने में थी वह किसी को नसीब न हुई।"

फणीश्वरनाथ रेणु के 'ऋणजल धनजल' तथा 'नेपाली क्रान्ति कथा' प्रसिद्ध रिपोर्ताज हैं। 'ऋणजल धनजल' बिहार के सूखा और बाढ़ की दुर्घटनाओं का ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। 'ऋणजल धनजल' के फ्लैप के अनुसार "सन् 1966 का भयानक सूखा – जब अकाल की काली छाया ने पूरे दक्षिण बिहार को अपनी लपेट में ले लिया था और शुष्क प्राण धरती पर कंकाल ही कंकाल नज़र आने लगे थे ... और सन् 1975 की प्रलयंकारी बाढ़ – जब पटना की सड़कों पर वेगवती वन्या उमड़ पड़ी थी और लाखों का जीवन संकट में पड़ गया था ... अक्षय करुणा और अतल-स्पर्शी सम्वेदना के धनी कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु प्राकृतिक प्रकोप की इन दो महती विभीषिकाओं के प्रत्यक्षदर्शी तो रहे ही, बाढ़ के दौरान कई दिनों तक एक मकान के दुतल्ले पर घिरे रह जाने के कारण भुक्तभोगी भी। अपने सामने और अपने चारों ओर मानवीय विवशता और यातना का वह त्रासमय

हाहाकार देखकर उनका पीड़ा-मथित हो उठना स्वाभाविक था विशेषतः तब, जब कि उनके लिए हमेशा 'लोग' और 'लोगों का जीवन' ही सत्य रहे। आगे चलकर मानव यातना के उन्हीं चरम-साक्षात्कार क्षणों को शाब्दिक अक्षरता प्रदान करने के क्रम में उन्होंने संस्मरणात्मक रिपोर्ताज लिखे। और उन्हीं का संकलित रूप यह 'ऋणजल धनजल' है। इसमें वस्तुतः व्यापक मानवीय पीड़ा-बोध की वह 'अकथ कथा' वर्णित है जो अक्षर शिल्पी रेणु की विलक्षण अन्तर्भेदी दृष्टि और लेखनी का संस्पर्श पाकर सहज ही शब्दचित्रात्मक और आश्चर्यजनक रूप से जीवन्त हो उठी है।"

'नेपाली क्रान्ति कथा' में जैसा नाम से ध्वनित हो रहा है नेपाल में लोकतन्त्र बहाली के लिए हुए आन्दोलनों की रोमांचक गाथा है। नेपाल की राणाशाही के अत्याचार और दमन के विरुद्ध जब वहाँ की जनता ने सशस्त्र संग्राम छेड़ दिया, तब फणीश्वरनाथ रेणु ने उसमें एक सैनिक की हैसियत से भाग लिया था। अपने उसी अनुभव को उन्होंने शब्दचित्रात्मक अभिव्यक्ति देकर अविस्मरणीय और इतिहास का अंग बना दिया है। रेणु के बोलते रिपोर्ताज उनके अन्य रिपोर्ताजों से भिन्न हैं। इनमें किसी स्थान या घटना का महज आँखों देखा विवरण नहीं बल्कि एक मुक्ति-युद्ध का जीवन्त चित्रण है। और वह भी एक ऐसे कलाकार-रचनाकार द्वारा जिसके कन्धे पर बंदूक थी और हाथ में कलम।

बांग्लादेश समस्या के साथ ही भारत-पाक युद्ध से सम्बन्धित रिपोर्ताज लिखे गए। 'धर्मयुग' में डॉ॰ धर्मवीर भारती के अनेक रिपोर्ताज प्रकाशित हुए। 'युद्धयात्रा' रिपोर्ताज में धर्मवीर भारती ने पाकिस्तान युद्ध का वर्णन किया है। शमशेर बहादुर सिंह का रिपोर्ताज 'प्लाट का मोर्चा' भी उल्लेखनीय रिपोर्ताज है।

जब रिपोर्ताज वर्तमान से जुड़ता है तो उसके लिए तात्कालिकता से भी बचना असम्भव-सा होता है। लेकिन तात्कालिकता को लेखक इस तरह प्रस्तुत करता है कि उसमें तीनों काल एक साथ साँस लेते महसूस होते हैं।

रिपोर्ताज स्थानीय घटना पर भी हो सकते हैं लेकिन शर्त यह होती है कि उनमें मार्मिकता हो। जब तक घटना को लेखक अपनी आँखों से घटित होते हुए नहीं देख लेता तब तक रिपोर्ताज नहीं लिख सकता। अगर फणीश्वरनाथ रेणु कल्पना के आधार पर रिपोर्ताज लिख लेते हैं तो वह काल्पनिक रिपोर्ताज की श्रेणी में चला जाएगा। उसे 'काल्पनिक रिपोर्ताज' कहेंगे। और घटना के भुक्तभोगी होकर बाद में उस घटना को शब्दबद्ध किया तो उसे संस्मरणात्मक रिपोर्ताज कहा जाएगा। 'ऋणजल धनजल' ऐसा ही संस्मरणात्मक रिपोर्ताज है।

रिपोर्ताज लेखक खतरों से खेलता है। वह अपनी जान जोखिम में डालकर विकट परिस्थितियों में रहकर लेखन करता है। वह बन्द कमरों में बैठकर क्रान्ति या वीर रस की कहानी या कविता नहीं लिखता बल्कि उसे अपने कंफर्ट जोन से बाहर आकर दुखियों-पीड़ितों के दर्द को सुनना होता है, देखना होता है। घटना-स्थलों जैसे युद्ध-क्षेत्रों, महामारी और भूख या अकाल की जगहों पर जाना पड़ता है। उस सब का हिस्सा बनना पड़ता है। कब, किस पल आपके पर्खच्चे उड़ जाएँ कोई नहीं जान सकता। बांग्लादेश युद्ध के समय धर्मवीर भारती युद्ध

स्थल पर गए। वहाँ जाकर लिखा। उस समय के अपने रिपोर्ताज 'मुक्त क्षेत्रे-युद्ध क्षेत्रे' की बदौलत उन्हें कवि, कथाकार के साथ ही रिपोर्ताज लेखक के रूप में भी ख्याति मिली। देखिए वे क्या लिखते हैं – "मैं अपनी मृत्यु (या जीवन) के स्थल पर खड़ा हूँ। ... यह मुक्ति संग्राम। यह रक्त-मुक्ति में उभरता नया देश, ये करवट लेते हुए खेत, यह एक महान लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्राण हथेली पर रखकर जाते हुए बहादुर सैनिक, ये नावों के बेड़े, ये क्षितिज पर कुछ बादल, और यह शान्त बहती नील सुनहरी ब्रह्मपुत्र। कहाँ है शून्य? कहाँ है भीड़ या अकेलापन? कहाँ है भय? कहाँ है निर्रथकता, क्या किसी ऐसे क्षण में, बांग्लादेश की किसी नदी-संध्या के क्षण में, रवीन्द्र ने कहा था – ऐसे शून्य भाव से क्या देख रहा है तू? क्या तूने सुना नहीं किबाँसुरी बज रही है जिसके सुर से सारा बातास, सारा आकाश सिहर उठा है : नहीं, इस बार मैं अपनी नौका धार में उतार ही दूँगा।"

असल में रिपोर्ताज लेखन का काम जितना सरल लगता है उतना होता नहीं है। लगता है कि जो देखा वही तो लिखना है पर उस लेखन में भी सफलता तब मिलती है जब आप कल्पनाशील और रचनाशील हों। देखकर तो रिपोर्ट भी लिखी जाती है। रिपोर्ताज के लिए रिपोर्ट को मार्मिक और हृदयस्पर्शी होना होगा। उसमें गत्यात्मकता, सरसता और रोचकता होती है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि रिपोर्ताज लेखक को भावुक होना चाहिए। अगर भावुक नहीं है तो शायद तथ्यात्मकता, सत्यात्मकता को तो वह पकड़ लेगा पर आर्त और दुखी मानवता की पुकार के भीतर तक उसकी सम्वेदना पहुँच नहीं पाएगी। युद्धक्षेत्र में सैनिकों का खून बह रहा है, लोगों के गाँव -घर उजड़ रहे हैं, लोग महामारियों और भूख से मर रहे हैं, बच्चे माँ-बाप की आँखों के आगे मौत के मुँह में जा रहे हैं, बाढ़ में लोग बह रहे हैं, उनके घर डूब रहे हैं, इन हृदयविदारक दृश्यों को कैसे उसके शब्द अपने भीतर कैद कर पाएँगे और कैसे युद्ध के प्रति समाज में घृणा पैदा कर पाएँगे, अगर उसमें भावुकता, सम्वेदना नहीं है तो ? भावुकता भी उतनी ही ज़रूरी है जितनी निर्मम यथार्थ-चित्रण के लिए कठोरता। और यह भी कि तथ्य ही सत्य को विश्वसनीय बनाते हैं। 'ऋणजल धनजल' का निम्नलिखित उदाहरण इसी बात को दर्शाता है। देखें – "किन्तु पलामू में जो कुछ देखा ... ? ... 24 जुलाई, 1966 को सुखाड़ी महतो ने भूख प्यास से डाल्टनगंज में दम तोड़कर भूखमरी की घोषणा कर दी। 26 जुलाई को सुखदयाली भूइयाँ। 27 को जित्तन भूइयाँ। ... मन्नू मांझी की औरत। एक औरत तीन बच्चों के साथ कूप में गिरकर मर गई। एक अज्ञात व्यक्ति ... एक औरत ... एक बच्चा ... !!"

ऐसे समय में भी लोग दिखावे से बाज नहीं आते। भूखों के लिए लंगर चालू किया जाता है सैकड़ों भूखी आत्माएँ एक जगह एकत्र होकर खाने का इंतजार करती हैं। लोग खाने के लिए हाथ-पैर मार रहे हैं। हर आदमी के चेहरे पर मौत की छाया मँडरा रही है लेकिन आयोजक रिपोर्ट पेश कर रहे हैं। भाषण दे रहे हैं। साइन बोर्ड का कपड़ा ठीक कर रहे हैं। भूखों की भीड़ जैसे चलते-फिरतों की टोली। तो ऐसे इन कारुणिक दृश्यों के चित्रण के लिए चिन्तनशील लेखक को भी भावुक होना पड़ता है।

इस महत्त्वपूर्ण विधा रिपोर्ताज को साहित्य की दुनिया में जो महत्त्व मिलना चाहिए था, नहीं मिला। इसीलिए 1987 में साहित्य अकादेमी द्वारा आयोजित सेमिनार में पढ़े गए अपने पर्चे में ख्यात कथाकार-आलोचक भीष्म साहनी को बड़े दुःख के साथ कहना पड़ा कि " यदि निबन्ध या ललित निबन्ध, साहित्य माना जा सकता है

तो रिपोर्ताज क्यों नहीं माना जा सकता ? रिपोर्ताज यथार्थ का चित्रण करता है, हमें उद्वेलित भी करता है, वास्तविकता का बोध कराता है, निबन्ध तो मूलतः टिप्पणी करता है। रिपोर्ताज तो धरती के साथ साथ चलता है, जबकि निबन्ध विचारों और तर्कों की दुनिया में रहता है, रिपोर्ताज तो दिल को छूता है, गहरे सम्वेदन की उपज है। इसके मुक़ाबले में निबन्ध तो केवल ज़ेहनी ऐयाशी है। कुछेक निजी निबन्धों को छोडकर जिनमें भावना का हल्का सा पुट रहता है। जो भावाद्वेग रिपोर्ताज पैदा करता है निबन्ध कहाँ पैदा करता है ? फिर क्या यह सरासर बेइनसाफ़ी नहीं कि ललित निबन्ध या निबन्ध को तो हम साहित्य मानें पर रिपोर्ताज को साहित्य नहीं मानें ?" (गद्य की पहचान : अरुण प्रकाश) भीष्म साहनी ने रिपोर्ताज की तुलना निबन्ध से करके यह स्पष्ट कर दिया है कि रिपोर्ताज निबन्ध से किसी मामले में कमतर नहीं है।

रिपोर्ताज की अपनी प्रकृति के कारण कभी इसे रेखाचित्र, संस्मरण, कहानी, रिपोर्ट मान लिया जाता है। रिपोर्ताज सामूहिक जन-चेतना का वाहक होता है। इसके कथात्मकता, संस्मरणात्मकता और काल्पनिकता आदि गुणों के कारण ऐसा आभास पाठक को हो जाता है लेकिन रिपोर्ताज का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है और खास बात है कि यह गत्यात्मक होता है। इसमें घट रही घटना का जीवन्त चित्रण किया जाता है। अर्थात् लेखक स्वयं घटना-स्थल पर जाकर घटना की जानकारी लेता है। उसका सूक्ष्म मुआयना करता है। यहाँ काल्पनिक घटाटोप के लिए गुंजाइश नहीं होती। बल्कि आँखों देखी घटना का वर्णन-विश्लेषण-चित्रण होता है। घटना ऐसी जो विशाल जनसमुदाय को प्रभावित करती है।

3.3.03. रिपोर्ताज का अर्थ

'रिपोर्ताज' शब्द फ्रेंच भाषा से हिन्दी में आया है जो अँग्रेजी शब्द 'रिपोर्ट' के करीब है। 'रिपोर्ट' का अर्थ है किसी घटना विशेष का विस्तृत वर्णन। रिपोर्ट कई तरह की होती हैं। वे अखबारी होती हैं। वे सरकारी होती हैं। 'पत्रकारिता परिभाषा कोश' के अनुसार रिपोर्ट का अर्थ है – "(संज्ञा रूप में) संवाद या समाचार-विवरण जो संवाददाता या समाचारदाता किसी घटना के सम्बन्ध में अपने पत्र के लिए तैयार करता है। (क्रिया रूप में) किसी घटना का समाचार विवरण तैयार करना।"

रिपोर्ताज का जन्म विषम परिस्थितियों में हुआ है, यथा – अकाल, बाढ़, युद्ध आदि। इसी कारण रिपोर्ताज को 'सांसारिक और मानवीय संकटों का सिस्मोग्राफ' और 'यथार्थ का डोक्यूमेंटेशन' भी कहा गया है।

प्रो॰ माजदा असद के अनुसार "जो घटना अन्तर्राष्ट्रीय समाचार बनने की क्षमता रखती हो उसका वर्णन इस विधा के अन्तर्गत होता है। सहसा घटित होने वाली, मन को हिलाने वाली महत्त्वपूर्ण घटना की तात्कालिक प्रतिक्रिया की साहित्यिक भावावेश पूर्ण शैली में अभिव्यक्ति रिपोर्ताज कहलाती है। "(गद्य की नई विधाओं का विकास, पृष्ठ 41)

अरुण प्रकाश की मानें तो "एक तरह से कहा जा सकता है कि यह अन्तर्वस्तु का तात्कालिक एवं प्रथम पुरुष जैसा वक्तव्य होना चाहिए। (गद्य की पहचान, पृष्ठ 175)

डॉ॰ रमेशचन्द्र लवानिया के मतानुसार "वस्तुतः किसी घटना का पूर्ण विवरण कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करना ही रिपोर्ताज कहलाता है।" (साहित्य विविधा)

डॉ॰ भगीरथ मिश्र के अनुसार "रिपोर्ताज में किसी घटना या दृश्य का अत्यन्त विवरणपूर्ण, सूक्ष्म, रोचक वर्णन इस प्रकार किया जाता है कि वह हमारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो जाए और हम उससे प्रभावित हो उठें।" (साहित्य विविधा, डॉ॰ रमेशचन्द्र लवानिया)

डॉ॰ हरिमोहन रिपोर्ताज को परिभाषित करते हुए कहते हैं – "रिपोर्ताज कथेतर गद्य का वह विवरणात्मक घटना-प्रधान साहित्यिक रूप है, जिसमें किसी घटना का तथ्यपरक एवं मानवीय सरोकारों से युक्त प्रभावपूर्ण विवरण दिया जाता है। इस विवरण में लेखक का निजी दृष्टिकोण सक्रिय रहता है और जनता के प्रति सच्चा प्रेम भी।" (साहित्यिक विधाएँ, पुनर्विचार, पृ.281)

आलोचक मोहनकृष्ण बोहरा कहते हैं कि "रिपोर्ताज वह घटना प्रवाह है जिसका लेखक स्वयं प्रेक्षक होता है। वह उसे घटित होते हुए देख रहा होता है। यह पत्रकारी रिपोर्टिंग नहीं साहित्यिक रिपोर्टिंग होती है। क्योंकि यहाँ जो आप देख रहे हैं उसके पृष्ठभूत क्या हैं और वे स्थितियाँ क्यों बनीं यह सन्दर्भ भी साथ में जुड़ेगा। तब जो रचना बनेगी वो रिपोर्ताज कहलाएगी। रिपोर्ताज आगे के लिए रास्ता बंद नहीं करता। इसमें यह सूचित नहीं होता कि दंगा या अकाल समाप्त हो गए। क्योंकि ये कभी समाप्त नहीं होते। यहाँ संभावित पक्ष भी संकेतित रहता है।" कहने का आशय यह है कि आँखों के सामने घट रही घटनाओं या अनवरत यातनाओं के सिलसिलों की रिपोर्ट जब तथ्यात्मक विश्लेषण के साथ विस्तृत आकार लेते हुए मार्मिक, सजीव और सार्थक वर्णन द्वारा पाठक के हृदय पर यूँ दस्तक दे कि लगे जैसे दस्तक से पहले ही दरवाजा खुल गया, तब समझो कि वह रिपोर्ताज है।

लेखक त्रासद घटनाओं के कारण उत्पन्न स्थितियों से जूझते-लड़ते लोगों को अपनी आँखों से देखकर करुणा की स्याही में कलम डुबाकर पन्नों पर इस तरह उतार लाए कि एक बारगी चित्रकार भी सोचे कि काश, मैं अपनी तूलिका से इसे चित्र रूप में बाँध सकता, तब 'रिपोर्ट', 'रिपोर्ताज' बन जाती है। रिपोर्ट की आँखों में जब सम्वेदना का जल तैरने लगता है तब शुष्क वर्णन की दीवार फाँदकर जीवन्त दुनिया का हिस्सा बनकर वह रिपोर्ट, रिपोर्ताज बन जाती है। 'रिपोर्ताज' यानी घट रही घटना या घटनाओं का सरस और सजीव चित्रण। घटनाओं के वर्णन में हल्दी जितनी आत्मीयता, नमक जितनी सम्वेदना, जीरे जितनी मानवता, धनिये जितनी जीवन्तता और तेल जितनी तथ्यात्मकता होती है। कोई रिपोर्ट पढ़कर पाठक को लगे जैसे वह घटनास्थल पर पहुँच गया है और वहाँ का समूचा वातावरण उसकी आँखों के सामने आ जाए, पाठक को सोचने के लिए विवश करे, भावुक करे, दिल को छू जाए, गुस्सा दिलाए, आक्रोश या करुणा के भाव जगाए, कुछ कर गुजरने का हौसला दे, बेहतर मनुष्य बनने के लिए प्रेरित करे तो वह 'रिपोर्ट' अनायास ही 'रिपोर्ताज' बन जाती है। बिना काल्पनिक बेल-बूटों के घटनाओं को घटित होते हुए उसी स्थिति में दिखाना जिसमें वे घटित हो रही हैं रिपोर्ताज है। जैसे नवजात शिशु

अपनी प्राकृतिक अवस्था में होता है, अपनी समूची मासूमियत, भोलेपन, पवित्रता, अछूतेपन और मौलिकता के साथ।

कहा जा सकता है कि सत्य और तथ्य आधारित रिपोर्ट रिपोर्ताज तब बनती है जब सम्वेदना में डूबकर प्राणिमात्र की पीड़ा का आँखों देखा हाल ऐसे लिखती है जिससे पीड़ा स्वयं मूर्तिमान होकर सामने खड़ी हो जाती है। कहा जा सकता है कि आँखों देखी, सत्य और तथ्य आधारित मार्मिक रिपोर्ट का कलात्मक और साहित्यिक प्रस्तुतीकरण ही रिपोर्ताज है।

3.3.04. रिपोर्ताज का स्वरूप

रिपोर्ताज के स्वरूप को जानने-समझने के लिए 'साहित्य विवेचन' में क्षेमचन्द्र 'सुमन' तथा योगेन्द्र कुमार मल्लिक के इस कथन को मानना होगा कि रिपोर्ताज लेखक को वस्तु या घटना का विवरण प्रस्तुत करते समय तीन बातों का विशेष ध्यान रखना होता है – वर्ण्य वस्तु का वास्तविक इतिहास जानना, पात्रों का बाह्य रेखाचित्र उपस्थित करना तथा रिपोर्ताज लेखक को सजग व सचेष्ट होकर घटना में निहित स्वार्थों तथा उसके पात्रों की मानसिक गतिविधियों का विश्लेषण करना चाहिए। ये तत्त्व ही हैं जो रिपोर्ट को रिपोर्ताज से अलग करते हैं और रिपोर्ताज का स्वरूप निर्धारण करते हैं।

रिपोर्ताज को साहित्य की दुनिया में जो महत्त्व मिला उसमें पत्र-पत्रिकाओं का बड़ा योगदान रहा। इन्होंने छापा तभी तो लोगों ने रिपोर्ताज को समझा। ध्यान से देखें तो पता चलता है कि समाचार पत्र के लिए लिखे गए रिपोर्ताज पत्रिकाओं के लिए लिखे गए रिपोर्ताजों से भिन्न हैं। इन दोनों में प्रकाशित रिपोर्ताज एक दूसरे से भिन्न इस अर्थ में हैं कि पत्रिका में प्रकाशित रिपोर्ताज में मार्मिकता अधिक होती है। क्योंकि उसके लेखक के पास समय अधिक होता है। अरुण प्रकाश कहते हैं "साहित्यिक रिपोर्ताज का गद्य अखबारी लेखन के मुक़ाबले अधिक मर्मस्पर्शी हुआ करता है।"

रिपोर्ताज में घटना कहानीपन, नाटकीयता, संक्षिप्तता और सम्वेदना लिए होती हैं। पर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य जो रिपोर्ताज को रिपोर्ताज बनाता है वह है आँखों देखी, कानों सुनी घटना। यह घटना घटित होते हुए आपने नहीं देखी है तो वह लेखन सब कुछ है, बहुत सुन्दर है, श्रेष्ठ है, लेकिन रिपोर्ताज तो नहीं ही कहला सकता है। रिपोर्ताज का सम्बन्ध वर्तमान से और वर्तमान का यथार्थ से सम्बन्ध होना ज़रूरी होता है। रिपोर्ताज लेखक घटना की सच्चाई को किसी तरह की हानि पहुँचाए बिना अपने समय से, समाज से, देश से, सत्ता से सवाल करता है। वह अपने समय और समाज की ऐसी तस्वीरें खींचता है जिसमें सबके चेहरे साफ-साफ दिखाई देते हैं। बल्कि चेहरों के पीछे छिपे चेहरे भी रिपोर्ताज दिखाता है जिन्हें अन्यथा कोई देख नहीं पाता है। उन कारणों पर भी रिपोर्ताज प्रकाश डालता है जिनकी बदौलत वह स्थिति उत्पन्न हुई। और पीड़ित लोगों की जिजीविषा की भी बात की है। रांगेय राघव ने लिखा है कि – "बंगाल की भुखमरी तब तक समाप्त नहीं होगी जब तक हमारा देश

आजाद नहीं हो जाएगा और मेरा विश्वास है कि भूख के विरुद्ध लड़कर जनता ने अपनी महान् शक्ति का परिचय दिया है, जिससे हममें एक नया साहस भरकर हुंकार उठना चाहिए।

रिपोर्ताज में जितना महत्त्वपूर्ण समाचार होता है उतना ही महत्त्वपूर्ण उसका प्रस्तुतीकरण होता है। रिपोर्ट को 'रिपोर्ताज' बनने के लिए सम्वेदना, रचनाशीलता की अतिरिक्त आवश्यकता होती है। डॉ॰ रामविलास शर्मा का यह कथन ठीक ही है कि रिपोर्ताज लेखक आधा पत्रकार और आधा साहित्यकार होता है। रिपोर्ताज में घटना या घटनाएँ काल्पनिक नहीं, सच होती हैं लेकिन साहित्यकार कल्पनाशील होता है। कहने को तो रिपोर्ताज का जन्म अखबारी दुनिया में हुआ लेकिन जैसे ही इसमें कलात्मकता और साहित्यिकता का समावेश हुआ यह साहित्य की दुनिया का हिस्सा हो गया। रिपोर्ताज-लेखन सरल लगता है क्योंकि इसमें आँखों देखी घटनाओं को चित्रित किया जाता है। सरसरी तौर पर ऐसा लगता है कि जो देखा उसे लिखना क्या मुश्किल है। पर सिर्फ वही रिपोर्ताज में नहीं होता जो दिखाई दे रहा है बल्कि घटना का आगा-पीछा, दायाँ-बायाँ भी होता है। घटनाओं का ज्यों का त्यों वर्णन होते हुए भी लेखकीय रचनाशीलता, कल्पनाशीलता और दृष्टि उस वर्णन को गहराई, आत्मीयता के साथ विशिष्टता प्रदान करती है। तब वह लेखन रिपोर्टिंग मात्र नहीं रह जाता जहाँ मात्र छह ककारों के जवाब देने होते हैं, जैसे – क्या, कब, कहाँ, कैसे, कौन और क्यों। जहाँ शुष्कता और नीरसता होती है। बल्कि वह इन ककारों की फीकी गोली को सम्वेदना, सरसता, रोचकता में लपेटकर पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है कि उसका खट्टा-मीठा स्वाद लम्बे समय तक याद रहे।

3.3.05. रिपोर्ताज का ढाँचा

3.3.05.1. प्रारम्भ

कहते हैं "पूत के पाँव पालने में ही दिख जाते हैं।" रिपोर्ताज का प्रारम्भ सदा ऐसा होना चाहिए कि पाठक को पहली बार में ही बाँध ले। उसे अपने से दूर जाने ही न दे। पाठक को सारा आलेख पढ़ने को विवश कर दे। प्रारम्भ नाटकीयता, कथात्मकता, यात्रा-वर्णन लिए कहावत या मुहावरे से भी हो सकता है। जो घटना घटित हुई उसका वर्णन हो सकता है तो लेखक की टिप्पणी से भी प्रारम्भ हो सकता है। प्रारम्भ में एक बात का ध्यान रखना होता है कि वह पाठक की जिज्ञासा पैदा करने वाला हो न कि उसे शान्त करने वाला। एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आप लेखक को बाँध नहीं सकते कि वह इस तरह शुरुआत करे। उस समय लेखक की जो मानसिकता होगी, उसका जितना ज्ञान और समझ होगी, पसंद-नापसंद होगी, घटना का मूल भाव क्या होगा, घटना जब घटित हो रही थी तब उसके मन-मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ा आदि बातों को दृष्टिगत रखते हुए रिपोर्ताज का प्रारम्भ करता है।

'नेपाली क्रान्ति-कथा' के एक रिपोर्ताज का यह प्रारम्भ देखिए कितना आकर्षक है। प्रारम्भ एक बंगला कहावत से होता है – "ढेंकी अगर स्वर्ग भी जाएगी तो वहाँ भी उसको धान कूटना पड़ेगा। अब तक पूर्णिया जिले में सोशलिस्ट पार्टी के जितने भी सम्मेलन हुए और शिविर चलाए गए, सभी के भोजनालय विभाग को सुचारू रूप

से चलाने वाला साथी मधुसूदन, यहाँ आकर भी अर्थात् लड़ाई के मैदान में भी, सात आठ सौ व्यक्तियों के तीन जून भोजन 'सप्लाई' करने के काम में जुटा हुआ है।"

3.3.05.2. मध्य

रिपोर्ताज के मध्यभाग में उसका विस्तार होता है। रिपोर्ताज आकार में बहुत बड़े नहीं होते हैं। वैसे भी आजकल तुरत-फुरत का जमाना है। अगर आलेख बड़े-बड़े हुए तो अनपढ़े रह जाते हैं। इसलिए मध्यभाग के विस्तार का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि वह इतना अधिक हो कि रिपोर्ताज के प्रति पाठक की जो उत्सुकता होती है वह समाप्त हो जाए। लेखक में यह गुण होना चाहिए कि कम शब्दों में अपनी सारी बात कह दे। रिपोर्ताज के मध्य के वर्णन में उसका केन्द्रीय भाव आ जाता है। लेकिन कम शब्दों का अर्थ यह नहीं है कि बात आधी-अधूरी रह जाए। बात पूरी कह दी जाय और रिपोर्ताज अपनी सीमा में भी रहे। जिससे पाठकों की रुचि उसमें सतत बनी रहे। रुचि, जिज्ञासा और उत्सुकता की डोर आदि, मध्य और अन्त तक टूटनी नहीं चाहिए। अगर वह डोर टूट गई तो रिपोर्ताज अपना प्रभाव खो देगा। यह मध्यभाग ही होता है जो अन्त तक पाठक को ले जा सकता है। अकेले 'प्रारम्भ' के वश की बात नहीं है यह। चूँकि रिपोर्ताज समाचार पत्र-पत्रिका के लिए लिखे जाते हैं तो दीगर बात है कि आकार छोटा ही होगा। रिपोर्ताज के आकार का सारा दारोमदार मध्य पर होता है।

रिपोर्ताज का मध्यभाग विस्तार लिए होता है फिर भी रोचक होता है। इसका एक उदाहरण फणीश्वरनाथ रेणु के 'ऋणजल धनजल' में मिलता है। लेखक अपनी बहन द्वारा सखियों के साथ मिलकर गाए जाने वाले एक ग्राम्यगीत 'सावन भादों' का उल्लेख करता है। यह गीत मध्यभाग में छाया हुआ है। आप भी सुनें, पढ़ें और आँखें नम करें –

कासी फूटल कसामल रे दैबा
बाबा मोरा सुधियो न लेल
बाबा भेल निर्मोहिया रे दैबा
भैया के भेजियो न देल
भैया भेल कचहरिया रे दैबा
भउजी बिसरी कैसे गेल ... ?

(अब तो चारों ओर कास भी फूल गए यानी बरसात का मौसम बीतने को है। पिछली बार तो बाबा खुद आए थे। इस बार बाबा ने सुधि नहीं ली। बाबा अब निर्मोही हो गए हैं। भैया को 'जमीन-जगह' के मामले में हमेशा कचहरी में रहना पड़ता है। लेकिन, मेरी प्यारी भाभी मुझे कैसे भूल गई ?)

यह करुण गीत मध्य में चलता है। इस गीत से एक कहानी और जुड़ जाती है। इस तरह गीत और कहानी मिलकर मध्यभाग का सजीव वर्णन करते हैं। उसे मध्यभाग के अन्त तक ले जाते हैं। मध्य के भाग को अगर पाठक ने पढ़ लिया तो समझो लेखक की मेहनत सफल-सार्थक हो गई।

3.3.05.3. अन्त

कहते हैं "अन्त भला तो सब भला।" रिपोर्ताज का प्रारम्भ जितना महत्त्वपूर्ण होता है उतना ही महत्त्व उसका अन्त रखता है। प्रारम्भ जितना प्रभावशाली होता है उतना ही अन्त भी होना चाहिए। अन्त में निष्कर्ष होता है। जैसे प्रारम्भ में लेखक की टिप्पणी की बात कही, वही बात यहाँ भी लागू होती है। कभी-कभी हम मध्य को इतना विस्तार दे देते हैं कि अन्त तक आते-आते लगने लगता है, इसे शीघ्रता से समाप्त किया जाए। ऐसे में रिपोर्ताज का अन्त अपेक्षा के अनुकूल या कहें कि रिपोर्ताज के अनुकूल नहीं हो पाता है। वह अन्त तक आते-आते लड़खड़ा जाता है। ऐसे में रिपोर्ताज का मट्ठ मारा जाता है। इसलिए रिपोर्ताज के सभी भागों के महत्त्व को समझते हुए उन्हें समय और स्थान दें। अन्त ऐसा हो कि लगे, हाँ ! अन्त हो गया। यह अन्त इस एक रिपोर्ताज का होता है, उस स्थिति का अन्त नहीं होता जिसने हमें रिपोर्ताज लिखने के लिए बाध्य किया है। रिपोर्ताज के प्रारम्भ में जो जिज्ञासा थी, जो कुतूहल था वह अन्तिम भाग के साथ ही समाप्त हो जाता है। लेकिन उसके 'इंप्रैशन' बहुत समय तक बने रहते हैं।

'तूफानों के बीच' पुस्तक के एक रिपोर्ताज 'अन्धकार' का समापन देखिए कि जाते-जाते कितनी चीखें, उदासी, पीड़ाएँ और अँधेरा छोड़ जाता है जो आगे आने वाले बहुत समय तक भुलाया नहीं जा सकता है – "पागल चला गया। बीमार ज़ोर से कराहने लगा। स्त्री देखती रही। एकाएक एक ज़ोर की हिचकी आई, और बीमार के प्राण-पखेरू उड़ गए। स्त्री ज़ोर से चिल्ला उठी, "डॉक्टर, अँधेरा छाया जा रहा है चारों ओर ! मैं क्या करूँ, डॉक्टर ? कौन उठाएगा इसे ? दूर-दूर तक अँधेरा छाया जा रहा है ! ... यहाँ कौन है मेरा ? क्या करूँ डॉक्टर ?" और वह फूट फूटकर रो पड़ी। डॉक्टर देख रहा था – देख रहा था। दूर, सहानुभूतिहीन तारे निकल आए थे। नीरव, निर्मल अन्धकार झुकता आ रहा था पृथ्वी पर। स्त्री रो रही थी – निस्सहाय, कलंकिनी, लाचार, अबला !"

3.3.05.4. शीर्षक

शीर्षक विषय को खोलने वाला, संक्षिप्त, सारगर्भित और चुटीला हो। शीर्षक कभी-कभी आकार में बड़ा भी होता है। पर यह अपवादस्वरूप या विषय की ज़रूरत देखते हुए। उदाहरणस्वरूप कुछ शीर्षक देखिए – 'आठ दस', 'मानुष बने रहो', 'पंछी की लाश', 'तूफान के विजेता', 'अदम्य जीवन', 'मरेंगे साथ जिएँगे साथ', 'एक रात', 'बूचड़खाना', 'अन्धकार' आदि। शीर्षक किसी भी लेख की आँख होता है जिसके माध्यम से हम लेख के विषय को समझने का प्रयत्न करते हैं और लेख के विषय में अपनी धारणा बनाते हैं। किसी भी लेख का शीर्षक ही तय करता है कि पाठक उसे पढ़ेगा या नहीं। अगर शीर्षक पाठक का ध्यान अपनी तरफ खींचने में सफल हो गया तो लेख पढ़ा जाएगा और लेखक ने जो खतरे उठाकार लेख लिखा उसे वे खतरे फिर खतरे नहीं लगेंगे बल्कि वे मोड़ लगेंगे जो न मुड़ता तो बहुत-सी उपलब्धियों से चूक जाता।

3.3.06. रिपोर्ताज के तत्त्व

3.3.06.1. अन्तर्वस्तु

मोटे तौर पर हम जिस विषय या कथ्य या घटना पर रिपोर्ताज लिखते हैं उसमें समसामयिकता, तथ्यपरकता और कथात्मकता होनी अपेक्षित है। समसामयिकता के कारण व्यापक जनसमूह की उसमें दिलचस्पी होगी। लोग उसे पढ़ना चाहेंगे। अगर आप बसन्त ऋतु में पतझड़ की बात करेंगे, अगर कोई रो रहा है और हँस देंगे तो उसे कोई पसंद नहीं करेगा। ऐसी घटना जो सामयिक महत्त्व रखती हो आप जिस घटना के प्रत्यक्षदर्शी थे तो उस घटना को रिपोर्ताज का विषय बनाया जा सकता है। घटना के समय लेखक की उपस्थिति ज़रूरी है। अगर लेखक कल्पना के आधार पर लिख रहा है तो यह रिपोर्ताज नहीं बल्कि कहानी या संस्मरण हो सकता है। रांगेय राघव ने 'तूफानों के बीच' बंगाल के अकाल पर लिखा। आप बंगाल गए। अपनी आँखों से वहाँ के लोगों की कारुणिक स्थितियों को देखा। फणीश्वरनाथ रेणु ने बिहार में सूखा और बाढ़ की स्थितियों का खुद सामना किया तब 'ऋणजल धनजल' लिखा। इसी तरह रेणु नेपाल के ऐतिहासिक क्रान्ति अभियान का हिस्सा रहे। और 'नेपाली क्रान्ति-कथा' लिखी।

रिपोर्ताज लेखक को अपना काम एम.आर.ई. मशीन की तरह करना होता है। वह घटनाओं का घटित होना दिखाने के साथ ही घटनाओं के भीतर की चौतरफा घटनाएँ भी बताता है। 'तूफानों के बीच में' में रांगेय राघव ने बंगाल के भयावह अकाल से पीड़ित लोगों की हालात तो दिखाई ही उन्होंने यह भी बताया कि इस युद्ध में कितने निर्दोषों की मौत हुई। तथ्यपरकता के लिए यह भी बताया कि इस अकाल, भूख और महामारी से साठ लाख लोग मारे गए। कितने लोग भूख और महामारी से मर गए। इस अकाल में 60 लाख लोग भूख और महामारी से अकाल मौत के मुँह में समा गए थे। जो जीवित थे उनकी भी हड्डियाँ गिन सकते थे, ऐसी अमानवीय स्थितियों का वर्णन ही रिपोर्ताज लेखक का काम है। यह भी ज़रूरी होता है कि वह बताए कि वे कौन-सी स्थितियाँ थीं जो इस सबके लिए जिम्मेदार हैं।

कथात्मकता रिपोर्ताज की ज़रूरत है। कथातत्त्व जब तक रिपोर्ताज का हिस्सा नहीं बनता तब तक पाठकों को रिपोर्ताज में रस नहीं आता है। कथा कहने-सुनने की हमारे यहाँ प्राचीन परम्परा है। कथा में एक तरह का आकर्षण होता है जो आपको उसे पढ़ने के लिए मजबूर कर देता है। 'तूफानों के बीच' हो चाहे 'ऋणजल धनजल' कथातत्त्व सब जगह मिल जाएगा। यह तत्त्व रिपोर्ताज की रोचकता को बढ़ाता है। 'तूफानों के बीच' के एक रिपोर्ताज 'एक रात' के कुछ अंश देखिए – "रूप लाल हंस उठा। – तुम क्या जानो ? तुमने क्या मुझे तब देखा, जब मैं भूखा था ?" वह अट्टहास कर उठा। तब ? आसमान में न तारे थे, न पैरों के नीचे जमीन। चारों ओर अँधेरा नज़र आता था। मैं प्राण बाला को प्यार करता था। और संसार ने गरीबी के कारण सदा यह समझा कि मेरा प्यार, प्यार नहीं मेरा स्वार्थ था, एक नियम ! सचमुच। किन्तु जिस दिन मैंने अपने हाथों से अपनी बहू और बच्चों का खून किया था उस दिन मैं रूपलाल नहीं था, उस दिन कोई मेरा नहीं था, मैं किसी का नहीं था मैं रूपलाल की

छाया भी न था। बाबू, उस दिन मैं भूखा था।" इसी तरह 'ऋणजल धनजल' में भी कुछ कथाएँ गूँथी हुई हैं जो रिपोर्ताज को जीवन्त बनाती हैं।

3.3.06.2. प्रतिपाद्य

रिपोर्ताज लेखक जब लिखता है तो उसका उद्देश्य 'लिखने के लिए लिखना' नहीं होता बल्कि 'समाज के लिए' लिखना होता है। वह अपने लेखन के प्रति गम्भीर होता है। घटना क्या थी, कैसे और क्यों घटित हुई, इसके तार किस से जुड़े हुए हैं। इन सारे प्रश्नों के जवाब तो एक पत्रकार की तरह लेखक को तलाशने होते ही हैं लेकिन घटना के पीछे की घटना का वर्णन भी वह रचनाकार के रूप में करता है। वह अपने लेख में इस बात का प्रतिपादन करता है कि हमें साहित्य में भी किसी का पक्ष लेना होता है। कोई कमजोर जो अपनी बात, अपनी पीड़ा, अपना दुःख बोल नहीं पाता उसकी ओर से बोलना चाहिए। लेखक मानवीय दृष्टिकोण के साथ अपने लेख में आगे बढ़ता है। सामाजिक सरोकारों के प्रति वह सजग होता है। वह यह बात अच्छी तरह से जानता है कि उसे मानव जीवन के अँधेरों को इस तरह लिखना है कि घुप्प अँधेरे में एक खिड़की खुल रही है और रोशनी भीतर उतर रही है। और अँधेरा पीछे हट रहा है। इस तरह वह रोशनी तो लिखता है लेकिन उसके साथ ही वह अँधेरों के कारणों पर भी दृष्टिपात करता है। जिससे अँधेरे की छायाएँ धीरे-धीरे कम होती चली जाएँ और समाज में रोशनी फैले। असल में रिपोर्ताज लेखक इस सपने को लेकर चलता है कि संसार से अत्याचार और अन्याय कम होते चले जाएँ और खुशहाली निरन्तर बढ़ती चली जाए।

3.3.06.3. भाषा-शैली

रिपोर्ताज लेखक अपनी कल्पनाशीलता और भाषिक रचनाशीलता से दुःख को दुःख, दर्द को दर्द की तरह लिख सकता है। उसकी लेखनी में इतनी ताकत होती है कि सरल शब्दों द्वारा भी घटना का चित्रण इस तरह करता है जैसे घटना पाठक की आँखों के सामने घट रही है। जैसे वह उसे अपनी नंगी आँखों से घटित होते हुए देख रहा है और उस समय की बातचीत, वातावरण और आसपास को सुन और समझ रहा है। रांगेय राघव ने 'तूफानों के बीच' अपनी पुस्तक में बंगाल के अकाल और अकालजनित हालात का जो दर्दनाक और खौफ़नाक वर्णन किया है वह इसी तरह का है। उनकी भाषा इतनी प्राणवान् है कि लगता है जैसे हम स्वयं बंगाल के उन इलाकों में घूम रहे हैं, उन बेबस, भूखे, त्रस्त लोगों की पीड़ा को महसूस कर रहे हैं। जैसे वे पात्र हमसे बात कर रहे हैं। जैसे हम उनकी विवशता के प्रत्यक्षदर्शी हैं। उनकी भूख और मौत को हम देख रहे हैं। जाहिर है रिपोर्ताज का सम्बन्ध पीड़ा से नहीं पीड़ाओं से होता है। दर्द से नहीं दर्द के अनवरत सिलसिलों से होता है। रिपोर्ताज की भाषा सरल हो सकती है पर अखबारी या सपाट नहीं होती है। चित्रमय भाषा रिपोर्ताज की जान होती है। एक उदाहरण देखें – " ... आँखों के सामने एकबारगी उनमें सोए कंकाल तड़प उठे और नाच उठे यातना से व्याकुल, भूख से तड़प-तड़पकर मरते हुए प्राणियों के चित्र।" (तूफानों के बीच, रांगेय राघव) यातना, तड़प, भूख और मौत का आतंकित करने वाला यह दृश्य एक अकेला नहीं है बल्कि इस पुस्तक में ऐसे वर्णन भरे पड़े हैं।

असल में रिपोर्ताज में भाषा सायास नहीं आती बल्कि सहज रूप में आती चली जाती है। घटनाएँ अपना आकार और रूप स्वयं ग्रहण करती रहती हैं। अपनी शब्दावली आप चुनती रहती हैं। चित्रात्मक भाषा रिपोर्ताज की खूबी मानी जाती है। भाषा ऐसी हो जो परिवेश को, वातावरण को, दुःख को, पीड़ा को, व्यथा को, पात्रों के बाहर भीतर को इस तरह प्रस्तुत करे कि लगे जैसे पाठक घटना-स्थल पर उपस्थित है और अपनी आँखों से सब देख रहा है। रिपोर्ताज की भाषा में स्थिति, भाव और परिवेश के अनुरूप आवेग, गति, व्यंग, निर्ममता, उत्साह, दर्द, प्रेम सब समाया होता है। रिपोर्ताज को अविस्मरणीय रिपोर्ताज बनाने में भाषा का उतना ही हाथ होता जितना घटना या अन्तर्वस्तु का होता है।

कहना बहुत कुछ है पर सही शब्द न मिलें तो बात अधूरी-सी रह जाती है। तो पूरी बात सम्प्रेषित करने के लिए उपयुक्त शब्दों के चयन और वाक्यों के गठन की आवश्यकता होती है। ऐसी भाषा की ज़रूरत होती है जो कई स्तरों पर कई अर्थ देने वाली हो और प्राणवान् तथा जीवन्त हो। यह सम्वेदनशील भाषा ही रिपोर्ताज की जान होती है। रांगेय राघव की पुस्तक 'तूफ़ानों के बीच' का एक उदाहरण देखें – "अकाल और रोग बंगाल के वक्ष स्थल पर डुगडुगी बजाकर पृथ्वी को कम्पित कर रहे थे। आकाश भूखों के हाहाकार से भर रहा था। जापानियों ने चीन में बलात्कार किए थे। यह बैठी थी बंगाल की नारी जिसके ऊपर किए गए अत्याचार हँस रहे थे। और आकाश में रौद्र अट्टहास गूँज रहा था !"

भाषा का नायाब उदाहरण देखने को मिलता है फणीश्वरनाथ रेणु की पुस्तक 'नेपाली क्रान्ति-कथा' में। जहाँ भाषा गोलियों की तरह चलती है। और उस वातावरण को साक्षात् चित्रवत प्रस्तुत कर देती है। पाठक को लगने लगता है जैसे वह भी वहीं कहीं आसपास खड़ा उन गोलियों और टैंक को चलते हुए देख और आवाजों को सुन रहा है। भय से काँप भी रहा है कि कहीं अगली गोली का शिकार वह खुद न हो जाए। कहीं घायलों को ट्रेंच में ले जाया जा रहा है तो कहीं किले की दीवार गिर रही है। जहाँ सुनना और देखना एक साथ हो रहा है ऐसी जीवन्त भाषा के चित्र का एक उदाहरण देखिए –

"कमांडर ने सबसे पहले टैंक चालक गौरमणि को संकेत किया– स्टार्ट ! भटटटटट-टट-टट-भट-भट ... ! मार्च !! भटभटभटभटभट ... ! लोहे का विशाल-कच्छब सचल हुआ। यन्त्र दानव धरती को कँपाता हुआ आगे बढ़ा। इसके पीछे-पीछे मार्च करती – कवर फायरिंग देती हुई – मुक्तिसेना। सामने से मार करती हुई राणा शाही गोलियाँ। गोलियाँ टैंक पर सशब्द बरस रही हैं – भट भट भट – टठाँय – टठाँय धाँय – टटटटटट-भटभटभट – ठाँय – ठाँय – नरपति गिरा। उसको ट्रेंच में ले जाओ – ठाँय – ठाँय – जय नेपाल – आह !! भटभटभटभट – धाँय – धाँय जय माँ काली टटटट घायलों को ट्रेंच में ले जाओ – धाँय – धाँय भटभटभट भट भट – टठाँय – टठाँय – जय नेपाल – भटभटभट –भटभट-धड़धड़धड़ाम – अर-र-र गिरी – गिरी दीवार धड़ धड़ाम – टूट गई दीवार किले की – जय हो – भटभटभट..."।

(– नेपाली क्रान्ति-कथा, फणीश्वरनाथ रेणु)

रिपोर्ताज की शैली विषय और आकार के अनुरूप होती है। कभी पत्र शैली तो कभी निबन्ध शैली, कभी कथा शैली तो कभी नाटक शैली और कभी वर्णन शैली। यह विषय की माँग के अनुरूप होती है। कभी-कभी तो एक ही रिपोर्ताज में अनेक शैलियों का प्रयोग हो जाता है। हर लेखक की अपनी रुचि होती है। यही रुचि उसे उसकी पहचान देती है। लेकिन अपनी पहचान बनाने के लिए कुछ भी उलटे-सीधे प्रयोग कर पाठक को चमत्कृत करने का प्रयास ठीक नहीं रहता। पाठक आप पर भरोसा करता है। उसका भरोसा न तोड़ें। लेखक अपने तरीके से अपनी बात को प्रस्तुत करता है। असल में विषय अपने आप ही अपना तरीका चुन लेता है। लेखक को बहुत ज्यादा इसके लिए प्रयत्न करना आवश्यक नहीं होता। शैली चाहे जो अपनाए – सूचनात्मक, विवरणात्मक, वर्णनात्मक – अपने विचारों में वह स्पष्ट हो तथा सम्वेदना और ईमानदारी के साथ किसी विषय को शब्दबद्ध करे।

3.3.07. पाठ सार

जब आप रिपोर्ताज की दुनिया में प्रविष्ट होते हैं तब आपकी वह कलम जो 'कला के लिए' लिखती है 'जन के लिए' लिखने लग जाती है। 'स्व' से निकल 'पर' की ओर चल पड़ती है। 'निज' के स्थान पर 'सर्व' की बात करने लगती है।

समय बीत जाने के बाद भी रिपोर्ताज नहीं बीतता। वह अपनी सम्वेदना, रचनात्मकता, व्यापक मानवीय सरोकारों और लेखकीय जीवनदृष्टि के कारण साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन जाता है। क्योंकि उसमें उस समय की, समाज की, स्थितियों की झलक देखने को मिलती है जो अन्यथा उतने साफ-सुथरे रूप में मिलनी मुश्किल होती है। आधुनिक काल की सबसे विश्वसनीय विधा के रूप में रिपोर्ताज का नाम लिया जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

रिपोर्ताज लेखक का कल्पनाशील होना बेहद आवश्यक है। वरना घटना-स्थल, वातावरण और पात्रों के मनोभावों और प्रतिक्रियाओं को ठीक-ठीक शब्द नहीं दे पाएगा। और अगर लेखन में रचनात्मकता नहीं है तो घटना का वर्णन मात्र रिपोर्ट बनकर रह जाएगा। और वह रिपोर्ट रिपोर्ताज विधा की ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाएगी। रिपोर्ताज लेखक जितना कल्पनाशील, रचनात्मक और मानवतावादी दृष्टि वाला होता है उतना ही रिपोर्ताज सजीव, मार्मिक और हृदयस्पर्शी बन पड़ता है। रिपोर्ताज अपने व्यापक मानवीय सरोकारों, समय की सच्चाई, युगीन समस्याओं, मनुष्य के संघर्ष और उसकी जिजीविषा के कारण अपने समय के दस्तावेज़ बन जाते हैं। जिनके आधार पर उस समय की नब्ज को टटोला जा सकता है।

कहा जा सकता है कि रिपोर्ताज के लिए लेखक की अपनी दृष्टि और सोच के साथ ही घटना, सत्य, तथ्य, सम्वेदना, रचनाशीलता, कलात्मकता, साहित्यिकता, आत्मीयता, कहानीपन, सामयिकता, वातावरण, उद्देश्य, भाषा-शैली, प्रस्तुतीकरण आदि तत्त्वों का होना आवश्यक है।

3.3.08. कठिन शब्दावली

सम्प्रेषित	:	जो भेज दिया गया हो। किसी बात, विचार आदि का पहुँचाना।
कल्पनाशीलता	:	नई-नई कल्पनाएँ करना। सृजनशीलता।
रचनाशीलता	:	सृजनशीलता, नवनिर्माण करने की शक्ति।
अतिशयोक्ति	:	बढ़ा-चढ़ाकर कही गई बात (इगजैजरेशन)। अतिरंजना, अत्युक्ति। (काव्यशास्त्र) एक अर्थालंकार जिसमें किसी की प्रशंसा या निन्दा में बहुत बढ़ा-चढ़कार बातें की जाती हैं।
साम्राज्यवाद	:	साम्राज्य को बढ़ाने की प्रवृत्ति या नीति; राजनैतिक छल-बल अथवा आर्थिक आधिपत्य द्वारा साम्राज्य स्थापित करने की प्रवृत्ति या नीति।
पूँजीवाद	:	एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था जिसमें निजी उद्योगों को बढ़ावा दिया जाता है। एक ऐसी आर्थिक-राजनैतिक व्यवस्था जिसमें उद्योगों की व्यवस्था का नियन्त्रण राज्य के हाथों में न होकर निजी क्षेत्र के हाथों में होता है। जिसका मुख्य उद्देश्य मुनाफा कमाना होता है।
कंफर्ट जोन	:	सुविधा क्षेत्र।
सिस्मोग्राफ	:	भूकम्पसूचक यन्त्र।
डोक्यूमेंटेशन	:	प्रलेखन, दस्तावेजीकरण।

3.3.09. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. साहित्य विवेचन, क्षेमचन्द्र 'सुमन', योगेन्द्र कुमार मल्लिक
2. तूफानों के बीच, रांगेय राघव
3. साहित्यिक विधाएँ : पुनर्विचार, डॉ॰ हरिमोहन
4. गद्य की पहचान, अरुण प्रकाश
5. ऋणजल धनजल, फणीश्वरनाथ रेणु
6. नेपाली क्रान्ति-कथा, फणीश्वरनाथ रेणु
7. पत्रकारिता परिभाषा कोश, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव विकास संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार

3.3.10. अभ्यास / बोध प्रश्न

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. रिपोर्ताज किस भाषा का शब्द है ?
2. रांगेय राघव के बंगाल के अकाल पर लिखे रिपोर्ताजों की पुस्तक का नाम क्या है?
3. शिवदान सिंह चौहान का रिपोर्ताज 'लक्ष्मीपुरा' किस वर्ष प्रकाशित हुआ ?
4. 'ऋणजल धनजल' के लेखक कौन हैं ?

5. "रिपोर्ताज तो दिल को छूता है, गहरे सम्वेदन की उपज है" यह कथन किसका है ?
6. डॉ॰ रमेशचन्द्र लवानिया के मतानुसार रिपोर्ताज किसे कहते हैं ?
7. धर्मवीर भारती की रिपोर्ताज की कौनसी पुस्तक युद्ध विषय पर है?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'रिपोर्ताज' किसे कहते हैं ?
2. 'रिपोर्ट' और 'रिपोर्ताज' का अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. रिपोर्ताज के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।
4. रिपोर्ताज में प्रस्तुतीकरण की क्या अहमियत है ?
5. 'तूफानों के बीच' पुस्तक की भूमिका में रिपोर्ताज के विषय में लेखक ने क्या लिखा है ?
6. साहित्य अकादेमी द्वारा आयोजित सेमिनार में पढ़े गए अपने पर्चे में भीष्म साहनी ने क्या कहा ?
7. रिपोर्ताज की अन्तर्वस्तु में कौन-कौनसे गुण होते हैं ?
8. रिपोर्ताज के अंगों पर प्रकाश डालिए।

अभ्यास

1. नीचे दिए गए शब्दों से अधोलिखित वाक्यों के **रिक्त स्थान की पूर्ति** कीजिए –

   (ट्रेंच, पीड़ाओं, रिपोर्ट, डॉ॰ रामविलास शर्मा, खुशहाली, दस्तावेज़, शमशेर बहादुर सिंह, रिपोर्ताज, मुक्तिसेना, कलंक, नैतिक मूल्यों, जन)

i. जब आप रिपोर्ताज की दुनिया में प्रविष्ट होते हैं तब आपकी कलम लिखती है कला ..... के लिए।
ii. ..... का अर्थ है किसी घटना विशेष का विस्तृत वर्णन।
iii. 'बंगाल का अकाल मानवता के इतिहास का बहुत बड़ा ..... है।
iv. रिपोर्ताज अपने व्यापक मानवीय सरोकारों के कारण अपने समय के ..... बन जाते हैं।
v. ..... का रिपोर्ताज 'प्लाट का मोर्चा' भी उल्लेखनीय रिपोर्ताज है।
vi. चित्रात्मक भाषा ..... की खूबी मानी जाती है।
vii. रिपोर्ताज का उद्देश्य मात्र सूचना देना नहीं होता बल्कि मानवीय और ..... की स्थापना भी होता है।
viii. रिपोर्ताज का सम्बन्ध पीड़ा से नहीं ..... से होता है।
ix. भटभटभटभट – धाँय – धाँय जय माँ काली टटटट घायलों को ..... में ले जाओ।
x. यन्त्र दानव धरती को कँपाता हुआ आगे बढ़ा। इसके पीछे-पीछे मार्च करती – कवर फायरिंग देती हुई – .....।
xi. असल में रिपोर्ताज लेखक इस सपने को लेकर चलता है कि संसार से अत्याचार और अन्याय कम होते चले जाएँ और ..... निरन्तर बढ़ती चली जाए।

xii. ..... का यह कथन ठीक ही है कि रिपोर्ताज लेखक आधा पत्रकार और आधा साहित्यकार होता है।

2. निम्नलिखित कथनों में **सत्य / असत्य कथन की पहचान** कीजिए –

i. रिपोर्ताज कल्पना पर आधारित होता है।
ii. रिपोर्ताज महामारियों, अकाल, बाढ़, भूख आदि पर लिखे जाते हैं।
iii. रिपोर्ताज की भाषा में रचनाशीलता होती है।
iv. रिपोर्ट और रिपोर्ताज में कोई अन्तर नहीं होता है।
v. रिपोर्ताज की भाषा अखबारी या सपाट होती है।
vi. रिपोर्ताज 'अन्धकार' फणीश्वरनाथ रेणु की पुस्तक 'ऋणजल धनजल' में है।
vii. रिपोर्ताज धरती के साथ-साथ चलता है,जबकि निबन्ध विचारों और तर्कों की दुनिया में रहता है।
viii. रिपोर्ताज को 'सांसारिक और मानवीय संकटों का सिस्मोग्राफ' और 'यथार्थ का डोक्यूमेंटेशन' भी कहा गया है।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 3 : फ़ीचर लेखन

इकाई – 4 : रेडियो लेखन, वार्ता लेखन, पटकथा लेखन, कविता लेखन

इकाई की रूपरेखा

3.4.00. उद्देश्य कथन
3.4.01. प्रस्तावना
3.4.02. सम्प्रेषण, माध्यम और लेखन कौशल
    3.4.02.1. माध्यमगत-रचनात्मकता एवं सम्प्रेषण
3.4.03. रेडियो माध्यम हेतु विभिन्न लेखन
    3.4.03.1. भारत (इंडिया) में रेडियो माध्यम लेखन
    3.4.03.2. रेडियो माध्यम लेखन-व्यावहारिक पक्ष
3.4.04. माध्यम, वार्ता-रचना तथा प्रस्तुति
    3.4.04.1. माध्यम, वार्ता-रचना : व्यावहारिक स्वरूप
3.4.05. माध्यम और पटकथा-लेखन व्यवस्था
    3.4.05.1. माध्यम और पटकथा-लेखन : नमूना-खाका
3.4.06. कविता रचना एवं प्रस्तुति-कौशल
    3.4.06.1. कविता रचना के बिन्दु
3.4.07. पाठ-सार
3.2.08. बोध प्रश्न
3.4.09. व्यावहारिक (प्रायोगिक) कार्य
3.4.10. उपयोगी / सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

3.4.00. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई के विषयगत विवेचन को जानने के उपरान्त आपको निम्नलिखित अवधारणाओं की व्यापक जानकारी एवं उसके अनुप्रयोगों का कौशल प्राप्त हो सकेगा –

i. माध्यमगत-लेखन कौशल क्या है ? और उसे कैसे अर्जित किया जाए ?
ii. दृश्य-श्रव्य जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन-तकनीक की दिशाएँ।
iii. रेडियो एवं अन्य माध्यमों के लिए वार्ता तथा पटकथा लेखन-कौशल।
iv. कविता-रचना / लेखन-प्रक्रिया एवं उसकी प्रस्तुति-कला।
v. प्रस्तावित / सन्दर्भित कौशल-अर्जन के व्यावहारिक तथा रोजगारोन्मुख क्षेत्र।

3.4.01. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तक आते-आते आपने सृजनात्मक लेखन के कई पक्षों को जाना। इसी के अन्तर्गत, फ़ीचर लेखन की समूची अवधारणा के साथ-साथ विभिन्न विषयों को लेकर फ़ीचर लेखन की व्यावहारिक तकनीक से अवगत करवाया गया। इसी शृंखला में अब हम विशेषकर, दृश्य-श्रव्य संचार-माध्यमों को ध्यान में रखकर सृजनात्मक लेखन के परिप्रेक्ष्य में, रेडियो, वार्ता, पटकथा तथा कविता लेखन की अवधारणा को समझते हुए, कथित लेखन के व्यावहारिक-कौशल (Practical-Skills) को आत्मसात करने का प्रयास करेंगे। साथ ही आपके ध्यान में यह भी लाया जाएगा कि प्रस्तुत लेखन-कौशल के आधार पर, आधुनिक जनसंचार माध्यमों को लेकर, रोज़गार के कौन से क्षेत्र हो सकते हैं ? 21वीं सदी में, इस प्रकार के कौशल की कितनी माँग है ? चलिए, इन सब मुद्दों को समेटते हुए व्यावहारिक कार्य के साथ हम अपनी यात्रा पर आगे बढ़ें।

इस दिशा में हम सबसे पहले, सम्प्रेषण, माध्यम और लेखन कौशल को समझते हुए, उसके अन्तर्गत माध्यमगत-रचनात्मकता सम्प्रेषण के परिप्रेक्ष्य में, श्रव्य-दृश्य माध्यमों के लिए, रेडियो-लेखन के आधारभूत सिद्धान्तों के साथ-साथ, वार्ता, पटकथा एवं कविता-रचना / लेखन पर विमर्श करेंगे।

3.4.02. सम्प्रेषण, माध्यम और लेखन कौशल

प्रस्तुत पाठ-शृंखला के अन्तर्गत 'माध्यम भाषा, संचार भाषा' की अवधारणाओं के सन्दर्भ में आप 'विचार अभिव्यक्ति, माध्यम और संचार' तथा 'माध्यम, अभिव्यक्ति और संचार' को लेकर विवरणात्मक विषय-वस्तु प्राप्त कर चुके हैं। यहाँ आप, अभिव्यक्ति / सम्प्रेषण के माध्यमों को लेकर विभिन्न प्रकार के लेखन-कौशलों के व्यावहारिक एवं प्रयोगात्मक पक्ष से रू-ब-रू होंगे। इसी दिशा में आपके ध्यान में आएगा कि अपने विचारों को, माध्यमगत-रचनात्मकता की व्यवस्था को समझते हुए, कैसे सम्प्रेषित किया जाए ? आइए, इन्हीं सन्दर्भों को लेकर आगे बढ़ें।

3.4.02.1. माध्यमगत-रचनात्मकता एवं सम्प्रेषण

हम जानते हैं अपने विचार सम्प्रेषण (Communication) हेतु हमें किसी न किसी माध्यम / साधन (एक या अनेक) Tool(s) / Instrument(s) की आवश्यकता होती है। ज़ाहिर है हम, अपने विचार / सन्देश को अपेक्षित प्रभावशाली-रचनात्मक तरीक़े से सम्प्रेषित करना चाहते हैं। इसके लिए ज़रूरी है हम, सम्प्रेषण हेतु प्रयोग में लाए जानेवाले माध्यम (मों) यथा, मौखिक / श्रव्य / वाचिक / दृश्य / एवं मिश्रित-सामासिक (Composite) को, एकल (Mono), द्वि, (Dual), बहु (Multi), अतितीव्र (Hyper) रूप के साथ जोड़ कर उसके समग्र व्यक्तित्व को, उसकी (+), (-) शक्तियों / सीमाओं के साथ जान / समझ लें। इन मुद्दों को जान लेने के साथ ही माध्यमगत-रचनात्मकता एवं सम्प्रेषण-विधान को समझा जा सकता है। इस प्रकार यहाँ हमारे ध्यान में यह भी आता है कि किसी माध्यम की रूपगत तथा तकनीकी व्यवस्था, अभिव्यक्ति / सम्प्रेषण की दिशा में, उसकी रचनात्मक-क़ाबिलियत तय करती है। अतः जो माध्यम अपनी रूपगत / तकनीकी विशेषताओं में जितना अधिक

परिपूर्ण (Perfect) होगा, अपनी रचनात्मकता एवं सशक्त सम्प्रेषण / अभिव्यक्ति को लेकर उतना ही प्रभावशाली भी होगा।

प्रस्तुत विवेचन के आधार पर जब हम रेडियो माध्यम को समझेंगे तो पाएँगे, यह एकल-श्रव्य यान्त्रिक तकनीकी माध्यम है, जो लगभग हर प्रकार की ध्वनि को अपनी तकनीकी व्यवस्था के अनुसार विशेष-प्रकार / प्रभाव से सम्प्रेषित कर सकता है। परन्तु इस यान्त्रिक-माध्यम में रचनात्मकता / कलात्मकता तब आती है जब कार्यक्रम-निर्माता / प्रस्तोता विषयवस्तु के भाव / मर्म को, लक्षित-श्रोता (Target-Audience) को ध्यान में रखकर अपने यान्त्रिक-ज्ञान-कौशल से प्रयुक्त-माध्यम (रेडियो) द्वारा उजागर / स्थापित करता है। इस स्थिति में, कथित माध्यम जहाँ एक ओर अपनी रचनात्मक परिपूर्ण तकनीकी-क्षमता / व्यवस्था को उजागर करता है वहीं, श्रोता तक / भी / रचना / विषयवस्तु के सन्देश को प्रभावी ढंग से सम्प्रेषित करने में सफल होता है।

सृजनात्मक लेखन के खण्ड-3 : फ़ीचर लेखन की इकाई-2 : संचार माध्यम और विभिन्न विषयों पर फ़ीचर लेखन के अन्तर्गत आपने, फ़ीचर लेखन के मानकों को समझा होगा। अब हम यहाँ, रेडियो कार्यक्रमों के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाली सामग्री के लेखन-कौशल को लेकर सोदाहरण चर्चा करेंगे।

3.4.03. रेडियो माध्यम हेतु विभिन्न लेखन

रेडियो की आत्मा / प्राण, नाद / ध्वनि है। हम जानते हैं, सदियों पहले सृष्टि का आरम्भ ही महाविस्फोट के रूप में स्थापित ध्वनि (तत्त्व) से हुआ। ध्वनि ही भाषिक-सन्देश-सम्प्रेषण का आधार बिन्दु है। भाषा-कौशलों में भाषा सीखने का पहला / आधारभूत कौशल ही ध्वनि को सुनना और फिर बोलना है। और फिर पढ़ने, लिखने और भाषा को देखने के कौशलों की बात आती है।

रेडियो, जिसे भाषिक स्तर पर सामान्यतः बोलने और सुनने (श्रवण) माध्यम की श्रेणी की श्रेणी में रखा जाता है, गहराई से देखा जाए तो सन्देश सम्प्रेषण के स्तर पर यह पाँचों कौशलों का निर्वाह करता है ... इनमें चार कौशल यथा :- बोलना / सुनना / सामग्री-पढ़ना / सामग्री (पटकथा) लिखना तो स्पष्ट हैं; परन्तु, देखने वाले के कौशल की स्थापना को हम रेडियो कार्यक्रमों विशेषकर; आँखों देखा हाल, नाट्य-प्रस्तुति, समाचार-वाचन (दुर्घटना / दंगों / बाढ़ / भूकम्प / निधन / समारोह आदि) जैसी प्रस्तुतियों में, भाषा पर आधारित (भाषिक) बिम्बों में देख / समझ सकते हैं।

3.4.03.1. भारत (इंडिया) में रेडियो माध्यम लेखन

1895 में, इतालवी भौतिकी-वैज्ञानिक इलेक्ट्रिकल इंजीनियर मारकोनी गुल्येल्मो (Marconi Guglielmo) द्वारा रेडियो संचार के आविष्कार के साथ ही आज के रेडियो-स्वरूप के स्वस्थ बीज पनपे। इसी खोज के लिए उन्हें 1909 में (Shared :- कार्ल फर्डिनन्ड ब्राउन की भागीदारी में), नोबेल पुरस्कार मिला। परतन्त्र भारत में, रेडियो प्रसारण का आरम्भ 23 जुलाई 1927 को हुआ। 8 जून 1936 को इसका नाम बदलकर ऑल

इंडिया रेडियो कर दिया और साल 1957 में इसे आकाशवाणी के नाम से पुकारा जाने लगा। उन दिनों, श्रीलंका ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन (रेडियो सीलोन) पर आने वाली, अमीन सयानी की जादूभरी आवाज में प्रस्तुत बिनाका-गीतमाला (प्रायोजित कार्यक्रम) को, कौन भूल सकता है ? रेडियो-माध्यम के साथ, गिरिजाकुमार माथुर ने पण्डित नरेन्द्र शर्मा, गोपालदास, केशव पण्डित, सुमित्रानन्दन पन्त जैसी कई हस्तियाँ जुड़ी रहीं। आज भारत में रेडियो-केन्द्रों का बड़ा नेटवर्क तैयार हुआ। आकाशवाणी के पास फिलहाल देशभर में 420 स्टेशन मौजूद हैं जो लगभग, 23 भाषाओं और 146 बोलियों में कार्यक्रम तैयार करते हैं; जिनकी पहुँच तक़रीबन (तक़रीबन) 99 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या और 92 प्रतिशत क्षेत्रफल तक है। इनके अन्तर्गत, समाचारों / वार्ताओं / चर्चाओं आदि के साथ-साथ, ज्ञानवर्धक, मनोरंजनक विषयों (फिल्म-संगीत / फिल्म-नाट्यरूपान्तरण / हवामहल, आदि) को लेकर, विविध भारती / आकाशवाणी का पंचरंगी-कार्यक्रम जैसे अनेक लोकप्रिय कार्यक्रम आरम्भ हुए। ऐसे ही मनोरंजक मुद्दों को नाटकीय शैली में, मिश्रित भाषा/ओं (हिंग्लिश + स्थानीय इंग्लिश) लेकर, निजी एफ.एम. चैनलों के आ / छा जाने के बाद आकाशवाणी (AIR News) की आवाज फीकी पड़ती गई। परन्तु, भारत और दुनिया के सभी राष्ट्रों में रेडियो की अपनी अलग शक्ति है। इसकी बौद्धिकता और प्रामाणिकता निर्विवाद है। बी.बी.सी. / आकाशवाणी या अन्य रेडियो केन्द्रों से प्रसारित हरेक शब्द, श्रोताओं द्वारा ब्रह्म-शब्द के रूप में लिया जाता है। अतः रेडियो ने भी अपनी जाम्बवन्ती शक्ति को पहचाना तथा अपने कार्यक्रमों को, युवा-जन-सम्प्रेषणीय मानक भाषा-रूप / शैली में आकर्षक-विषयवस्तुओं के साथ, आधुनिक यान्त्रिक ध्वनियों को लेकर प्रस्तुत किया। इससे रेडियो की लोकप्रियता बढ़ी। ज़ाहिर है अब, रेडियो-कार्यक्रमों के लिए विशेष लेखन-रूप-शैली कौशल की आवश्यकता है। आइए देखें, वे कौनसे बिन्दु हैं जिन्हें ध्यान में रखकर इस दिशा में व्यावहारिकता के साथ आगे बढ़ा जा सकता है ...

(i) विषय / विषय-वस्तु का चुनाव (नवीनता तथा लक्षित श्रोता-वर्ग के अनुसार)

(ii) विषय-प्रस्तुति-प्रकार :-> इंटरव्यू / परिचर्चा / वार्ता / नाट्य-शैली / फ़ीचर / गीत-संगीत कार्य-क्रम / आँखों-देखा हाल / उद्घोषणा आदि; जीवन्त, संक्षिप्त, दोहराव-रहित आदि ...

(iii) स्क्रिप्ट-लेखन

(iv) तकनीकी-पक्ष :-> स्क्रिप्ट-अनुसार रिकॉर्डिंग (आवाज़ / मौन / संगीत आदि)

(v) स्क्रिप्ट के केन्द्रीय-सन्देशानुसार रिकॉर्डेड-सामग्री का सम्पादन

(vi) तैयार सामग्री को डिजिटल फॉर्मेट में बदलकर उसे इंटरनेट या वेबसाइट पर लोड करने हेतु रेडियो में आवाज के मॉड्यूलेशन (सही उतार-चढ़ाव), नाटकीयता, विशेष ध्वनि-प्रभाव डालकर प्रभावशाली और सुगम बनाना

(vii) अन्य मुद्दे * उपयुक्त स्वर * लेखक और प्रस्तुतिकार का भाषा-ज्ञान-अधिकार रोचक प्रयोग तथा विभिन्न विषयों में ज्ञान एवं रुचि * उच्चारण की शुद्धता * पूर्वाभ्यास * अन्य प्रतिभागियों के साथ, उपयुक्त समय पर तालमेली-तकनीक * परिचर्चा / विमर्श / समय आदि के अनुसार संचालन-कुशलता * श्रोता की कल्पना शक्ति का अंदाज़ एवं * आँखों देखा वृत्तान्त / विवरण जैसे मुद्दे प्रमुखता से आते हैं।

जीवों के व्यवहार को लेकर जो शोध हुए हैं या हो रहे हैं उनमें, मनुष्य को केन्द्र में रखकर कई बातें सामने आई हैं। आपने महसूस किया होगा / कि / शिशु भी कई बार नींद में महीन-हँसी हँसते / मुस्कराते / रोते देखे गये हैं। ज़ाहिर है, उनके मस्तिष्क में कुछ खास बिम्ब बनते होंगे जो, उन्हें ऐसा सन्देश सम्प्रेषित करते होंगे जिसके प्रभाव से उनमें मुस्कराने / रोने का भाव (रस / Chemical) पैदा होता होगा जिससे, कथित भाव का संचार पैदा होता है। ज्ञातव्य है, आकाशवाणी से हवामहल के लिए झलकियाँ / प्रहसन, नाटक आदि ऐसे कार्यक्रम थे जिन्हें श्रोता कथित रेडियो-प्रस्तुति की दृश्य-बिम्बों-युक्ति पर सवार होकर, अपनी कल्पना के द्वारा, चाव से सुन / और देख कर मनोरंजित होते थे। एक समय था जब, असरानी, ओम पुरी, ओम शिवपुरी, अमरीश पुरी, दीना पाठक, यूनुस परवेज़ जैसे कई नामी कलाकारों ने हवामहल के नाटकों में वाक्-अभिनय कर श्रोताओं को अभिभूत किया। हवामहल की कई झलकियाँ आज भी लोगों की स्मृतियों में अमिट छाप छोड़े हुए हैं। रेडियो की ध्वन्यात्मक-आत्मा, अपनी विशेष-जादुई ध्वनियों द्वारा श्रोताओं को आज भी नॉस्टेसलजिक बनाए हुए हैं। आज का युवा वर्ग, रेडियो-जॉकी-किरदारों का दीवाना है। उसी प्रकार किसी घटना, समारोह या खेल का आँखों देखा-रेडियो-कार्यक्रम / विवरण भी प्रस्तुति के लिए विशेषरूप से निम्नलिखित बातों का ध्यान रखकर लेखन-स्वरूप की माँग करता है :-

(i) समारोह को कवर करते समय आधिकारिक क्रमवार विवरण / कार्यक्रम प्राप्त करना
(ii) सन्दर्भ-लिंकिंग हेतु, आयोजन का पिछला इतिहास, और सम्प्रति उद्देश्य आदि जान लेना।
(iii) प्रतिभागियों / आयोजकों के बारे में तथ्यात्मक जानकारी प्राप्त करना
(iv) ज्ञानवर्धन, रोचकता तथा सुविधा हेतु समारोह स्थल की ऐतिहासिक / भौगोलिक जानकारी देना, खेल की कमेंट्री / समारोह का आँखों देखा हाल जैसी प्रस्तुतियों में इसका विशेष महत्त्व रहता है।
(v) सूचनाओं को व्यवस्थित क्रम में तैयार कर लेने के साथ ही कमेंटेटर की स्पष्ट-अभिव्यक्ति, निर्धारित / नियन्त्रित गति, (विशेषकर खेलों की आँखों देखी-प्रस्तुति में) हर पल बदलते दृश्यानुसार, उपयुक्त शब्दों का चयन और सधी हुई वाक्य-संरचना होनी चाहिए।
(vi) उपयुक्त अवसर पर चुप रहकर / अन्तराल देकर, कथित-स्थल की गतिविधियों को श्रोता तक ध्वनियों / संगीत-लहरियों द्वारा प्रस्तुत करते रहना
(vii) आर्काइब्ज़ के लिए, स्टॉक-सामग्री को ध्यान में रखकर विभिन्न अवसरों का आँखों देखा हाल रिकॉर्ड कर लेना चाहिए इससे, त्रुटियों को दूर रखा जा सकता है।

इस प्रकार, रेडियो-लेखन को लेकर प्रस्तुत किये गए सभी मुद्दे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। रेडियो माध्यम के लिए वार्ता, पटकथा तथा कविता-लेखन पर बात करते समय इन सभी मुद्दों को ध्यान में रखकर सोदाहरण चर्चा की जाएगी। परन्तु यहाँ, रेडियो लेखन के सन्दर्भ में भाषा के सन्दर्भ में इतना ध्यान में रखना चाहिए कि भाषा रेडियो की आत्मा है। रेडियो का कोई भी कार्यक्रम हो बिना भाषा प्रयोग के पूरा नहीं हो सकता। भारत एक बहु-भाषी देश है जहाँ लगभग, 179 भाषाएँ, 500 के आसपास बोलियाँ एवं 1600 के आसपास मातृभाषाएँ हैं। इसी मुद्दे में बताया गया है कि आकाशवाणी के केन्द्र, 23 भाषाओं और 146 बोलियों में कार्यक्रम तैयार करते हैं; जिनकी

पहुँच तक़रीबन (तक़्रीबन) 99 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या और 92 प्रतिशत क्षेत्रफल तक है। इन सभी भाषाओं में रेडियो कार्यक्रम तैयार / प्रस्तुत करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि रेडियो-प्रसारण की भाषा ऐसी हो जिसे श्रोता वर्ग (विशेषकर युवा) आसानी से समझ सके। भूमण्डलीकरण के बाद आज लगभग हर भाषा सामासिक (मिश्रित) रूप लिए हुए है। युवा-पसंद एफ.एम. चैनल, अधिकतर इसी मिश्रित भाषा का प्रयोग करते हैं। जिनमें, अँग्रेजी-मिश्रण रूप स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है; अतः हमारी भाषाएँ, हिंग्लिश / गुज्लिंगिश / तमिलिंगिश आदि भाषाई रूपों में युवावर्ग को अपनी ओर खींच रही हैं। चूँकि रेडियो, सस्ता-सुगम, मौखिक / श्रवण माध्यम है अतः यह सामान्य, विद्वान्, निरक्षर, साक्षर और बाल, युवा-वृद्ध, अमीर-गरीब सभी को आसानी से उपलब्ध होने के साथ साथ आसानी से समझ में आता है। अन्य प्रान्तों के लोग भी इसी हिन्दी को आसानी से समझ लेते हैं। हिन्दी सिनेमा ने भी, इसी हिन्दी-भाषा रूप को अपने-गीतों / संवादों में प्रयुक्त कर, अपना क़ाफी विस्तृत फलक बनाया है। इन सबमें अधिकतर, हिन्दी के सामासिक (मिश्रित) रूप का ही प्रयोग होता है। चलिए अब, रेडियो-कार्यक्रमों के लिए विशेष लेखन-रूप-शैली-कौशल के मुद्दों को ध्यान में रखते हुए, लेखन के व्यावहारिक पक्ष को वास्तविक नमूनों को ध्यान में रखा जाए ...

3.4.03.2. रेडियो माध्यम लेखन-व्यावहारिक पक्ष

पूर्व मुद्दे के सन्दर्भ में प्रस्तुत है; आकाशवाणी के 'समाचार संध्या' प्रस्तुति के अंशों का वास्तविक नमूना

समाचार संध्या	**2045 HRS** **02.09.2018**

मुख्य समाचार :-

- उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडू ने राजनैतिक दलों से, राष्ट्रीय महत्त्व के मुद्दों पर दलगत राजनीति से ऊपर उठने की अपील की।
- रक्षामंत्री निर्मला सीतारम्न् ने सेना-प्रमुख के साथ जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल सत्यपाल मलिक से मुलाकात में राज्य की सुरक्षा स्थिति पर चर्चा की।
- छत्तीसगढ़ के नारायणपुर जिले में सुरक्षा बलों के साथ मुठभेड़ में चार नक्सली मारे गए।
- राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद तीन देशों की यात्रा के पहले चरण में साइप्रस पहुँचे।
- उत्तरप्रदेश में वर्षा से जुड़ी घटनाओं में पिछले लगभग चौबीस घंटे में बीस लोग मारे गए।
- जकार्ता में 18वें एशियाई खेल, भव्य समारोह के साथ सम्पन्न। भारत ने अब तक के सर्वाधिक उनहत्तर पदक जीते। ***

उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडू ने राजनैतिक दलों से राष्ट्रीय महत्त्व के मसलों पर दलगत हितों से ऊपर उठकर विचार करने को कहा है। आज नई दिल्ली में अपनी पुस्तक 'मूविंग ऑन मूविंग फॉरवर्ड : अ ईयर इन ऑफिस' के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा लोकार्पण के बाद अपने भाषण में श्री नायडू ने कहा कि पार्टियों को विधान मण्डलों के भीतर और बाहर अपने सदस्यों के लिए व्यवहार की आचार संहिता बनाने के बारे में आम राय कायम करनी चाहिए। @@@

इस अवसर पर प्रधानमंत्री ने अपने एक वर्ष के कार्यकाल का लेखा-जोखा पेश करने के लिए श्री नायडू की प्रशंसा की। श्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि श्री वेंकैया नायडू को जो भी काम सौंपा गया, उसे उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ किया और वे हर काम के अनुरूप खुद को सहजता से ढाल लेते थे। वेंकैयाजी के साथ सालों से साथ काम करने का अवसर मिला। टीम में कैसे काम किया जाता है। दायित्व कोई भी हो जिम्मेदारियाँ कभी कम नहीं होती हैं। पदभार से ज्यादा महत्त्व कार्यभार का और उसी को लेकर वेंकैयाजी चलते रहे। प्रधानमंत्री ने कहा कि श्री नायडू को समाज के सभी वर्गों के लोग समान रूप से पसंद करते हैं। लोकसभा अध्यक्ष सुमित्रा महाजन ने कहा कि श्री नायडू इस बात के एक अनूठे उदाहरण हैं कि सामान्य पृष्ठभूमि से आया व्यक्ति भी देश के सर्वोच्च पद तक पहुँच सकता है। पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह ने कहा कि उपराष्ट्रपति कार्यालय को श्री नायडू के प्रशासनिक और राजनैतिक अनुभव का काफी लाभ मिला है। कार्यक्रम में पूर्व प्रधानमंत्री एच.डी देवेगौड़ा ने कहा कि श्री नायडू राज्यसभा की मर्यादा और शुचिता को बनाए रखने के लिए शानदार काम कर रहे हैं।

.....

जम्मू-कश्मीर के बांदीपोरा जिले में आतंकवादियों का मुकाबला करते हुए कल शहीद हुए सेना के राइफलमैन शिवकुमार का आज किश्तवाड़ में उनके पैतृक गाँव पालमार में पूरे सैन्य सम्मान के साथ अन्तिम संस्कार कर दिया गया।

.....

उत्तरप्रदेश के कई जिलों में मूसलाधार वर्षा से बाढ़ जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है। पश्चिमी उत्तरप्रदेश में बाढ़ का खतरा उत्पन्न हो गया है। पिछले लगभग 24 घंटे में वर्षा से जुड़ी घटनाओं में 20 लोग मारे गए हैं। बुंदेलखंड में भारी वर्षा के बाद भारतीय वायु सेना ने बाढ़ में फँसे 14 लोगों को बाहर निकाला है।

.....

भारत और इंग्लैंड के बीच साउथैम्पटन में खेल जा रहे चौथे क्रिकेट टेस्ट मैच में भारत को जीत के लिए 245 रन बनाने हैं। आज चौथे दिन भारत ने ताजा समाचार मिलने तक 5 विकेट पर 144 रन बना लिए थे।

.....

राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद और उपराष्ट्रपति एम. वेंकैया नायडू ने जन्माष्टमी की पूर्व संध्या पर देशवासियों को शुभकामनाएँ दी हैं।

.....

प्रस्तुत नमूने के चुनींदा हिस्सों(*** , @@@) के व्याख्यात्मक मुद्दे :-

*** :- मुख्य समाचार (Head Lines) के 6 बिन्दुओं (०) की शब्द संख्या -> 116

इनका उच्चारण-समय लगभग 55 सेकंड; i.e. 116 ÷ 55 = 2.1 सेकंड प्रति शब्द-गति

@@@ :- समाचार (विस्तार) – अंश [नमूने के रेखांकित अंश] शब्द संख्या -> 78

इनका उच्चारण-समय लगभग 72 सेकंड; i.e. 78 = 1.08 सेकंड प्रति शब्द-गति

प्रस्तुत नमूने के विवरण से यह तथ्य सामने आता है कि 'मुख्य/ शीर्षक समाचार' प्रस्तुति, (विस्तृत / खुलासे) समाचार वाचन / प्रस्तुति की अपेक्षा अधिक समय लेती है; चूँकि मुख्य / शीर्षक-समाचार पूरे समाचारों के कलेवर का खाका रेखांकित करते हैं। आपने ध्यान दिया होगा कभी-कभी श्रोता / दर्शक समयाभाव के कारण मुख्य / शीर्षक-समाचार सुन / देख कर उठ जाते हैं। भाषा-रूप / शैली; सम्प्रेषणीय और जीवन्त हो। चलिए, अब हम वार्ता-प्रस्तुति की ओर रुख करते हैं ...

3.4.04. माध्यम, वार्ता-रचना तथा प्रस्तुति

रेडियो प्रसारणों की महत्त्वपूर्ण विधाओं में वार्ता (Talk) बहुत ही पसंदीदा विधा है। चूँकि वार्ता लेखन, विशेष और सामान्य विषयों को लेकर, जनसंचार लेखन के पारम्परिक-रूपों में (लेख आदि) एक विशेष स्थान रखता है। अतः इसके लेखन और इसकी रेडियो-प्रस्तुति पर विशेष ध्यान दिया जाता है। ज्ञातव्य है, वार्ता का अवधारणात्मक अर्थ ही संवाद और विमर्शात्मक बातचीत-शैली पर टिका है। इसलिए इसमें, विशेष शैलीपरक भाषा (लेखन :- वाक्य-विन्यासों / शब्दावली / शब्द-शक्तियों को खोलने / स्थापित करने वाले विराम-चिह्नों (Punctuation-Marks) के प्रयोग आदि) तथा प्रस्तुति :- शब्द (भाषा) में निहित / अपेक्षित अर्थवत्ता / शक्तियों को, विराम-चिह्नों के शैलीपरक-प्रयोग के साथ स्थापित करनेवाले उच्चारण एवं तकनीकी-उपकरणों की उच्चारण / प्रस्तुति-व्यवस्था द्वारा, विशेष प्रभाव आदि के प्रयोग से, रेडियो पर उसकी सम्प्रेषण-प्रस्तुति के विशेष महत्त्व को बढ़ा देता है। अतः प्रस्तुत मुद्दों पर ध्यान देना चाहिए :-

(i) लेखन में, बोलचाल की सामासिक-भाषा का अधिक प्रयोग होना चाहिए।
(ii) वार्ता पढ़ने वाले को लिखित-मसौदा, विराम-चिह्नों के साथ लिखना चाहिए।
(iii) विषय की प्रस्तुति सरल / सम्प्रेषणीय / स्वाभाविक होनी चाहिए।

(iv) सामान्यतः वार्ता 8 से 10 मिनिट की होती है । वार्ता-प्रस्तुति हेतु निर्धारित समयानुसार, सामग्री-मसौदा तैयार करते वक़्त, वाचन (विराम-चिह्नों / गति / लय / भाव आदि) में लगने वाले समय आदि को ध्यान में रखकर, शब्द-सीमा तय करनी चाहिए।

(v) लेखन में तारतम्यता और क्रमबद्धता होनी चाहिए।

(vi) दृश्य-श्रव्य माध्यम से वार्ता प्रस्तुति अपेक्षाकृत तकनीकी और चुनौती भरा कार्य है। वार्ता-मसौदे की भाषा-शैली में यहाँ प्रस्तुत पाँचों मुद्दे तो आएँगे ही परन्तु निर्धारित मसौदे की प्रस्तुति दृश्य-श्रव्य में साथ-साथ / समानान्तर रूप में होनी है अतः जहाँ, वार्ता-मसौदे के सपोर्ट में दृश्य सामग्री का होना ज़रूरी है वहीं, प्रस्तोता को, अपने प्रोफाइल (वेषभूषा, हावभाव, भाषा आदि) तथा सपोर्टिंग-दृश्य सामग्री की गतिमय प्रस्तुति (Timing) के साथ तालमेल बिठाकर, अपनी मौखिक प्रस्तुति पर विशेष ध्यान देना होता है।

(vii) दृश्य-श्रव्य माध्यमों की प्रस्तुतियों में, तथ्यों की पक्की पुष्टि किए बिना उन्हें तोड़-मड़ोड़ कर केवल सनसनी पैदा कर; देश की अखण्डता, एकता, समाजिक-व्यवस्था को धूमिल कर, तनाव, उपद्रव और विद्रोह जैसी विस्फोटक स्थिति पैदा करना, पत्रकारिता की आचार संहिता (Code of Ethics for the Press-1976) के अनुसार दण्डनीय अपराध हो सकता है। अगर, भूलवश या किसी हस्ती के बयान को लेकर कोई खबर या टिप्पणी गलत प्रस्तुत हुई हो तो तुरन्त उसका खण्डन कर देना चाहिए। प्रयुक्त की जाने वाली भाषा में अश्लील / आपत्तिजनक शब्दों / टिप्पणियों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। साथ ही, न्यायालय से सामग्री को बिना किसी टिप्पणी के प्रस्तुत करना चाहिए ताकि न्यायालय की अवमानना न हो।

ज्ञातव्य है, यहाँ प्रस्तुत ये आधारभूत मुद्दे, जनसंचार माध्यमों पर प्रस्तुति हेतु दी जानेवाली सामग्री को लेकर सब पर लागू होते हैं।

3.4.04.1. माध्यम, वार्ता-रचना : व्यावहारिक स्वरूप

आइए, अब हम टी.वी. पर प्रस्तुत एक वार्तानुमा-वृत्तान्त के आधार पर तैयार किए गए वार्ता नमूने को देखें, जिसकी विषयवस्तु में, श्रव्य एवं दृश्य माध्यम की प्रकृति के अनुसार थोड़े बदलाव के साथ, दोनों माध्यमों में प्रयुक्त किया जा सकता है :-

मूक-भावमय रिश्ते

(प्रस्तावित शीर्षक)*

"मानवीय सभ्यता के लिए ढाई आखर का शब्द 'प्रेम', पहेली बना हुआ है ..." जी हाँ, आपने सही सोचा ... यह प्रेम / स्नेह-सम्बन्ध पहेली और भी गूढ़ हो जाती है जब हम, किसी टी.वी. कार्यक्रम में देखते हैं ... (सम्भवतः दक्षिण अमरीका में) कि, किसी बूढ़े मछुवाहे ने किसी पैंनगुइन को समुद्र किनारे घायल अवस्था में

देखा, वह उसे घर ले आया, सेवा की, स्वस्थ किया ... पैंनगुइन कुछ दिन वहाँ रहा फिर अचानक एक दिन गायब हो गया ! ... मछुवाहा भी भूल गया ... फिर अगले वर्ष उन्हीं दिनों वही पैंनगुइन, मीलों समुद्री यात्रा कर, फिर मछुवाहे के सामने आ खड़ा हुआ। दोनों भाव-विभोर होकर एक दूसरे को चूमते रहे ... पैंनगुइन कुछ दिन मछुवाहे के घर, परिवार के सदस्य की तरह रहा, एक दिन फिर गायब हो गया ... अब उसका यह सिलसिला प्रति वर्ष की नियमित आदत बन गया। अब मछुवाहा भी उसी अवधि में, प्रति वर्ष समुद्र किनारे उसका इंतज़ार करता है और पैंनगुइन भी उसी अवधि में बराबर आता है ... दोनों, भाव-विभोर होकर एक दूसरे से मिलते हैं ... और बिछुड़ते हैं ... अब इस जैविक सम्बन्ध की प्रगाढ़ता को कौन समझे ? कैसे परिभाषित करे ... ?

बचपन में हम बुज़ुर्गों से एक कहानी सुनते थे – "किसी इंसान ने किसी पीड़ित शेर को देखा, शेर के पैर में काँटा चुभ गया था, उस दयालु इंसान ने शेर के पैर से काँटा निकाल दिया। शेर कृतज्ञ भाव से वहाँ से चला गया।" पर अब हम इस तरह के आश्चर्य कर देने वाले उदाहरण साक्षात् रूप में दूरदर्शन के कार्यक्रमों में देखते हैं जिनमें, सप्रमाण यह तथ्य हमारे सामने आता है कि किस प्रकार "किसी रेंजर (वनरक्षक) ने जंगल में, शेर के शावक को अकेले सहमे / कातर दशा में पाया, लगता था उसकी माँ-शेरनी कहीं मारी गई है या, जंगल / पशु-जीवन की सच्चाइयों के चलते इसे छोड़ कर आगे निकल गई है। रेंजर उसे घर लाता है। शिशुओं को दूध पिलाने वाली बोतल से दूध पिला-पिला कर बड़ा करता है। बढ़ती उम्र के अनुसार उसकी डाइट का ध्यान रख कर उसे पाल-पोस कर जवान करता है ... शेर, घर के सभी सदस्यों के साथ घुल-मिल जाता है। कभी किसी से हिंसक बर्ताव नहीं करता। उस देश के क़ानून के अनुसार निश्चित वय प्राप्त होने पर शेर को निर्धारित वन में छोड़ना पड़ता है ... परिवार, भारी मन से इस बिछोह को स्वीकारता है ...। काफ़ी अवधि बीत जाने के बाद एक दिन यह परिवार उस शेर से मिलने जाता है। उस वन में निर्धारित बाड़े की लोहे की तारों से घिरी सीमा पर जाकर, व्याकुल नज़रों से शेरों को निहारता है ... लगभग सभी एक जैसे ..., कैसे पहचाने अपने ... शेर को ... ? पर आश्चर्य ! ..., अचानक एक शेर दूर से भागता हुआ उनकी तरफ आता है और जंप मार कर उनसे लिपट जाता है ... अपने पंजों में मुँह को पकड़ कर प्यार से चूमता-चाटता रहता है ... परिवार भी भाव-विह्वल होकर अपने बच्चे से मिलता है ..."

प्रकृति इस तरह के कई उदाहरणों से भरी हुई है ... पर हम, प्रकृति की व्यवस्था को कितना जान और विश्लेषित कर पाते हैं यह विचारणीय प्रश्न है ?

(एक टी.वी.-कार्यक्रम पर आधारित, आलेख-नमूना – प्रस्तोता : Kishore Vaswani)

* शीर्षक में परिवर्तन भी किया जा सकता है।

प्रस्तुत वार्ता नमूने के लेखन पक्ष को भी ध्यान में रखते हुए अब हम, पटकथा-लेखन की दिशा में आगे बढ़ेंगे।

3.4.05. माध्यम और पटकथा-लेखन व्यवस्था

जब रचनाकार को, किसी माध्यम विशेष द्वारा अपने विचारों / अपनी कल्पना को व्यवस्थित रूप से अभिव्यक्त करना होता है तब उसे अपेक्षित-विषय वस्तु को, इच्छित माध्यम की प्रकृति के अनुसार, कथ्य शैली में लिखित रूप में ढालना होता है । मीडिया-तकनीकी सन्दर्भों में इसे पटकथा लेखन के रूप में लिया जाता है । प्रसिद्ध पटकथा लेखक मनोहर श्याम जोशी के अनुसार "पटकथा से पहले आती है कथा । पटकथा कुछ और नहीं, कैमरे से फिल्माकर पर्दे पर दिखाए जाने के लिए लिखी हुई कथा है, "दृश्य-श्रव्य माध्यम में बताने से बेहतर होता है दिखाना" (दृश्यात्मक-कथ्य शैली में लिखना) (सन्दर्भ :- 'पटकथा लेखन एक परिचय', लेखक – मनोहरश्याम जोशी, राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, सं. आवृत्ति 2011 *-*) पटकथा की अवधारणा को प्रसिद्ध दृश्य-श्रव्य मीडिया लेखक Anthony Friedmann ने अपनी पुस्तक Writing For Visual Media (Focal Press, New Delhi, pg. 7, Ed. 2001) में स्पष्ट किया है – "Although, visual writing for the screen involves description, it is not necessary descriptive prose with a lot of adjectives. An image communicates both by logical deduction and emotional implication. A visual medium makes demands on both by using signs, symbols, and icons." ज़ाहिर है, श्रव्य-दृश्य माध्यम द्वारा अभिव्यक्ति के ये ऐसे तकनीकी बिन्दु हैं जिन्हें, श्रव्य-दृश्य माध्यम द्वारा किसी निर्माण हेतु पटकथा लिखते समय ध्यान में रखना ज़रूरी हो जाता है । विशेषकर, signs, (संकेत, डर के लिए शेर की दहाड़) symbols, (प्रतीक, पूजा की थाली का गिरना कुछ अशुभ घटित होना) and icons. (छवि, किसी वस्तु आदि का चित्र / रेखाचित्र ...)" पटकथा लेखक को इनकी आधारभूत जानकारी होना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित-लेखकीय कौशलीय (Skilled) मुद्दों को ध्यान में रखना ज़रूरी है :-

(i) यहाँ सन्दर्भित, संचार माध्यमों (रेडियो/सिनेमा/टी.वी.) द्वारा अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए तैयार की गई सामग्री, ग़ैर-यान्त्रिक तकनीकी अर्थों में, पटकथा-लेखन के रूप में आती है। अर्थात् , इस सामग्री को सीधे कैमरा / सिनेमेटोग्राफी जैसे यान्त्रिक-तकनीकी अर्थों के साथ जोड़ कर न लिया जाए तो उचित होगा । इस दिशा में सिनेमाई हस्ती राजकपूर का स्पष्ट कहना था कि उन्हें केवल कहानी और संवाद साहित्यिक ढंग से लिखकरदे दिये जाएँ, न कि पटकथा शैली में !

(ii) पटकथा लेखन के भी ज़रूरी है, एक-विचार (ONE LINE IDEA); जिसे विस्तार देकर, माध्यम (श्रव्य, दृश्य, दृश्य + श्रव्य) की प्रकृति के अनुसार / अनुरूप सम्प्रेषणीय रूप में ढालना।

(iii) गहन पारम्परिक एवं दृश्य-श्रव्य भाषा-ज्ञान का होना।

(iv) जहाँ, श्रव्य माध्यम यह कहता है दिखाओ मत, बताओ / सुनाओ (भाव को समझ कर देखने का काम हम अपनी कल्पना के माध्यम से, खुद कर लेंगे) वहीं दृश्य / श्रव्य माध्यम कहता है, केवल बताओ / सुनाओ मत पर दिखाओ भी, बाकी आपकी बात / आपके सम्प्रेषण-सन्देश को हम अपनी कल्पना / अनुभव द्वारा स्वयं पूरी तरह समझ लेंगे।

(v) दृश्य + श्रव्य भाषा-लेखन की क्रियाएँ (Actions) अनिश्चित-वर्तमान काल :- ता / रहा है, ती / रही है / हैं, ते / रहे हैं में प्रयुक्त होती हैं। बाकी काल-निर्धारण, कैमरा / दर्शक करता है।

(vi) अतिरिक्त उत्साह में आकर पटकथा को, स्क्रीन-प्ले / शूटिंग/ निष्पादन-तकनीकी-स्क्रिप्ट में लिखने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

आइए ! प्रस्तुत लेखकीय मुद्दों को ध्यान में रखकर कुछ नमूनों को देखा जाए –

3.4.05.1. माध्यम और पटकथा-लेखन : नमूना-खाका

यहाँ, दिया जा रहा रेडियो-नाट्य अंश, रेडियो के लिए लिखी गई पुस्तक में से साभार, नमूने के तौर पर दिया जा रहा है। इसे, ऊपर दिये गए लेखकीय मुद्दों के आधार पर समझा जा सकता है :-

रेडियो लेखन के विभिन्न प्रकार [369

काली सीढ़ियों का कोरस

[अखिल भारतीय नाटक कार्यक्रम में प्रसारित]

प्रसारण 20–12–1962

लेखक : मधुकर गंगाधर

(मुर्गे की दो–तीन दूरागत आवाज। फिर दरवाजा खुलने का संकेत और फिर पदचाप)

नारी–स्वर : कौन है वहाँ ?
शांत : मैं हूँ, शांता।
नारी–स्वर : ओह, मैं तो डर गई !
शांता : कौन ? सरला ?
सरला : हाँ।
शांता : नींद टूट गई ?
सरला : यही तो मैं भी पूछने को थी।
शांता : क्यों ?
सरला : इस घर में मुँह अंधेरे उठनेवाली सिर्फ मैं हूँ।
शांता : अच्छी आदत है।
सरला : इस आदत के लिए बड़ी तपस्या करनी पड़ी है।
शांता : हाँ, दीदी।
शांता : महादेव की ?
सरला : नहीं, सरस्वती की।
शांता : तुलसीदास ने गलत लिखा है—मोहि न नारि नारि के रूपा—
(खिलखिलाहट)
सरला : तुलसीदास ने सही लिखा है, बिनु भय होंहि न प्रीत—
शांता : मतलब ?
सरला : तपस्या फली ?
सरला : सेकेंड डीविजन में।
शांता : सरस्वती को भी ब्लफ दे दिया।
(हल्की हँसी)

डॉ॰ मधुकर गंगाधर (Dr. Madhukar Gangadhar), पृ. 369 (Paperback (Edition:2016), Bihar Hindi Granth Academy, ISBN 9789385792021

दृश्य-श्रव्य माध्यम के लिए

इस माध्यम के लिए पटकथा-सामग्री को यहाँ-प्रस्तुत # खाके (नमूने*) में लिखा जा सकता है:- (*नोट:- इस #पटकथा {लेखक किशोर वासवानी} पर, भारत सरकार के दूरदर्शन केन्द्र के लिए, वृत्तचित्र 'सेतु' का निर्माण किया गया; जिसे, भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग के दि. 15.6.95 के पत्राचार सं. 20034/ 11/945 रा.भा. [अ.वि.] के अनुसार, हिन्दी दिवस आदि के अवसर कार्यालयों आदि में प्रदर्शित करने की बात कही गई है; ^^कैसेट विश्वविद्यालय लाइब्रेरी में भी उपलब्ध होगा)

नमूना

शॉट/दृश्य से सम्बन्धित सामग्री (प्रॉपर्टी)-संकेत	शॉट/दृश्य से सम्बन्धित, विषयवस्तु का आडियो-आलेख तथा शैली-प्रस्तुति-संकेत (दृश्य-1)
1	2
आरम्भ-> संत तिरुवल्लुवर, तमिल के आदिकवि के स्मारक से	(तमिल-कुरल-वाचन: कुछ गूँजती, अजान-आवाज़ शैली में) "तल्लॉ विल्लैयुल्लुम् तक्कारुम् ताल्लविलाच्चेल्वरुम् शेरवदु नाडु "
धान के ढेर	अतुल उपज, सुयोग्य जन, उन्नत है धनवान। मिलकर सब रहते जहाँ, है वह राष्ट्र महान॥
भारत का मानचित्र बीच में बुद्ध,कबीर, नानक के चित्र	भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाए रामानन्द। प्रकट करी कबीर ने, सात दीप नव खंड॥
गाँधीजी का चित्र; उनके उद्धरण के साथ	"प्रान्तीय भाषा या भाषाओं के बदले में नहीं; बल्कि, उनके अलावा एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त का सम्बन्ध जोड़ने के लिए एक सर्वमान्य भाषा की आवश्यकता है। ऐसी भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानी हो सकती है।"
रामेश्वरम-रेल्वे-सेतु से गुजरती ट्रेन ....".....	"सदियों से हमारे महापुरुष हमें जोड़ने का पुनीत कार्य करते आए हैं ... इन्होंने हमारे लिए एक मज़बूत सेतु का निर्माण किया है ..., टाइटल्स (के साथ-साथ पंक्तियाँ...) कई संस्कृतियों को मिलाने का करे जो काम। दो किनारों को जो जोड़े, है 'सेतु' उसका नाम॥
भारत का मानचित्र उसके बीच में / से / गुजरते चित्र + चेन्नई के मन्दिर	"प्राचीन समय में, जिस प्रकार शंकराचार्य ने चारों धामों के द्वारा हिन्दुस्तान को जोड़ा, उसी प्रकार महात्मा गाँधी ने हिन्दी के द्वारा पूर्व-पश्चिम; उत्तर-दक्षिण को जोड़ा। मद्रास, दक्षिण भारत की धड़कन है; इस नगर ने राष्ट्र को जोड़ने की दिशा में काफ़ी अहम् भूमिका निभायी है; इस महानगर की कई संस्थाएँ इसकी मिसाल हैं ...।
कट ..., डिज़ॅल्व ... ...> दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा... नेटेटर ...	(दृश्य-2) (मोटुरि सत्यनारायणजी (मो.स.) से साक्षात्कार) प्रश्न :- उत्तर - मो.स. (साथ में उत्तर से सम्बन्धित A+V क्लिप्स)

(^^पूरा देख सकते हैं, साथ ही इस *-* पुस्तक में, पटकथा के अन्य नमूने भी अभ्यास हेतु देख सकते हैं ...) आज रोज़गार-अर्जन के क्षेत्र में इनका महत्त्व है।

अब हम कविता रचना की दिशा में आगे बढ़ते हैं ....

3.4.06. कविता रचना एवं प्रस्तुतिकौशल

साहित्य में, भावाभिव्यक्ति के सन्दर्भों में काव्य आदि विधा के रूप में आता है। वाल्मीकि को आदिकवि के रूप में माना जाता है। ज्ञातव्य है, वाल्मीकिजी जब स्नान कर रहे थे तब उन्होंने एक बहेलिये (शिकारी, निषाद; भारत की एक जंगली आदिम जाति) को, अठखेलियाँ करते हुए क्रौंच पक्षी के जोड़े पर बाण चलाकर मारते हुए देखा। वाल्मीकिजी, पक्षी के मर जाने को लेकर (मादा क्रौंच के उस वियोग / वेदना से) बहुत व्यथित हुए, और बहेलिये की भर्त्सना के रूप में सहसा, यह करुणा उनके मुख से / एक / काव्य भाव ...

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम्॥

(– रामायण, बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग, श्लोक 15)

... के रूप में प्रस्फुटित हुई और, वाल्मीकिजी आदिकवि के रूप स्थापित हुए ... वैसे तो साहित्य-सिद्धान्तों के हिसाब से कविता रचना के कई बिन्दु हैं, परन्तु यहाँ, संक्षेप में उन बिन्दुओं की बात करेंगे जो आधार-भूत हैं।

3.4.06.1. कविता रचना के बिन्दु

आचार्य ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री के अनुसार; " शब्द और अर्थ काव्य-सौन्दर्य के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं" (सम्मेलन-पत्रिका, कला अंक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ. 206, प्र. 1972) बाद में, कविता की रचना को लेकर, भाव-पक्ष (अनुभूति) और कला-पक्ष (अभिव्यक्ति) को लेकर अपने अपने दावे प्रस्तुत किये गए। परन्तु विद्वानों ने माना कि दोनों एक दूसरे के सहायक और पूरक हैं ..., परन्तु फिर भी, प्रधानता भाव पक्ष को दी जाती है (सिद्धान्त और अध्ययन, लेखक गुलाबराय, आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6, सं. 2010, पृ. 55, 120) भले ही, आधुनिक युग में, काव्य और अन्य कलाओं की अभिव्यक्ति के कई उपकरण हमारे सामने हैं, 'वादों' (Isms) को लेकर, प्रगति / प्रयोग / अकविता / मशीनी-कंप्यूटरी-आदि कविता के साथ-साथ, भाषावैज्ञानिक / शैलीविज्ञान / जैसे अनेक मत-मतान्तर आते रहे हैं; परन्तु फिर, भी काव्य-रचना के दो आधार स्तम्भ / भाव + कला / आज भी बराबर टिके हुए हैं... इन्हीं के हिसाब से हम अपने युग की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक अवस्थाओं के आधार पर, विषयवस्तु को लेकर, उसके मिज़ाज के अनुरूप काव्य-संरचना (भाव, भाषा, बुनावट आदि) के उपकरण चुनते हैं ...

कुछ दिन तुम्हें याद करेंगे मोमबत्ती जलाकर

कभी करुणा, कभी निर्भया,
कभी सोनाली कभी दामिनी बन,
हर बार आती हो,
एक नया रूप धारण कर,
दिखाने आईना,
हमारी विकृत सोच का,
इंसान से हैवान तक का,
सफ़र तय करने में,
भूल जाते इंसानियत का हर अंश,
अब प्रेम कहाँ आराधना,
अभिशाप की शक्ल है,
चुकानी होगी कीमत तुम्हें ,
अपने इंकार की,
हम कैसे सहेंगे तुम इंकार कर दो,
हमारे प्रेम प्रस्ताव को,
फिर चाहे वह प्रेम प्रेम न होकर,
वासना में रची बसी,
तुम्हारी देह की भूख ही क्यों न हो,
तुम्हारी हिम्मत कैसे जो स्त्री होकर,
भोग्या बनने से इंकार कर सको,
निकाल न दीं जाएँगी तुम्हारी अंतड़ियाँ,
लोहे की रॉड घुसेड़कर तुम्हारे शरीर में,
या तेज़ाब डालकर झुलसा दी जाएगी,
तुम्हारी देह और आत्मा दोनों,
या चाकुओं से गोद तुम्हें लहूलुहान कर,
पहुँचा दिया जायेगा इस दुनिया से दूर ही,
कुछ दिन तुम्हें याद करेंगे मोमबत्ती जलाकर,
फिर से तैयार होगी कोई करुणा या निर्भया ।

(– वर्षा श्रीवास्तव फेसबुक/ नेट से ली गई रचना)

अन्य उदाहरण देखिए –

जम्मू के विस्थापित-शिविर में

यादों के फटे चोगे भी
झड़ जाते हैं गल कर
विस्थापितों के जिस्म से
ज़ख़्मों के मुँह खुले रह जाते हैं ...

(श्याम कश्यप, बहुवचन-38, पृ.-74)

अन्ध-भक्ति की वीर-रसी, श्रद्धावान् अन्ध-आध्यात्मिक-भक्तिकालीन, शृंगारिक रीतिकालीन या रूमानियती-छायावादी / चालाकी भरे नारों / वादों (Isms) की राजनीति से लदी कविता-दौर के सामने इस तरह के नंगे सत्य को उजागर करने वाली कविताएँ, (सोशल-मीडिया / फेसबुक आदि पर) आज फिर कबीर के विद्रोही / अक्खड़ तेवरों को नये कलेवर के साथ स्थापित करती नज़र आ रही हैं। बहुत ही संक्षेप में कविता रचना को लेकर इसे ध्यान में लाया गया है।

3.4.07. पाठ-सार

प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि आज, अभिव्यक्ति / सम्प्रेषण के माध्यमों में रेडियो / सिनेमा / टेलीविज़न / इंटरनेट जैसे माध्यम अपनी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज़ करवा चुके हैं। आपने यह भी जाना कि इस प्रकार के लेखन तथा प्रस्तुति के लिए कौनसे लाक्षणिक मापदण्ड काम में लाए जाते हैं ? आधुनिक बहु / त्वरित-जनसंचार माध्यमों को ध्यान में रखकर उनकी प्रस्तुति के लिए किन-किन तकनीकी बातों का ध्यान रखना होता है। विशेषकर, पटकथा-लेखन के सन्दर्भ में आपने जाना कि, भाषा का तकनीकी रूप से किस तरह प्रयोग करना चाहिए तथा किस प्रकार उसे कितना विस्तार देना चाहिए। आज कविता, लेखन और प्रस्तुति के स्तर पर, किस प्रकार अपना रूप बदल रही है, इसे ध्यान में रखकर इस कौशल का भी लाभ उठाया जा सकता है। रोज़गार के नये-नये अवसर हमारे सामने हैं; कुल मिलाकर, आप इस व्यावहारिक-तकनीकी ज्ञान को हासिल कर, मीडिया के क्षेत्र में अपना स्थान बना सकते हैं।

3.2.08. बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सम्प्रेषण के माध्यम कौनसे हैं ?
2. माध्यमगत-लेखन से क्या तात्पर्य है ?
3. रेडियो-लेखन हेतु कोई दो व्यावहारिक पक्ष लिखिए।
4. संचार-माध्यम क्षेत्र में 'वार्ता' से आप क्या समझते हैं ?
5. कविता रचना में कौनसे दो पक्ष प्रधान हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. रेडियो-लेखन के लाक्षणिक मापदण्डों को समझाइए।
2. दृश्य-श्रव्य माध्यम हेतु, किसी प्रस्तुति को लेकर संक्षिप्त पटकथा लिखिए।
3. दृश्य-श्रव्य माध्यम के लिए पटकथा कौशलों पर प्रकाश डालिए।
4. माध्यमगत सन्देश-सम्प्रेषण के मुद्दों को सोदाहरण समझाइए।
5. 'आज की कविता' पर 300 शब्दों की टिप्पणी लिखिए।

3.4.09. व्यावहारिक (प्रायोगिक) कार्य

1. किसी भी प्रकार के दृश्य-श्रव्य माध्यम को ध्यान में रखकर लगभग 5 मिनट की 'वार्ता' तैयार कीजिए।

3.4.10. उपयोगी/सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. अनुवाद सिद्धान्त और समस्याएँ, लेखक – डॉ॰ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव एवं डॉ॰ कृष्णकुमार गोस्वामी, आलेख प्रकाशन, वी-8, नवीन शाहदारा, दिल्ली-32, सं. 1995
2. पटकथा लेखन एक परिचय, लेखक – मनोहर श्याम जोशी, राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002, आवृत्ति 2011
3. प्रयोजनमूलक हिन्दी, लेखक – डॉ॰ विजय कुलश्रेष्ठ एवं डॉ॰ रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ, पंचशील प्रकाशन, फिल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर-302003
4. बहुवचन, सं. – अशोक मिश्र, म.गा.अं.हिं.वि., वर्धा-442005
5. शैली और शैलीविज्ञान, सं. – सुरेश कुमार एवं रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, केंद्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-5 , सं. 2000
6. संचार माध्यम लेखन, लेखक – गौरीशंकर रैणा, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 2006
7. सिनेमाई भाषा और हिन्दी संवादों का विश्लेषण, लेखक – किशोर वासवानी, हिन्दी बुक सेंटर, 4/5, आसफ अली रोड, नयी दिल्ली-110002, 1998
8. सिद्धान्त और अध्ययन, लेखक – गुलाबराय, एम.ए., आत्माराम एंड संस, 1376, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006, सं. 2010

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. et.journalist> 6th May 2015 पोस्ट किया गया लेबल: भाषा रेडियो
2. <https://hi.wikipedia.org/wiki/वार्ता:हिन्दी>
3. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18

❖❖❖

खण्ड – 4 : हिन्दी सृजनात्मक लेखन में नवाचार

इकाई – 1 : समकालीन पॉपुलर साहित्य : परिचय एवं प्रकार

इकाई की रूपरेखा

3.3.00. उद्देश्य कथन
3.3.01. प्रस्तावना
3.3.02. पॉपुलर का अर्थ
3.3.03. पॉपुलर साहित्य का स्वरूप : एक परिचय
3.3.04. लोकसाहित्य और लोकप्रिय साहित्य में अन्तर
3.3.05. हिन्दी में लोकप्रिय साहित्य की शुरुआत
3.3.06. समकालीन पॉपुलर साहित्य
3.3.07. पॉपुलर साहित्य के प्रकार
    3.3.07.1. वेबसाइट पर उपलब्ध पॉपुलर साहित्य
    3.3.07.2. सोशल मीडिया पर उपलब्ध पॉपुलर साहित्य
    3.3.07.3. ब्लॉग्स पर उपलब्ध पॉपुलर साहित्य
3.3.08. पाठ सार
3.3.09. बोध प्रश्न
3.3.10. व्यवहार
3.3.11. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

4.1.00. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई समकालीन पॉपुलर साहित्य पर आधारित है। इस पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. पॉपुलर का अर्थ समझ सकेंगे।
ii. पॉपुलर साहित्य के स्वरूप के बारे में विस्तार से जान सकेंगे।
iii. लोकसाहित्य और लोकप्रिय साहित्य में अन्तर को समझ सकेंगे।
iv. हिन्दी में लोकप्रिय साहित्य की शुरुआत को जान पाएँगे।
v. पॉपुलर साहित्य के प्रकारों को समझ सकेंगे।

4.1.01. प्रस्तावना

पॉपुलर साहित्य का अर्थ उस पॉपुलैरिटी से नहीं है, जिस अर्थ में कोई कलाकार या खिलाड़ी पॉपुलर होता है। पॉपुलर कल्चर से तात्पर्य ऐसी संस्कृति से होता है जो उच्च सम्प्रभु संस्कृति के विपरीत होती है। इस

अर्थ में शास्त्रीय संगीत, चित्रकला, शास्त्रीय नृत्य आदि उच्च-कला के रूप हैं। इसके विपरीत फिल्म-संगीत, रॉक संगीत, सिनेमा आदि लोकप्रिय कला या संस्कृति के मानक कहे जा सकते हैं। जिसे उच्च कला कहते हैं, उसमें माना जाता है कि उसका एक शास्त्र होता है, व्याकरण होता है और उसे समझे बिना उसका आनन्द नहीं लिया जा सकता। अगर आपको भारतीय रागों की समझ नहीं है तो आप शास्त्रीय संगीत का आनन्द नहीं उठा सकते। कौन-सा राग किस समय गाया जाता है ? शास्त्रीय संगीत में घरानों का क्या महत्त्व है ? आलाप क्या होता है और अन्तरा क्या होता है ? अगर आपको इन सबकी जानकारी नहीं है तो आप शास्त्रीय संगीत के रसिक नहीं हो सकते। शास्त्रीय संगीत रसिकों के लिए होता है। उसमें एक तरह का सामन्ती भाव होता है। सब कुछ बड़ा करीने से होता है। शास्त्रीय संगीत बड़ी तहजीब की चीज़ समझी जाती है। उसका आनन्द उठाने के लिए यह आवश्यक समझा जाता है कि आपको उसकी संस्कृति का भी पूरा ज्ञान हो। इसके ठीक विपरीत पॉपुलर संगीत या कला की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि उसे अलग से नहीं बताना पड़ता है कि यह कला है। उसे आमतौर पर आदमी अपनी सम्वेदना से स्तर पर जीने लगता है। फ़िल्मी गीतों के प्रभाव को इसी रूप में लिया जाता है।

लेकिन इस इकाई में पॉपुलर साहित्य का आशय इंटरनेट पर उपलब्ध साहित्य से है। इंटरनेटीय साहित्य भले ही कितना भी पॉपुलर क्यों न हो, वह गैर-गम्भीर होता है। इसी मिथक को तोड़ने का प्रयास करता है – हिन्दी सृजनात्मक लेखन में नवाचार। सृजनात्मक लेखन में नवाचार लगातार इंटरनेट पर गम्भीरता के साथ उपस्थिति दर्ज करता जा रहा है।

4.1.02. पॉपुलर का अर्थ

अंग्रेजी शब्दकोष के अनुसार 'पॉपुलर' शब्द का अर्थ है – प्रिय, जनप्रिय, लोकप्रचलित, लोकप्रिय, सार्वजनिक, सस्ता, सुलभ तथा सर्वप्रिय आदि। आइए, पहले हिन्दी में प्रचलित लोकप्रिय शब्द के बारे में विचार करते हैं। दरअसल लोकप्रिय शब्द का सीधा-सा अर्थ है – जो लोक को प्रिय हो। लेकिन लोक कौन ? क्या यह लोक अंग्रेजी का फ़ोक है, जिसका मतलब सामान्य जन से होता है और कभी-कभी इसे आदिम और देहाती भी समझा जाता है। साधारण अर्थ में लोक में सभी शामिल हो जाते हैं लेकिन विशेष अर्थ में हम जानते हैं कि यह 'विशेष' से अलग होता है। कला के क्षेत्र में हम लोक और शास्त्रीय का विभाजन देखते हैं, जिसमें शास्त्रीय का मतलब ही परिष्कृत और व्याकरणिक होता है जबकि लोक का मतलब अनगढ़ होता है। जैसा कि अंग्रेजी में लोकप्रिय शब्द का पर्यायवाची पॉपुलर है। पॉपुलर अच्छी तरह से पसंद किये जाने की सामाजिक स्थिति है जिसका प्रसार व्यापक होता है। यानी जनसामान्य द्वारा अच्छी तरह से जानी गई और अच्छी तरह से पसंद की चीज पॉपुलर होती है। इसी पॉपुलर से पॉपुलर संस्कृति की अवधारणा का विकास हुआ है। पॉपुलर कल्चर दो अर्थों को धारण करता है। पहला, जो इसे दोयम दर्जे का मानता है और दूसरे अर्थ में, इसे व्यापक पसंद किया जाने वाला समझा जाता है। लेकिन अधिकांशतः पॉपुलर कल्चर का मतलब ही कमतर समझ लिया जाता है और इस पॉपुलर कल्चर में आने वाली हर निर्मिति जैसे सिनेमा, संगीत, साहित्य, क्रिकेट इत्यादि को दोयम दर्जे का मान लिया जाता है। संस्कृति अध्ययन नाम के अनुशासन ने पॉपुलर संस्कृति के अध्ययन का रास्ता खोल दिया है

अन्यथा विद्वज्जनों के लिये यह वर्जित क्षेत्र था। इसके अध्ययन की तरफ़ ध्यान नहीं दिया जाता था। बावजूद इसके कि यह हमारे दैनंदिन जीवन के निर्मित हो रहे इतिहास के अध्ययन में सहायक है।

4.1.03. पॉपुलर साहित्य का स्वरूप : एक परिचय

अब आप समझ चुके हैं कि जो साहित्य या कला व्यापक जनसमुदाय के बीच सहज रूप में ग्राह्य और स्वीकार्य हो वह पॉपुलर (लोकप्रिय) साहित्य है। सरलता, सहजता और सुबोधता आदि ऐसे साहित्य के गुण हैं। व्यापक जनसमुदाय के बीच कोई साहित्य केवल सरलता और सुबोधता के कारण लोकप्रिय नहीं होता है। लोकप्रियता कला या साहित्य के रूप की ही विशेषता नहीं है। वही साहित्य व्यापक जनता में लोकप्रिय होता है जिसमें जन-जीवन की वास्तविकताएँ और आकांक्षाएँ सहज-सुबोध रूप में व्यक्त होती हैं, इसलिए लोकप्रियता का सम्बन्ध साहित्य के रूप के साथ-साथ उसकी अन्तर्वस्तु, उस अन्तर्वस्तु में मौजूद यथार्थ-चेतना में निहित विश्वदृष्टि से भी होती है। केवल रूप सम्बन्धी लोकप्रियता सतही होती है और रचना को भी सतही बनाती है।

4.1.04. लोकसाहित्य और लोकप्रिय साहित्य में अन्तर

आइए, देखते हैं कि लोकसाहित्य और लोकप्रिय साहित्य में क्या अन्तर होता है –

लोकसाहित्य और लोकप्रिय साहित्य में पहला अन्तर यह है कि लोकसाहित्य गणसमाज के द्वारा आज तक किसी न किसी रूप में निर्मित और विकसित होता आ रहा है जबकि लोकप्रिय साहित्य पूँजीवादी युग और समाज की उपज है।

लोकसाहित्य और लोकप्रिय साहित्य में दूसरा अन्तर यह है कि लोकसाहित्य की रचना जनसमुदाय करता है और वही उसका श्रोता भी है अर्थात् लोकसाहित्य जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए रचित साहित्य है लेकिन आज का लोकप्रिय साहित्य प्रकाशन के युग का साहित्य है जिसका बड़े पैमाने पर व्यावसायिक उत्पादन होता है। वह पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की दूसरी वस्तुओं की तरह उत्पादित होकर बाजार के माध्यम से खरीद-बिक्री की वस्तु की तरह जनता तक पहुँचता है। ऐसा लोकप्रिय साहित्य केवल लोकसाहित्य से ही भिन्न नहीं होता, वह जनसाहित्य से भी भिन्न होता है क्योंकि जनसाहित्य जनता द्वारा रचित भले ही न हो, लेकिन उसे जनता की भावनाओं से एकता अनुभव करने वाले लेखक रचते हैं। जबकि पूँजीवादी युग का साहित्य आर्थिक उद्देश्य से लिखा गया और व्यावसायिक लाभ के लिए प्रकाशित साहित्य है जिसका मूल्य बाजार में तय है। प्रकारान्तर से यह बाजार के नियमों से उत्पादित और संचालित साहित्य है। यही कारण है कि इस लोकप्रिय साहित्य के उत्पादन, विनिमय, वितरण और उपभोग की पूरी व्यवस्था को अडोर्नो ने संस्कृति का उद्योग कहा है और वोरदिये ने उसे प्रतीकात्मक वस्तुओं का बाजार कहा है।

4.1.05. हिन्दी में लोकप्रिय साहित्य की शुरुआत

हिन्दी के उन रचनाकारों का उदाहरण हमारे सामने है जिनकी 'लोकप्रियता' ने आलोचना के आभिजात्य से उनको लगभग बाहर करवा दिया। लेकिन उपन्यास का मसला अलग है। उपन्यास दरअसल लोकप्रिय विधा के रूप में ही सामने आया। उपन्यास का इतिहास ही बताता है कि छापेखाने के आविष्कार के बाद इस विधा का आगमन हुआ और निरन्तर इसकी पठनीयता बढ़ी। भारत में भी उपन्यास का आगमन जिन परिस्थितियों में हुआ वह यूरोप से भिन्न थी। न यहाँ पूँजीवाद था, ना ही मध्यमवर्ग का उदय हुआ था और न ही यहाँ के दर्शन में यथार्थवाद और व्यक्तिवाद था। लेकिन यहाँ आख्यायिका की परम्परा थी, दास्तान थी, बाणभट्ट की कादम्बरी और कथासरित्सागर भी था। छापेखाने के अविष्कार के बाद छपने वाले साहित्य के रूप में सिंहासन बत्तीसी, बेताल पचीसी, किस्सा तोता-मैना इत्यादि भी था जो अपने पाठक तैयार कर रहा था।

हिन्दी में उपन्यास की परम्परा का विकास किस्सों और दास्तानों की परम्परा से हुआ है। यद्यपि संरचना और शिल्प पश्चिम से लिये गए थे लेकिन अन्य कला माध्यमों की तरह ये भारतीय परम्परा से जुड़ गये। किस्सा और दास्तान बहुत ही लोकप्रिय माध्यम था। दास्तानों की बैठकें रात भर जमती थीं। हिन्दी उपन्यास का विकास इन किस्सों और दास्तानों की इसी परम्परा की अगली कड़ी थी। देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास इसका उदाहरण हैं। मुंशी प्रेमचंद ने भी अपने लेखन में दास्तानों की परम्परा का दाय स्वीकार किया है। देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास अत्यन्त लोकप्रिय हुए. उनका पहला ही उपन्यास चन्द्रकान्ता इतना लोकप्रिय हुआ कि उसकी कड़ी दर कड़ी निकलती गई और जैसा कि सर्वविदित है कि चन्द्रकान्ता पढ़ने के लिये लोगो ने हिन्दी सीखी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है – "जितने पाठक उन्होंने उत्पन्न किये उतने किसी ग्रन्थकार ने नहीं. चन्द्रकान्ता पढ़ने के लिए ना जाने कितने उर्दूजीवी लोगों ने हिन्दी सीखी।" आगे इस बात का भी जिक्र है कि "चन्द्रकान्ता और इस जैसे अन्य उपन्यासों के प्रभाव में न जाने कितने लेखक हो गए। चन्द्रकान्ता ने हिन्दी में तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासों की एक परम्परा की शुरुआत की जो आज भी कायम है।" इन उपन्यासों का सम्बन्ध लोकप्रियता से ही जुड़ा और इन्हें साहित्य की उस कोटि में नहीं रखा गया। शुक्लजी लिखते हैं – "इन उपन्यासों का लक्ष्य केवल घटना वैचित्र्य रहा; रससंचार, भावविभूति या चरित्र चित्रण नहीं। ये वास्तव में घटनाप्रधान कथानक या हिस्से हैं जिनमें जीवन के विविध पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं, इससे ये साहित्य की कोटि में नहीं आते।"

इस तरह आरम्भ में ही उपन्यास में लोकप्रिय और साहित्यिक दो श्रेणी विभाजन हो गया। उसी प्रकार जैसा कि आधुनिक युग के आरम्भ में ही भारतेन्दु और उनके समकालीनों ने 'आर्य शिष्टजनोपयोगी' के नाम पर पारसी नाटकों को हेय दृष्टि से देखा और साहित्यिक रंगमंच की स्थापना की कोशिश की। वस्तुतः ऐसा सभी कला रूपों के साथ हुआ, जिसमें आधुनिकता, राष्ट्रीयता और समाजसुधार के लिये उपयोगी रचनाओं को महत्त्व दिया गया और इससे इतर को हतोत्साहित किया गया। लेकिन जिन कला रूपों में यह उद्देश्य पूरा होता था उनको भी दरकिनार कर दिया गया क्योंकि वे आधुनिकता के मापदण्डों पर खरी नहीं थी। आभिजात्य आलोचना ने कला को मर्यादित और अनुशासित रखने के लिये 'साहित्यिक' कहे जाने की विशेष कोटी निर्मित कर दी थी। मनोहरश्याम जोशी लिखते हैं कि "आधुनिकता के दौर से पहले संस्कृति को लोकप्रिय और श्रेष्ठ दो बिलकुल

अलग-थलग हिस्सों में कभी नहीं बाँटा गया था। यह कभी नहीं कहा गया था कि बौद्धिक लोगों द्वारा रचा हुआ साहित्य तमाम पुराने साहित्य से और जनता की समझ में आने वाले साहित्य से अलग और अनूठा होता है।" वस्तुतः आभिजात्य और लोकप्रिय का यह विभाजन आधुनिकता की ही देन है। आधुनिकता से विकसित चेतना ने जो पिछड़ेपन का बोध कराया उसमें परम्परा की बहुत-सी चीजें शामिल थी जिससे लगाव आधुनिकता के मार्ग में बाधक होता। अतः आधुनिकता के प्रसार के साथ ही हर क्षेत्र में ऐसी कृतियों की रचना हुई जो आधुनिक मूल्यों की वाहक बन सकें। साहित्य भी इससे अछूता कैसे रह सकता था।

जैसा कि उपर कहा गया कि कथा साहित्य का विकास ही लोकप्रिय किस्सों और कहानियों के क्रम में हुआ था। लेकिन आरम्भिक उपन्यासकारों के सामने अंग्रेजी उपन्यास थे जिनका अनुसरण कर वे उपन्यास की संरचना को अंग्रेजी उपन्यासों के नजदीक रखने लगे। जिस यथार्थवाद और व्यक्तिवाद का वे अनुसरण कर रहे थे वैसा यथार्थवाद यहाँ की जनता में न था। इसलिये उसी दौर में फ़ैंटेसी रचने वाली कहानियाँ और ऐतिहासिक उपन्यास आये। वह जनता में बहुत लोकप्रिय हुए। साक्षरता के विकास के साथ साथ पाठक संख्या बढ़ती गई और उपन्यास जनसामान्य में जगह बनाती गई। चन्द्रकान्ता की लोकप्रियता का जिक्र हो ही चुका है जिसने हिन्दी उपन्यास और हिन्दी भाषा को स्थापित किया। चन्द्रकान्ता के बाद जासूसी उपन्यासों और तिलिस्मी उपन्यासों के लेखन का एक पूरा इतिहास मौजूद है।

प्रेमचंद के आगमन ने कथा साहित्य को एक नया मोड़ दिया। प्रेमचंद भी अत्यन्त लोकप्रिय उपन्यासकार थे लेकिन उन्होंने अपने लेखन को मनोरंजन से ऊपर उठाकर कुछ मूल्यपरक भीबनाया। उन्होने 'हुस्न का मेयार' बदलने की सिर्फ़ बात ही नहीं की उसे बदला भी। प्रेमचंद के समान ही अन्य उपन्यासकारों को लोकप्रियता के तत्त्वों को शामिल करना पड़ा। जैसा कि चारु गुप्ता भी लिखती हैं – "हिन्दू साहित्यिकों ने लेखन को अनुशासित करने का प्रयास तो किया मगर पढ़ने की आदतों ने उन्हें भी अपनी रचनाओं में कुछ लोकप्रिय तत्त्व समाहित करने पर विवश कर दिया।" पढ़ने की ये आदत वही थी जो चन्द्रकान्ता और जासूसी उपन्यासों ने तैयार की थी। इसीलिये मैनेजर पाण्डेय सही सवाल पूछते हैं कि "अगर देवकीनन्दन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों से एक बड़ा पाठक समुदाय पैदा नहीं हुआ होता, तो क्या प्रेमचंद एक के बाद एक गम्भीर उपन्यास लिख पाते ? सम्भव है अगर पहले देवकीनन्दन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी न हुए होते तो प्रेमचंद को वही काम करना पड़ता जो उन दोनों ने किया था।"

हिन्दी में लोकप्रिय साहित्य कहने से अक्सर हमारा ध्यान लुगदी उपन्यासों और फ़ुटपाथी साहित्य पर चला जाता है और फिर अध्ययन के केन्द्रों से उसे बाहर कर दिया जाता है। सारा का सारा ध्यान गम्भीर साहित्य पर ही रहता है। यह भुलाकर कि गम्भीर साहित्य भी लोकप्रिय हो सकता है या लोकप्रियता मूल्यों के ह्रास का बोधक नहीं है या तथाकथित लोकप्रिय साहित्य के भी कुछ मूल्य हो सकते हैं, जिनका अध्ययन कर समय और समाज को समझा जा सकता है। यह कुछ नहीं करते तो कम से कम अध्ययनशीलता की प्रवृति तो बढ़ाते ही हैं। अधिकांश लेखक भी यह स्वीकार करते हैं कि उनके पढ़ने की आदत के पीछे ऐसे साहित्य की अध्ययन की बड़ी भूमिका रही है। लोकप्रिय लेखन और साहित्यिक लेखन का भी विभाजन यह है कि 'लोकप्रिय' लेखन का उद्देश्य

होता है कि पाठक की सम्वेदना को सहला कर उसका मनोरंजन करना जबकि साहित्यिक लेखन का उद्देश्य आत्माभिव्यक्ति होती है जो सम्वेदना के साथ-साथ सोच पर भी असर करता है और किसी प्रकार का पलायन नहीं रचता है। साहित्यिकता की कोटि भी समय अनुसार बदलती रहती है। एक समय में साहित्यिक समझी गई कृतियाँ भविष्य में असाहित्यिक हो सकती हैं और इसी प्रकार लोकप्रिय समझी गई कृतियाँ साहित्यिक दर्जा पा सकती हैं। ऊपर हमने पाठकों की बात की। हर किस्म के लेखन के अलग पाठक होते हैं। कोई भी रचना शून्य में नहीं होती पाठक उसे चाहिये ही। लोकप्रियता का पैमाना पाठक ही है। अगर गम्भीर लेखक को पाठक ना मिले तो ? या जिन्हें हम गम्भीर लेखक मानते हैं क्या उनकी पाठक संख्या या लोकप्रियता कम रही है। प्रेमचंद और शरच्चन्द्र के पाठकों की संख्या किसी 'लोकप्रिय' लेखक से कम रही है ! यानी लोकप्रियता और साहित्यिकता कोई दो विपरीत ध्रुव नहीं हैं। लोकप्रिय कृति भी साहित्यिक हो सकती है उसी प्रकार साहित्यिक कृति भी लोकप्रिय।

4.1.06. समकालीन पॉपुलर साहित्य

समकालीन हिन्दी पॉपुलर साहित्य के क्षेत्र में विस्तार हुआ है। पिछले कुछेक सालों में सोशल मीडिया, विशेषकर फेसबुक को लेकर दो तरह के विचार सक्रिय हैं – एक तरफ ऐसे लोग हैं जिनका यह मानना है कि हिन्दी की रचनात्मकता का क्षरण हो रहा है। जबकि दूसरी तरफ़ ऐसे हैं कि जो यह मानते हैं कि सोशल मीडिया के कारण हिन्दी का व्यापक विस्तार हुआ है। इसका दायरा पहले से विस्तृत हो रहा है, वह हिन्दी विभागों से बाहर फैल रही है। इंजीनियरिंग, मैनेजमेंट आदि विविध तबकों से जुड़े लोग न सिर्फ हिन्दी में साहित्य लिख रहे हैं बल्कि उसका अपना पाठक वर्ग भी बनता जा रहा है।

एक बहुत बड़ा बदलाव आया है जो सोशल मीडिया के जरिये हिन्दी लेखन के परिदृश्य पर घटित होता दिखाई दे रहा है। वह बदलाव हिन्दी के लोकप्रिय लेखकों-पाठकों की दुनिया में हो रहा है। लम्बे समय तक हिन्दी में लोकप्रिय लेखन के नाम पर, लोकप्रिय साहित्य के नाम पर सुरेन्द्र मोहन पाठक, वेद प्रकाश शर्मा के जासूसी उपन्यासों को ही मानक माना जाता था। आज सोशल मीडिया, ऑनलाइन माध्यमों से होने वाली किताबों की बिक्री के कारण यह स्थिति बन गयी है कि हिन्दी के जासूसी उपन्यास लेखक हिन्दी के लोकप्रिय साहित्य के प्रतिनिधि लेखक नहीं रह गए हैं। सोशल मीडिया हिन्दी में किताबों को लोकप्रिय बनाने वाले माध्यम के रूप में ही नहीं बल्कि हिन्दी साहित्य के सृजन में भी नये ढंग से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। उदाहरण के लिए, राजकमल प्रकाशन के उपक्रम 'सार्थक बुक्स' ने लप्रेक सीरीज की शुरुआत की, जिसके बारे में आपको आगे पढ़ने को मिलेगा। जिसकी पहली किताब पत्रकार रवीश कुमार की थी – 'इश्क में शहर होना'। अपनी लोकप्रियता के मामले में इस किताब ने एक छाप तो छोड़ी ही है। बाद में इस शृंखला में दो और किताबें भी आई हैं। लप्रेक विधा की इन किताबों की खासियत यह है कि ये मूल रूप से फेसबुक स्टेटस के रूप में लिखी गई हैं। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि फेसबुक ने हिन्दी के लेखकों को इस बात की तमीज दी है कि कम शब्दों में किस तरह से मानीखेज बात लिखी जा सकती है, ऐसी बात जो कि ज्यादातर लोगों को अपने दिल की

बात-सी लगे। इसने इस मिथक को तोड़ दिया है कि हिन्दी में पॉपुलर का मतलब महज रूमानी या फंतासी साहित्य नहीं होता है।

हिन्दी का यह नया बनता लेखक वर्ग है जो हिन्दी के पॉपुलर साहित्य को नई पहचान और दिशा दे रहा है। इस क्रम में हिन्द युग्म प्रकाशन भी हिन्दी में नये ढंग से पॉपुलर साहित्य की लोकप्रियता में योगदान दे रहा है। हिन्द युग्म प्रकाशन ने हाल के वर्षों में निखिल सचान की 'नमक स्वादानुसार', दिव्य प्रकाश दुबे की 'मसाला चाय', अनु सिंह चौधरी की 'नीला स्कार्फ', आशीष चौधरी की 'कुल्फी एंड कैपुचिनो', सत्या व्यास की 'बनारस टॉकीज' जैसी कुछ ऐसी किताबों को प्रकाशित किया है, जिन्होंने फेसबुक जैसे सोशल मीडिया साइट्स के प्रचार के सहारे और ऑनलाइन बिक्री के आधार पर हिन्दी के पॉपुलर साहित्य को एक नया आयाम दिया है। इन उदाहरणों से एक बात साफ़ है कि हिन्दी के पॉपुलर साहित्य की दुनिया सोशल मीडिया के प्रभाव में बदल रही है। सोशल मीडिया ने लेखकों को पाठकों से जोड़ने में ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है और उसकी वजह से लेखक प्रकाशक से भी जुड़ने लगे हैं।

पॉपुलर साहित्य के प्रसार में सोशल मीडिया की भूमिका अभी निर्णायक है। अगर सोशल मीडिया को हमारे समय से घटा कर देखें तो और कोई ऐसा प्रभावी जरिया नहीं है, जिससे टारगेट रीडर तक कोई भी पब्लिशर या लेखक अपनी किसी किताब को इतनी आसानी से पहुँचा सकता हो। दरअसल सोशल मीडिया लोकप्रिय साहित्य के प्रसार के लिए एक तरह का 360 डिग्री सोल्यूशन है। फेसबुक माध्यम की कई विशेषताएँ और सुविधाएँ हैं, जिनका लेखक प्रकाशक बड़ी होशियारी से इस्तेमाल कर रहे हैं। सबसे बड़ी सुविधा है कि यह माध्यम निःशुल्क सुविधा प्रदान करता है। दूसरे, इस माध्यम का उपयोग द्वारा ऑडियो, वीडियो सभी प्रकार की सुविधाओं से आकर्षित किया जा सकता है। पाठकों के लिए किताब के अंश दिए जा सकते हैं, उनके साथ किताबों के कवर साझा किये जा सकते हैं, किताबों के फेसबुक पेज बनाकर उससे भी लोगों को जोड़ा जा सकता है। जब लप्रेक शृंखला की किताबों का प्रकाशन शुरू किया गया तो उसका एक फेसबुक पेज भी बनाया और आज उस पेज से पाँच हजार से अधिक लोग जुड़े हुए हैं। यह एक जीवन्त माध्यम है, जिसमें हर प्रक्रिया में पाठकों की भूमिका रहती है। यानी एक प्रोडक्ट के रूप में किताब के तैयार होने में पाठकों भी शामिल हो जाता है और वह धीरे-धीरे खुद को उस किताब का हिस्सा समझने लगता है। पाठकों की पुस्तकों के साथ इस तरह की संलग्नता पहले सम्भव नहीं थी।

लेकिन यहीं पर एक सवाल यह भी उठता है जो बड़ा गम्भीर है कि क्या साहित्य को किसी कमोडिटी के रूप में बेचा जाना चाहिए ? क्या सोशल मीडिया के माध्यम से होने वाले अत्यधिक प्रचार-प्रसार के कारण साहित्य को लेकर अच्छे-बुरे का विवेक मिटता जा रहा है ? क्या पॉपुलरिटी ही साहित्य का नया मूल्य है ? हिन्दी के सम्बन्ध में ये सवाल गम्भीर हैं। क्योंकि एक ऐसी भाषा है जिससे निरन्तर बड़ी तादाद में पाठक रोज जुड़ रहे हैं। लेकिन जिस तरह से सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्य को प्रस्तुत किया जा रहा है, जिस तरह से उसको विज्ञापित किया जा रहा है उससे श्रेष्ठ और लोकप्रिय के मानक आपस में घुलते-मिलते जा रहे हैं। सोशल मीडिया

के कारण जो एक बड़ा प्रभाव किताबों की दुनिया पर, हिन्दी साहित्य के परिसर पर पड़ता दिखाई दे रहा है वह यह है बिकना ही सबसे बड़े पैमाने के रूप में स्थापित होता जा रहा है।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि सोशल मीडिया के कारण हिन्दी हिन्दी-विभागों से निकलकर फ़ैल रही है। लिटरेचर फेस्टिवल से लेकर अंग्रेजी मीडिया में लगातार हिन्दी की लोकप्रिय पुस्तकों को लेकर स्पेस बढ़ता जा रहा है। उसका परिसर तो बढ़ता जा रहा है लेकिन केन्द्र कहीं न कहीं सिमटता जा रहा है। जो माध्यम हिन्दी की लोकप्रिय पुस्तकों को लेकर बढ़-चढ़ कर जगह बना रहे हैं वे माध्यम हिन्दी एक गम्भीर साहित्य को लेकर किसी तरह के उपक्रम करने को लेकर उदासीन हैं। लेकिन इस चिन्ता के बावजूद यह तथ्य बेमानी नहीं हो जाता है कि सोशल मीडिया के फेसबुक जैसे माध्यम हिन्दी में एक नये परिसर का निर्माण कर रहे हैं और अब धीरे-धीरे उसकी अपनी व्यवस्था भी बनती जा रही है। आज हिन्दी के लेखक सबसे बड़ी तादाद में इस माध्यम द्वारा संवाद स्थापित कर रहे हैं, और इसके सकारात्मक उपयोग की दिशा में प्रेरित हो रहे हैं। इसमें कोई शक नहीं कि नये संचार माध्यमों पर हो रहा लेखन एक प्रकार का नयापन लेकर आ रहा है। कहीं-कहीं यह साहित्य की दुनिया में तोड़-फोड़ भी कर रहा है। चाहे वह फेसबुक पर किया जाने वाला लेखन हो या तरह-तरह के ब्लॉगों का लेखन। छोटी-छोटी पोस्ट हों या उनके जरिए पैदा हुआ और चला वाद-विवाद-संवाद।

कभी-कभी भड़ास निकालने वाला लेखन भी सोशल मीडिया पर खूब दिखाई देता है। यह भी एक प्रकार का पॉपुलर लेखन है, पर यह एक खास वर्ग के बीच ही संचरित हो पाता है, लगभग एकायामी चरित्र लिए हुए। इसी में से उभरते लेखन को पॉपुलर माना जा रहा है। जाहिर है, आज पॉपुलर साहित्य का स्वरूप बदल रहा है। यह अलग प्रश्न है कि यह 'टिकाऊ' कितना है और 'बिकाऊ' कितना। टिकाऊ और बिकाऊ का यह द्वन्द्व हिन्दी समाज में अरसे से रहा है। क्या इसे ही गम्भीर साहित्य और पॉपुलर साहित्य का अन्तर माना जा सकता है? एक नया लेखक वर्ग भी इधर के सालों में उभरा है, जो युवा मन को लुभाने वाला साहित्य रच रहा है। हैरानी की बात कि इस वर्ग का लेखक मैनेजमेंट, इंजीनियरिंग वगैरह की पढ़ाईलिखाई करके आया है। इनमें से कई अंगरेजी में लिखते हैं और फिर उसका अनुवाद विभिन्न भाषाओं, खासकर हिन्दी में होकर आता है। कुछ ऐसे भी हैं, जो सीधे हिन्दी में लिखते हैं। यह लेखक वर्ग भारतीय मिथकों, पुराकथाओं, इतिहास की घटनाओं आदि को आधार बनाता है।

कहा जा सकता है कि एक वर्ग की युवा मानसिकता में सामाजिक-सांस्कृतिक सम्बन्ध-सूत्रों का बदलाव भी तेजी से हुआ है। इस युवा वर्ग का समूचा ताना-बाना वह नहीं रह गया है, जो आज से बीस-पच्चीस वर्ष पहले हुआ करता था या जिसे वह अपने घर-देहात-गाँव से लेकर चला था। आज उसे लगता है कि सब कुछ चलता है। उसे सब कुछ तुरत-फुरत चाहिए। इसके लिए जो भी शार्टकट है, उसे करने में कोई हिचक या गुरेज नहीं। ऐसे में उसे गम्भीर साहित्य में आस्वाद कहाँ से आएगा। जो उसके जीवन में है ही नहीं, उसे वह साहित्य में क्यों कर देखना चाहेगा। ऐसे में उसे इस प्रकार का लोकप्रिय साहित्य अधिक रुचिकर लगे तो आश्चर्य क्या ! पर प्रश्न है कि क्या पॉपुलर साहित्य गम्भीर साहित्य के सामने कोई बड़ी चुनौती प्रस्तुत कर रहा है ? किसी प्रकार का दबाव बना रहा है ? क्या इससे साहित्य की गम्भीर विधाओं में किसी प्रकार की तोड़-फोड़ हो रही है ? क्या यह कह कर बात

को टाला जा सकता है कि आज का लोकप्रिय साहित्य 'बिकाऊ' तो अवश्य है, पर 'टिकाऊ' कितना है ? इसमें आज की सृजनशील सम्भावनाएँ, नवाचार, जीवन की नई लय की तलाश कितनी हुई है ? इन प्रश्नों के उत्तर अभी भविष्य के गर्भ में हैं, शायद अभी आने बाकी हैं।

4.1.07. पॉपुलर साहित्य के प्रकार

जिस प्रकार आम तौर पर साहित्य के दो प्रकार माने गए हैं – दृश्य और श्रव्य। फिर श्रव्य के दो भेद – वाचिक और लिखित हैं। लिखित के फिर दो भेद हैं – गद्य और पद्य। उसी प्रकार विधा के आधार पर आज के पॉपुलर साहित्य के दो प्रकार हैं – गद्य और पद्य। गद्य में लप्रेक (लघु प्रेम कथा), फलक (फेसबुक लघु कथा) जैसी कहानियाँ हैं और पद्य में यूनी कविताएँ हैं। इनके अतिरिक्त स्मृतियों के आधार पर संस्मरण, यात्राओं के आधार पर यात्रा वृत्तान्त इत्यादि। समकालीन पॉपुलर साहित्य का विभाजन इंटरनेट के विविध माध्यमों या शैलियों के आधार पर भी किया जा सकता है।

4.1.07.1. वेबसाइट पर उपलब्ध पॉपुलर साहित्य

वेबसाइटों पर उपलब्ध पॉपुलर साहित्य में पुराने साहित्य भी उपलब्ध है। जिनमें 'समय डॉट कॉम', 'रचनाकार डॉट ओआरजी' इत्यादि प्रमुख हैं।

4.1.07.2. सोशल मीडिया पर उपलब्ध पॉपुलर साहित्य

समकालीन पॉपुलर साहित्य उद्‌भव और विकास में सोशल मीडिया का सबसे भूमिका है। जिसमें फेसबुक अग्रणी है। आज का लप्रेक और फलक जैसी कथाएँ फेसबुक की देन हैं।

4.1.07.3. ब्लॉग्स पर उपलब्ध पॉपुलर साहित्य

ब्लॉग्स पर उपलब्ध साहित्य में आप यूनी कविताओं की गणना कर सकते हैं।

इन विविध माध्यमों में आगे चलकर और भी पॉपुलर साहित्य के रूपों के उभरने की सम्भावना है।

4.1.08. पाठ सार

जो साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच सहज रूप में ग्राह्य और स्वीकार्य हो, वह पॉपुलर साहित्य है। सरलता, सहजता और सुबोधता आदि ऐसे साहित्य के गुण हैं। व्यापक जनसमुदाय के बीच कोई साहित्य केवल सरलता और सुबोधता के कारण लोकप्रिय नहीं होता है। लोकप्रियता कला या साहित्य के रूप की ही विशेषता नहीं है। वही साहित्य व्यापक जनता में लोकप्रिय होता है, जिसमें जन-जीवन की वास्तविकताएँ और आकांक्षाएँ सहज-सुबोध रूप में व्यक्त होती हैं।

लोकसाहित्य और लोकप्रिय साहित्य में अन्तर जिन बातों को लेकर है, वे हैं – एक, लोकसाहित्य गणसमाज के द्वारा आज तक किसी न किसी रूप में निर्मित और विकसित होता आ रहा है जबकि लोकप्रिय साहित्य पूँजीवादी युग और समाज की उपज है। दूसरे, लोकसाहित्य की रचना जनसमुदाय करता है और वही उसका श्रोता भी है अर्थात् लोकसाहित्य जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए रचित साहित्य है लेकिन आज का लोकप्रिय साहित्य प्रकाशन के युग का साहित्य है जिसका बड़े पैमाने पर व्यावसायिक उत्पादन होता है। वह पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की दूसरी वस्तुओं की तरह उत्पादित होकर बाजार के माध्यम से खरीद-बिक्री की वस्तु की तरह जनता तक पहुँचता है। ऐसा लोकप्रिय साहित्य केवल लोक साहित्य से ही भिन्न नहीं होता, वह जन साहित्य से भी भिन्न होता है क्योंकि जन साहित्य जनता द्वारा रचित भले ही न हो, लेकिन उसे जनता की भावनाओं से एकता अनुभव करने वाले लेखक रचते हैं। जबकि पूँजीवादी युग का साहित्य आर्थिक उद्देश्य से लिखा गया और व्यावसायिक लाभ के लिए प्रकाशित साहित्य है जिसका मूल्य बाजार में तय है।

पॉपुलर साहित्य के लेखक मीडिया, मैनेजमेंट, इंजीनियरिंग वगैरह दुनिया से आए हैं। नये अनुभव और प्रस्तुति की नयी शैली से हिन्दी का पॉपुलर साहित्य समृद्ध हो रहा है।

हिन्दी में पॉपुलर साहित्य का जो स्पेस बढ़ रहा है, उससे हिन्दी का ही विस्तार हो रहा है। उसका अपना बाज़ार बन रहा है। उसमें ग्लैमर का वह तत्त्व आता जा रहा है जिसके बिना हिन्दी दशकों तक दीनहीन बनी रही। आज सोशल मीडिया के प्रभाव में और कुछ नहीं तो यह तो हुआ ही है कि हिन्दी का आत्मविश्वास लौट रहा है। उसकी छवि बदल रही है। आने वाले समय में सम्भव है कि लोकप्रिय साहित्य के इसी बढ़ते प्रसार और बाजार से हिन्दी के बेहतर साहित्य का रास्ता निकले। सोशल मीडिया के माध्यम से हिन्दी का अपना एक नेटवर्क बन रहा है जो सकारात्मक पहलू है।

4.1.09. बोध प्रश्न

अभ्यास

1. निम्नलिखित कथनों में से सत्य / असत्य कथन की पहचान कीजिए –
   i. जन समुदाय के बीच कोई साहित्य केवल सरलता और सुबोधता के कारण लोकप्रिय नहीं होता है। बल्कि उसमें जन-जीवन की वास्तविकताएँ और आकांक्षाएँ सहज-सुबोध रूप में व्यक्त होती हैं।
   ii. लोकसाहित्य गणसमाज के द्वारा आज तक किसी न किसी रूप में निर्मित और विकसित होता आ रहा है जबकि लोकप्रिय साहित्य पूँजीवादी युग और समाज की उपज है।
   iii. लोकसाहित्य की रचना जन समुदाय करता है और वही उसका श्रोता भी है जबकि पॉपुलर साहित्य प्रकाशन के युग का साहित्य है जिसका बड़े पैमाने पर व्यावसायिक उत्पादन होता है।
   iv. आज के पॉपुलर साहित्य में सोशल मीडिया की भूमिका नगण्य है।

v. पॉपुलर साहित्य भी गम्भीर साहित्य हो सकता है।

बहुविकल्पीय

1. निम्नलिखित में से पॉपुलर साहित्य के लेखक किस-किस क्षेत्र से सम्बन्ध रखते हैं –
   (क) मीडिया
   (ख) मैनेजमेंट
   (ग) इंजीनियरिंग
   (घ) उपर्युक्त सभी क्षेत्र से

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लोकसाहित्य और लोकप्रिय साहित्य में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. लप्रेक का पूरा अर्थ क्या होता है?
3. हिन्दी में 'पॉपुलर' शब्द के कितने अर्थ मिलते हैं?
4. पॉपुलर साहित्य से आपका क्या तात्पर्य है?
5. पॉपुलर साहित्य के कितने प्रकार हैं?
6. समकालीन हिन्दी पॉपुलर साहित्य के किन्ही पाँच कृतियों का नाम बताइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. युवा वर्ग की सामाजिक-सांस्कृतिक मानसिकता को पकड़ने में समकालीन पॉपुलर साहित्य कितना सफल हुआ है? विस्तारपूर्वक विश्लेषण कीजिए।
2. क्या आप इस तर्क से सहमत हैं कि पॉपुलर साहित्य भी गम्भीर और अर्थपूर्ण साहित्य हो सकता है? अगर 'नहीं' तो क्यों और 'हाँ' तो क्यों? तर्कपूर्ण विवेचना कीजिए।
3. हिन्दी पॉपुलर साहित्य की शुरुआत को आप किस तरह देखतेहैं? विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
4. अपने पसंदीदा समकालीन पॉपुलर लेखक की किसी एक रचना की समीक्षा कीजिए।
5. क्या आप मानते हैं कि पॉपुलर साहित्य को पॉपुलर बनाने में बाज़ार की भी एक बड़ी भूमिका है? तर्कसहित अपना पक्ष रखिए।

4.1.10. व्यवहार

1. पुस्तक मेले या इंटरनेट पर ऑनलाइन बिकने वाली हिन्दी साहित्य की कुछेक पॉपुलर रचनाओं की वस्तुगत और विधागत वर्गीकरण कीजिए।

2. पॉपुलर साहित्य का लेखक मीडिया, मैनेजमेंट, इंजीनियरिंग वगैरह दुनिया से आ रहा है। ये लेखक साहित्य लेखन की ट्रेनिंग लेने वाले लेखकों से अच्छा लिख रहे हैं या हीनतर। आप इसे किस रूप में देखते हैं। सोदाहरण अपने तर्क रखिए।

4.1.11. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. Raymond Williams in Keywords: A Vocabulary of Culture and Society (London, 1976: Fontana), pp. 198-199
2. शुक्ल, रामचन्द्र (2010), हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
3. पाण्डेय, मैनेजर (2014), साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा ग्रन्थ अकादेमी, पंचकुला

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://en.wikipedia.org/wiki/Popular
2. http://www.sarai.net/publications/deewan-e-sarai/01-media-vimarsh-hindi-janpad/charu_gupta.PDF
3. http://www.sarai.net/publications/deewan-e-sarai/01-media-vimarsh-hindi-janpad/082_091prabhatranjan.PDF
4. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
5. http://www.hindisamay.com/
6. http://hindinest.com/
7. http://www.dli.ernet.in/
8. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 4 : हिन्दी सृजनात्मक लेखन में नवाचार

इकाई – 2 : लप्रेक एवं यूनी कवि: परिचय एवं वैशिष्ट्य

इकाई की रूपरेखा

4.2.00. उद्देश्य कथन
4.2.01. प्रस्तावना
4.2.02. लप्रेक का अर्थ और शुरुआत
4.2.03. लप्रेक कवियों का परिचय और वैशिष्ट्य
4.2.04. यूनी कविता का अर्थ और शुरुआत
4.2.05. यूनी कवियों का परिचय और वैशिष्ट्य
4.2.06. पाठ सार
4.2.07. बोध प्रश्न
4.2.08. व्यवहार
4.2.09. कठिन शब्दावली
4.2.10. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

4.2.00. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई लप्रेक एवं यूनी कव्रियों पर आधारित है। इस पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. लप्रेक का अर्थ समझने के साथ उसकी शुरुआत को जान सकेंगे;
ii. लप्रेक त्रयी के परिचय के साथ उनकी विशेषताओं को जान सकेंगे;
iii. यूनी कविता का अर्थ और महत्त्वपूर्ण यूनी कवियों के बारे में जानकारी के साथ उनकी भी विशेषताओं को जान सकेंगे।

4.2.01. प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने समकालीन पॉपुलर साहित्य का परिचय एवं प्रकार को समझा। इस इकाई में आप लप्रेक और यूनी कवियों के परिचय और उनकी विशेषताओं के बारे में समझेंगे। आप जानते हैं कि प्रेमचंद से लेकर फणीश्वरनाथ रेणु अगर आंचलिक कथाकार रहकर अपने समय के अगुआ रहे तो नीलेश मिश्रा, रवीश तथा कुछ अन्य युवा लेखक 'युवा हिन्दी' के पुरोधा तो कहे ही जा सकते हैं। गाँव के बाद हिन्दी के लिए 'शहर' शब्द बड़ा चिर-परिचित हो गया है। वह चाहे नीलेश मिश्रा का 'यादों का शहर' हो या रवीश का 'इश्क़ में शहर होना', यह सुखद संयोग ही है, जहाँ हिन्दी रचनाओं को युवा पाठक बड़े चाव से पढ़ने-सुनने लगे हैं। वहाँ अब अलगू, होरी और हिरामन के अलावा कहानियों में तृषा और तन्मय नाम से नये किरदार भी आने लगे हैं।

हिन्दी सृजनात्मक लेखन में नवाचार में लप्रेक और यूनी कविता बेहद ही पॉपुलर हैं। लप्रेक शृंखला में अब तक तीन रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। तीनों में लगभग समान समय में मगर अलग-अलग निगाह से प्रेम को देखा, समझा और परखा गया है। मगर तीनों लप्रेक प्रेम के भिन्न आयाम भिन्न दृष्टिकोण से दर्शाते हैं। उसी तरह यूनिकोड से जोड़कर देवनागरी में इंटरनेट पर लिखी जाने वाली यूनी कविता ही बेहद पॉपुलर हुईहै। इंटरनेटीय साहित्य में इनकी अवस्था अभी अधिकतम 5-6 वर्षों की है। लेकिन साहित्य की दुनिया में इनकी दस्तक धमाकेदार रूप में हुई है। साहित्य में ऐसा धमाका कभी नहीं देखा गया। आज यह साहित्य आम जन-जीवन तक कंप्यूटर, मोबाइल, टेबलेट आदि इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से पहुँच रहा है। खासतौर पर ऐसे समय में, जब मनुष्य लगातार सम्वेदनहीनता की ओर बढ़ता जा है।

4.2.02. लप्रेक का अर्थ और शुरुआत

आइए, पहले लप्रेक का अर्थ जानते हैं। लप्रेक का अर्थ है – लघु प्रेम कथा। लप्रेक किस्सागोई का नैनो संस्करण है। जहाँ चन्द शब्दावली में कहानी गढ़ी जाती है। यहाँ कहानियाँ नैनो हैं, न्यून नहीं। दरअसल 'लप्रेक' की शुरुआत फेसबुक से हुई थी और रवीश कुमार इसके अगुआ थे। तब धीरे-धीरे बहुत से लोग इस विधा में सामने आने लगे थे लेकिन अब वह दौर बीत चुका है। 'लप्रेक' जब शुरू हुई तो इसके सामने यह चुनौती थी कि फेसबुक के छोटे से स्पेस में कविताओं को थोड़ा परे खिसकाते हुए कहानी जैसी किसी चीज के लिए कोई जगह बनायी जाए। इसके लिए ज़रूरी थी, चुटीली और बाँधने वाली भाषा, कुछ नये चटकीले मुहावरे और कुछ अनोखे से बिम्ब। लप्रेक इन सारी शर्तों को पूरा करती थीं। इसलिए इन्हें फेसबुक पाठकों ने खूब पसंद किया। हालाँकि जब वे इस दुनिया से निकलकर साहित्य प्रेमियों की जमात तक पहुँची तो एक नयापन, एक प्राप्ति जो किसी गम्भीर रचना को पढ़ लेने के बाद हम में होती है, वह यहाँ सिरे से नदारद लगी। लप्रेक पर इसका दोषारोपण करना शायद ठीक नहीं है। बहुत हद तक यह दोष हमारे समय का भी है। तुरन्त कुछ पा लेने, रच लेने और जी लेने की हड़बड़ी वाले दौर का है। अब हम घर का भोजन छोड़कर पिज्जा-बर्गर खाते हैं और खूब सराहते हैं। उसी तरह लप्रेक को भी साहित्य का फास्ट-फूड कह सकते हैं। चौंकाऊ, दिल-बहलाऊ और मनोरंजनकारी इसके अनिवार्य गुण हैं।

लप्रेक 'सार्थक' (Sarthak : An Imprint of Rajkamal Prakshan) द्वारा शुरू की गयी 'लघु प्रेम कथा' की एक शृंखला है जहाँ कहानियाँ किसी फेसबुक के मध्यम स्टेटस जितने छोटे-बड़े हो सकते हैं। 'इश्क़ में शहर होना' इस शृंखला की पहली कड़ी है। इसके साथ दो और लप्रेक आये। हिन्दी का यह प्रयोग कालान्तर में 'लप्रेक' शब्द ख़ुद-ब-ख़ुद एक नयी प्रवृत्ति या गद्य की श्रेणी बन गई है। आज के पॉपुलर साहित्य जगत् में इसे खूब सराहा जा रहा है।

4.2.03. लप्रेक कवियों का परिचय और वैशिष्ट्य

आइए, अब हम लप्रेक कवियों का परिचय और उनकी रचनाओं की विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। पहली रचना है – 'इश्क़ में शहर होना'। इसके लेखक हैं – प्रसिद्ध पत्रकार रवीश कुमार। इन्होंने

लिखा है कि वह शहर में पैर जमा रहे (या कई अड़चनों के बीच जमा चुके) उस युवा के शब्द हैं, जिसके साथ उसकी प्रेमिका या प्रेम की अनुभूति है। यहाँ कहानियाँ अलग-अलग चरणों और परिदृश्य में है। खाप्प से लेकर खामियाज़ा, दिल्ली के भागम-भाग से लेकर भावनात्मक भित्तिचित्र इत्यादि। नब्बे पन्नों के इस छोटी-सी कितबिया में सब कुछ है। काबिल-ए-गौर है कि इस किताब में रूमानी और परेशानी एक ही स्याही से छपी है।

'इश्क़ में शहर होना' ज़िन्दगी नहीं, अलग-अलग परिप्रेक्ष्य के किसी खास पल या घटना की कहानी बताता है जिसे ताने-बाने में पिरोकर फिर से एक पूरी ज़िंदगी की झलक मिलती है। बहुत छोटी कहानियों के साथ रवीश पढ़वाते कम परन्तु सोचवाते ज्यादा हैं। कुल मिलाकर इसे पढ़ने में समय उतना ही लगता है जितना सौ पन्नों की अन्य किताब को। कहानियाँ बेशक छोटी हैं, अनुभूति नहीं। चार लाइन पढ़कर दस लाइन तक सोचिए। कहानियाँ कुछ ऐसी हैं।

दूसरी लप्रेक रचना है – गिरीन्द्रनाथ झा की 'इश्क़ में माटी सोना'। वे कॉफ़ी के झाग में जिन्दगी खोजने की कथा कहते हैं। गिरीन्द्रनाथ जिन्दगी की कथा को जोतते हुए कहते हैं। गिरीन्द्रनाथ कहीं भी रेणु नहीं हुए हैं मगर रेणु का रूपक उनके समानान्तर चलता है। गिरीन्द्रनाथ रवीश भी नहीं हुए है मगर रवीश की शैली से अलग समानान्तर चलते हैं। अगर आप रेणु और रवीश के लिए गिरीन्द्रनाथ को पढ़ते हैं तो आप ख़ुद से न्याय कर पाते हैं। गिरीन्द्रनाथ चनका और दिल्ली के भरम जीते, तोड़ते और जीते हैं। गिरीन्द्रनाथ अपने लप्रेक में छूटे हुए गाँव चनका के साथ दिल्ली में जीते हुए अपनी प्रेम यात्रा में गाँव को दिल्ली के साथ जीने चले जाते हैं। गिरीन्द्रनाथ अपने अनुभव के प्रेम की गाथा कह रहे हैं, यह भोगा हुआ यथार्थ है। उनके यहाँ प्रेम सम्बल की तरह खड़ा है, उनका मेरुदण्ड है, साथ ही उलाहना और सहजीवन है। परन्तु गिरीन्द्रनाथ के लप्रेक में प्रेम ही नहीं है, प्रेम के बहाने बहुत कुछ है।

तीसरे लप्रेक का नाम है – 'इश्क़ कोई न्यूज़ नहीं'। और इसके लेखक हैं – विनीत कुमार। इनका लप्रेक रवीश कुमार के लप्रेक 'इश्क़ में शहर होना' और गिरीन्द्रनाथ झा के 'इश्क़ में माटी सोना' से कई मायनों में भिन्न है। इन कहानियों में विनीत कुमार की स्त्री-पुरुष सम्बन्ध और प्रेम सम्बन्ध की परिपक्व समझ और उनके अन्तरंग विवरण से उनका साम्य उजागर होता है। अधिकतर कहानियों में महिला पात्र स्पष्टतः मुखर हैं। यह कहानियाँ प्रेम की उस बदलती इबारत की कहानियाँ है जिसमें स्त्री सजीव, बुद्धिमान, बुद्धिजीवी और सुस्पष्ट है। यहाँ स्त्री समाज के सभी सरोकारों के साथ समान तल पर खड़ी है। पुरुष पात्रों में नये बदलते समीकरणों के प्रति एक लाचारगी, बेपरवाही और नादानी भी झलक जाती है। विनीत कुमार के लप्रेक हल्के-फुल्के होते-होते गम्भीर हैं और अपने संवादों के कारण दूर तक मार करते हैं। विनीत कुमार का लप्रेक केवल डिजिटल रोमांस नहीं है बल्कि खुदरा प्यार की थोक खबर है, इसमें उस इश्क़ की बात है जो मरता है। विनीत कुमार का लप्रेक न मरते इश्क़ को मारते-मारते जीने और जीते जाने की लघुकथा है।

विनीत कुमार उस युवा वर्ग से हैं जो जानता-समझता है कि "काफ़ी हाउस में पैसे किसी के भी लगें, कलेजा अपना ही कटता है।" विनीत कुमार का इश्क़ ब्रेकअप की मौजूदगी में अंकुरित होता और अपनी सभी

शर्तों-समर्पणों और समझदारी में फलता-फूलता है। कहानियाँ अपनी लघुता में सम्पूर्ण हैं और उनके संवाद ज़ुबान पर चढ़ जाते हैं। एकाध संवाद यहाँ प्रस्तुत है – "जिस शख्स को लोकतन्त्र के बेसिक कायदे से प्यार नहीं वो प्यार के भीतर के लोकतन्त्र को जिन्दा रख पायेगा ?"

लप्रेक में इश्क़ के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण है – चित्रांकन। विक्रम नायक द्वारा अंकित चित्र कहानियाँ। लप्रेक में विक्रम नायक सशक्त और समानान्तर कथा कहते हैं। वह लप्रेक के रचनाकारों के कथन से अधिक पाठ को समझते हैं और रचते हैं। विक्रम केवल पूरक नहीं हैं बल्कि अपनी समानान्तर गाथा चित्रित करते हैं। लप्रेक में बहुत से विवरण हैं। जहाँ विक्रम नायक लप्रेक के पूरक हैं परन्तु वह कई स्थान पर स्वयं के रचनाकार को उभरने देते हैं। विक्रम के चित्र अपनी स्वयं की कथा कहते जाते हैं – उनमें गम्भीरता, व्यंग, कटाक्ष है। रवीश कुमार कहते भी हैं कि "किताब जितनी मेरी है उतनी ही विक्रम नायक की भी है। जब किताब खोली तो विक्रम नायक सबसे पीछे दिखाई दिए तो मैंने उन्हें आगे करते हुए, पीछे से किताब पढ़ना शुरू किया।"

आइए, अब लप्रेक रचनाओं की विशेषताएँ जानने की कोशिश करते हैं –

1. ये तीनों किताबें एक शृंखला का हिस्सा हैं लेकिन कहानी कहने की विधा के अलावा इनमें एक और सूत्र है जो इन्हें आपस में जोड़ता है। यह सूत्र है दिल्ली। इन तीनों किताबों में बहुत कुछ मूलभूत एकरूपता हैं, जिनमें से एक यानी उनके घटित होने की जगह दिल्ली भी है और प्रमुख रूप से है। ये कहानियाँ दिल्ली के कॉफी हाउस, रेस्तरां, सिनेमा हॉल, मॉल के साथ यूनिवर्सिटी कैंपस, इसकी गलियों, मुहल्लों, सड़कों की खाक छानती गुजरती हैं। यहाँ दिल्ली केवल कॉफी टेबल का शहर नहीं है। रवीश के संग्रह 'इश्क में शहर होना' से कुछ पंक्तियाँ इस बात को और बेहतर तरीके समझा सकती हैं – "प्रेम हम सबको बेहतर शहरी बनाता है ! हम शहर के हर अनजान कोने का सम्मान करने लगते हैं ! उन कोनों में ज़िंदगी भर देते हैं। ... आप तभी एक शहर को नये सिरे से खोजते हैं जब प्रेम में होते हैं !" दरअसल इन किताबों को पढ़ते हुए हम अपने-अपने मन में बसे शहरों से गुजरते हैं। अपने विगत प्रेम को, विगत शहरों को जीने लगते हैं, उसमें रहने लगते हैं। कोई अन्तर्यात्रा चलती होती है हमारे भीतर। साफ-साफ शब्दों में कहें तो हम इसका हिस्सा होने लगते हैं। प्रेम हमें शहर से अपनी अजनबीयत दूर करने का मौका देता है। इस नज़र से लप्रेक किसी शहर को अपनाने और अपना बनाने की कथा हैं। प्रेम इस पूरी प्रक्रिया का एकमात्र संसाधन है।
2. ये प्रेम कथाएँ कुछ मायनों में उस क्षण के बीते जाने की कथाएँ हैं। कुछ प्रेम रीत जाने की भी कहानियाँ हैं या 'प्रेम' जैसा कुछ होने या उसमें होने की। यहाँ प्रेम भी एक बार होने वाली चीज नहीं है।
3. रवीश न्यूज से लेकर लेखन और लेखन से आगे राजनीति तक का सफर तय करते हैं। गिरीन्द्र इन लघु प्रेम कथाओं में गाँव से शहर और फिर शहर से गाँव तक की और विनीत गाँव से शहर के साथ कैंपस से न्यूज चैनल और न्यूज चैनल से फिर कैंपस तक की यात्रा करते हैं।
4. तीनों लप्रेककार बिहार में पले-बढ़े हैं और दिल्ली पहुँचकर एक नई दुनिया, नये सम्बन्ध और नये प्रेम को समझते हैं। इत्तिफ़ाकन तीनों मीडिया जगत् से जुड़े रहकर मीडिया के मोह से मुक्त हैं। दुनिया को देखने

का उनका तरीका आम इंसान के तरीके के मिलता-जुलता मगर भिन्न है। मगर रिपोर्टिंग जैसी निर्लिप्सा का भाव है तो वो कोमल हृदय भी है जो प्रेम को जीता है और जिन्दगी में प्रेम की खुशबू और रंगत को जानता है।

5. बिहार दिल्ली के बाद वह दूसरा ठौर है जो इन कहानियों में बोलता-जागता है और वह भी अपनी पूरी ठसक और वैभव के साथ। यहाँ की लोकभाषा का छिड़काव और बहाव तीनों गद्य में अपनी-अपनी तरह से है। इनमें भी गिरीन्द्र की भाषा में मिट्टी की जो गमक है वैसी दो किताबों में नहीं है। पत्रकारिता से किसानी तक की उनकी यात्रा की खुशबू उनके लेखन में साफ-साफ सूँघी जा सकती है। गिरीन्द्र का गद्य फणीश्वरनाथ रेणु की याद दिलाता है। वही रवानी और जड़ों से जुड़े होने की वही गन्ध। शायद इसका कारण उनका एक ही अंचल (कोसी) को साझा करना भी हो सकता है। फिर भी यदि रेणु वाली गहराई और उत्तरजीविता यहाँ नहीं है तो उसे कुछ गिरीन्द्र की और कुछ इस विधा की सीमा समझी जानी चाहिए।
6. प्रेम लघु होता है। सो ये कथाएँ भी लघु हैं। अब सवाल है कि प्रेम इतना लघु क्यों होता है। पानी के बुलबुले की तरह नश्वर और क्षणों में मिट जानेवाला, पर साथ ही बेहद खूबसूरत। क्या ऐसा तो नहीं कि उसकी खूबसूरती इसी क्षणभंगुरता में ही समाई होती है। ये प्रेम कथाएँ कुछ मायनों में उस क्षण के बीते जाने की कथाएँ हैं। कुछ प्रेम रीत जाने की भी कहानियाँ हैं या 'प्रेम' जैसा कुछ होने या उसमें होने की। यहाँ प्रेम भी एक बार होने वाली चीज नहीं, सो प्रेमपात्र भी एक नहीं है।
7. गिरीन्द्र की किताब 'इश्क में माटी सोना' में प्रेम ज्यादा भरोसेमंद और विश्वास से भरा दिखता है। इसके बाद रवीश की किताब का स्थान है। विनीत को पढ़ते हुए बार-बार लगता है कि एक ही ज़िंदगी में इतनी दफे और इतने प्रकार के प्रेम कैसे हो सकते हैं या किए जा सकते हैं ? पर इसे स्थापित करने का एक भोला-सा तर्क है यहाँ – "एक मासूम सा बाहरी लड़का, जिसे दिल्ली ने जितना ही छला वह उतनी ही शिद्दत से उसे अपनी गर्ल फ्रैंड बनाता रहा" शायद मानता भी रहा। हालाँकि छले जाने के इस परिप्रेक्ष्य में 'दिल्ली' कहने से आपत्ति जताई जा सकती है। दिल्ली किसी को नहीं छल रही होती दरअसल छलने या छले जाने की प्रक्रिया में जो मुख्य है, वो यह वर्गभेद यानी क्लास डिफरेंस है। हम साथी की आकांक्षाओं से और सपनों से छले जाते हैं। इसी का एक नमूना देखिए – "एम ब्लॉक कितना हैपनिंग है न, हमारे सारे फ्रैंड साउथ दिल्ली में हैं और हम हैं कि राजौरी में ... "
8. इन किताबों में कुछ समानता की बात हमने की है तो उसी के साथ यह भी कहा जा सकता है कि इनमें दोहराव भी खूब है। एक ही लेखक की रचनाओं में और अन्य लेखकों में भी।
9. शहर ही यहाँ प्रेम पात्र भी है और खल पात्र भी। रिश्तों की वह क्षणभंगुरता तीनों की कहानियों के केन्द्र में है। दिल्ली से जुड़ी उन कहानियों में जहाँ पंजाबी लड़की और बिहारी लड़के या दूसरे शब्दों में कहें तो आधुनिक सी लड़की और बावरा सा मन्त्रमुग्ध और प्रेम में डूबा हुआ सा एक लड़का केन्द्रीय किरदार हैं। यहाँ विसंगति समय की ज्यादा है, दिल्ली की कम। हालाँकि इन तीनों में विनीत और गिरीन्द्र के पास निम्न तबके के, मजदूर वर्ग के लोगों की भी प्यारी और सोंधी सी प्रेम कथाएँ हैं।

10. इस शृंखला के तीनों लेखक साथ मिलकर प्रेम का एक मुकम्मल चेहरा रचते हैं। इन्हें साथ-साथ पढ़ने से ही एक चित्र बनता है। कई सवालों के हल भी मिलते हैं। मसलन रवीश को पढ़ते हुए उपजे इस सवाल का जवाब कि इश्क में हम शहर ही क्यूँ नहीं हो सकते ? का जवाब गिरीन्द्र को पढ़ने के बाद मिलता है। यदि ये किताबें स्वतन्त्रता और स्वायत्तता में कोई पूर्ण चेहरा या बिम्ब ही बना पातीं तो ज्यादा बेहतर होता।
11. इन किताबों में दोहराव भी खूब है। एक ही लेखक की रचनाओं में और अन्य लेखकों में भी। भाव, विचारों, दृश्यों और बिम्बों तक में दोहराव दिख जाता है। ऐसा शायद इसलिए है कि यहाँ परिवेश और भावनाएँ वही हैं। प्रेम भी वही। प्रेम जब भी हो नया-सा ज़रूर लगता है, पर होता वही है। लगभग एक जैसा।
12. इन तीनों किताबों से गुजरने पर कई सवाल आते हैं जैसे कि शहर, गाँव और न्यूज-रूम की प्रेम कथाओं के बाद इस विधा में लिखी कहानियों की अगली पृष्ठभूमि क्या होगी ? साहित्य की अन्य विधाओं से उलट यह विधा क्या इतने को ही थी ? हर विधा की तरह यही कुछ लेखक इसमें बार-बार लिखेंगे या कुछ अन्य नाम भी इस शृंखला में आगे आने को तैयार हैं ?

4.2.04. यूनी कविता का अर्थ और शुरुआत

इंटरनेटीय साहित्य गैर-गम्भीर है। इसी मिथक को तोड़ने का प्रयास है – यूनी कविता। यूनिकोड से जोड़कर जो कविता लिखी गई, उसे 'यूनी कविता' कहते हैं। आप जानते हैं कि यूनिकोड एक तरह का हिन्दी फॉण्ट है, जिसे कंप्यूटर पर रोमन में टाइप कर हिन्दी देवनागरी में लिखा जाता है। इस फॉण्ट में हिन्दी साहित्य विशेष रूप से कविता के लिए Hindyugm.com ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। कवियों और पाठकों को इस वेबसाइट ने हिन्दी में सीधे कंप्यूटर पर लिखना सिखाया। उनकी रचनाओं को डिजिटल स्पेस दिया। उन्हें गम्भीरता की ओर मोड़ा भी। इस वेबसाइट पर 2006 से लेकर 2010 प्रकाशित 38 सम्भावनाशील कवियों की प्रतिनिधि कविताओं को 'संभावना डॉट कॉम' नामक संग्रह में सम्मिलित किया गया।

इस संग्रह के सम्पादक का मानना है कि दुनिया भर में हिन्दी से जुडी गतिविधियों जैसे कि आयोजन, कार्यक्रम, कवि सम्मेलन, गोष्टियाँ, प्रतियोगिताएँ, पुरस्कार-वितरण, सम्मान-समारोह इत्यादि के बारे में जानकारी को इंटरनेट ने इजाफा किया। मुद्रित पत्रिकाओं के माध्यम से पाठकों तक सब कुछ छनकर पहुँचता था और इंटरनेट की तरह सभी पत्रिकाओं को देख पाना आसान भी नहीं था।

इंटरनेट पर हिन्दी में सबसे ज़्यादा कविताएँ प्रकाशित हो रही हैं और उसके उलट गम्भीर और प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में कविताओं का स्थान छोटा होता जा रहा है। प्रिंट की दुनिया में थोड़ा मुश्किल और खर्चीला काम होता है कि नये पन्ने अलग से जोड़े जाएँ। यहाँ हर नई चीज़ पुरानी और बासी पड चुके विषयों, मुद्दों और विधाओं को रिप्लेस करके अपनी जगह बनाती है। ऐसे में अच्छा-बुरा लिखने वाले हर कवि के पास तीन विकल्प मौजूद थे। पहला, अपना एक ब्लॉग बनाए और अपनी कविताएँ वहाँ चिपका दे। दूसरा, पैसा खर्च करके संग्रह

निकाल ले। या फिर तीसरा विकल्प, कविताओं को डायरी तक सीमित रखे। इन तीनों में से अन्तिम दो विकल्प कवि के स्वभाव और चाहत के प्रतिकूल थे। इंटरनेट पर प्रकाशित कविताओं पर आलोचकों की राय बेशक 'रिसाइकल बिन' के रूप में थी। लेकिन यहाँ सब कुछ कूड़ा नहीं है। बहुत-सी कविताओं में मानवीय सम्वेदनाओं की तंदुरुस्ती है। बकौल 'संभावना डॉट कॉम' के सम्पादक शैलेश भारतवासी – "हिन्दी कविता का रास्ता अब इंटरनेट से भी होकर जा रहा है। बहुत सम्भव है कि ढेरों पाठक, लेखक, आलोचक शायद ही कभी इस रास्ते से होकर गुजरें इसलिए बेहतर होगा कि इन्हें ही उनके रास्तों में कहीं-कहीं जुगनू की तरह टाँक दिया जाय। एक उद्देश्य यह भी रहा है कि ... हिन्दी साहित्य में गैरपारम्परिक माध्यमों से पाठकों तक पहुँचने का रास्ता न तो गम्भीर पाठकों की ओर जा पाता है न मनोरंजन की उम्मीद रखने वाले पाठकों तक।"

'संभावना डॉट काम' कविता संग्रह में प्रस्तुत अड़तीस कवि पेशे से इंजीनियर, मेधावी छात्र और पत्रकार हैं। इन यूनिकवियों की प्रतिनिधि कविताओं को इस किताब में संजोया गया है। इसमें तर्कशील और नई सोच के पैरोकार कवियों की रचनाएँ साहित्य को और अधिक उर्वर करने वाली हैं। यह किताब हिन्दी की डिजिटल परम्परा का करीब से परिचय कराती है।

इस कविता संग्रह की खूबी यह है कि वह हिन्दी कविता के नये हस्ताक्षरों को आपसे एक साथ रू-ब-रू कराती है। इससे फायदा यह होता है कि पढ़ने वालों को यह बात आसानी से समझ आ जाती है कि नई पीढ़ी की रेंज कैसी है और एक ही विषय पर वह कितना अलग-अलग तरीके से चीजों को सोच या समझ रहे हैं।

'संभावना डॉट कॉम' कविता संग्रह के लोकार्पण के अवसर पर टिप्पणी करते हुए आलोचक आनन्द प्रकाश ने कहा है कि "निश्चित रूप से मेरे लिए यह नया अनुभव है। अब तक हम कविताओं को या तो किसी संकलन में पढ़ते थे या किसी पत्रिका में, लेकिन मेरे लिए यह पहली बार है कि ये कविताएँ पहले से ही नेट पर प्रकाशित हैं और हम इसे पुस्तक के रूप में देख रहे हैं। आमतौर पर लोग नये का विरोध करते हैं, लेकिन मैं इस नये प्रयोग का स्वागत करूँगा।" कवि केदारनाथ सिंह ने 'संभावना डॉट कॉम' में प्रकाशित कविताओं को एक रसिक के रूप में पढ़ने की बात कही है। उनकी राय है कि युवा कवियों के नये संकलन को जल्दबाजी में नहीं देखो, बल्कि प्रतीक्षा करो, उन्हें फलने दो, बढ़ने दो। इसकी क्षणिक समीक्षा इनकी प्रतिभाओं के साथ न्याय नहीं होगा।" वे जोर देकर कहते हैं – ये कविताएँ इक्कीसवीं सदी की आवाज हैं, नई आवाज हैं, मैं इन्हें उंगली नहीं दिखाऊँगा, मैं इनका स्वागत करूँगा।"

इस पुस्तक में नई कविताएँ समाज, देश, काल, वातावरण, धर्म, ईश्वर, शिक्षा पद्धति, राजनीति, दर्शन सहित मनुष्य से सम्बन्धित अन्य तथ्यों की गहन विवेचना करती हैं। इस संग्रह में संकलित लगभग सभी कवि हिन्दी साहित्य से पाठ्यक्रम के तौर पर नहीं जुड़े हैं। इसके बाद भी वह सम्वेदनाओं के महीन धागे से ऐसी तस्वीर उकेरते हैं कि पाठक रुक कर सोचने के लिए मजबूर हो जाए। बेशक, कहीं-कहीं कविगण भावनाओं और सोच का तालमेल नहीं बिठा पाए हैं। यह बात दीगर है लेकिन हिन्दी साहित्य के गहन अध्ययन के बगैर कवियों ने

अपने सम्वेदनाओं की ऐसी खेती कर दी है कि किसी विश्वविद्यालय के हिन्दी के प्रोफेसर और विद्यार्थी भी अचम्भित हो जाएँ।"

4.2.05. यूनी कवियों का परिचय और वैशिष्ट्य

आइए, यूनी कवियों की कविताओं पर एक दृष्टि डालते हैं। यूनी कवियों में अधिकांश कवियों की कविताएँ मुख्यधारा की पत्रिकाओं प्रकाशित होने से वंचित थी। उनमें से कुछ ने बड़ी पत्रिकाओं में प्रकाशित करने का प्रयास भी किया लेकिन उनकी कविताएँ सम्पादकों की डेस्क तक पहुँच ही नहीं पायीं। जैसा कि आप जान चुके हैं कि अधिकांश यूनी कवि पेशे से इंजीनियर, मेधावी छात्र और पत्रकार हैं। ज्यादातर कवि तकनीक की दुनिया से जुड़े हैं। अर्थात् वे साहित्य की ट्रेनिंग लेकर कविता लेखन में नहीं आये हैं। लेकिन सम्वेदना की जिस जमीन पर खड़े हैं होकर कविता की रचना होती है, वह इनके आसपास ही है।

कविता का सम्वेदना से सीधा रिश्ता होता है। कविता के लिए पत्रिकाओं में और लोगों के दिलों में लगातार कम होता स्थान कहीं न कहीं सम्वेदनहीन होते समाज का संकेत है। इसे खतरे की घंटी के रूप में देखना होगा। मानवीय सम्वेदनाओं के बीज कविताओं की फसल बनकर लहलहाते हैं। बाज़ार का शिकार मनुष्य दिनोंदिन ऊसर में तब्दील होते जा रहा है। ऐसे में ये यूनी कवि खेतों में खाद-पानी देने का प्रयास कर रहे हैं, जहाँ सम्वेदना की फसल उग सकती है।

अखिलेश श्रीवास्तव की 'विदर्भ : कर्जे में कोपल', 'हँसी', अनुराधा श्रीवास्तव की 'नारी क्यों मौन रहती है', अपूर्व शुक्ल की 'समय की अदालत में', 'इक्कीसवीं सदी का भविष्य', आकांक्षा पारे की 'इस बार', 'एक टुकड़ा आसमान', 'चिन्ता', 'बदलती परिभाषा', 'ईश्वर' कविताएँ मन को माँज देती हैं। सभी की रचनाओं का भाव समान है। गौरव सोलंकी की कविता 'जरा सी अनपढ़ता' और 'बहुत सारी बेवकूफी के लिए' और पावस नीर की कविता 'जुलाई का पहला हफ्ता' लाजवाब हैं। किताब को पढ़कर लगता है कि इसमें प्रकाशित रचनाकारों की आपसी सोच में कोई व्यापक अन्तर नहीं है।

इनमें से कुछ कवियों की शैली आज छांदस है लेकिन केवल इतने मात्र से ऊमें कविता की सम्भावना समाप्त नहीं होती। मानतावादी विचार की झलक दिखाना ही इन कवियों विशेषता है। बेशक अब हिन्दी कविता का रास्ता इंटरनेट की राह से होकर गुजरने लगा है।

यूनी कविताओं पर गहन नज़र आपको कुछ नये तथ्यों से अवगत कराएगी। मसलन, इन कविताओं की भाषा और उसके अंदाज चौंकाने वाले हैं। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के समय की भाषा से बिलकुल इतर बोल इसमें नये जमाने की सूचना देते हैं। इन्हें पढ़कर लगता है कि ये सारे कवि अपनी भाषा में नये हस्ताक्षर के साथ अपनी बात कहने का माद्दा रखते हैं। कवियों के कहने का अंदाज बिलकुल जुदा-जुदा है। यूनी कविताओं में कई धरातल की कविताएँ हैं। कई तरह की शैली हैं। जब कविताएँ आपका हाथ

पकड़ लें, जाने न दें तो समझो कि कविता सफल है। यूनी कवियों की कई कविताएँ पाठकों को रोकती हैं, टोकती हैं, झकझोरती हैं। इसके कवि उम्र से युवा लेकिन विचार से प्रौढ़ नज़र आते हैं।

4.2.06. पाठ सार

हिन्दी सृजनात्मक लेखन में नवाचार में लप्रेक और यूनी कविता बेहद ही पॉपुलर हैं। लप्रेक शृंखला में अब तक तीन रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। तीनों में लगभग समान समय में मगर अलग-अलग निगाह से प्रेम को देखा, समझा और परखा गया है। मगर तीनों लप्रेक प्रेम के भिन्न आयाम भिन्न दृष्टिकोण से दर्शाते हैं। उसी तरह यूनिकोड से जोड़कर देवनागरी में इंटरनेट पर लिखी जाने वाली यूनी कविता बेहद पॉपुलर हुई है। इंटरनेटीय साहित्य में इनकी अवस्था अभी अधिकतम 5-6 वर्ष ही हुई है। लेकिन साहित्य की दुनिया में इनकी दस्तक धमाकेदार रूप में हुई है। साहित्य में ऐसा धमाका कभी नहीं देखा गया। आज यह साहित्य आम जन-जीवन तक कंप्यूटर, मोबाइल, टेबलेट आदि इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से पहुँच रहा है। खासतौर पर ऐसे समय में, जब मनुष्य लगातार सम्वेदनहीनता की ओर बढ़ता जा है।

लप्रेक का अर्थ है – लघु प्रेम कथा। लप्रेक किस्सागोई का नैनो संस्करण है। जहाँ चन्द शब्दावली में कहानी गढ़ी जाती है। यहाँ कहानियाँ नैनो हैं, न्यून नहीं। दरअसल 'लप्रेक' की शुरुआत फेसबुक से हुई थी और रवीश कुमार इसके अगुआ थे। तब धीरे-धीरे बहुत से लोग इस विधा में सामने आने लगे।

'संभावना डॉट काम' कविता संग्रह में यूनी कविताओं का संकलन किया गया है। इसमें प्रस्तुत अड़तीस कवि पेशे से इंजीनियर, मेधावी छात्र और पत्रकार हैं। यूनी कवि तर्कशील और नई सोच के पैरोकार कवियों की रचनाएँ साहित्य को और उर्वर करने वाले हैं। यूनी कविताएँ हिन्दी की डिजिटल परम्परा का करीब से परिचय कराती है।

कविता का सम्वेदना से सीधा रिश्ता होता है। कविता के लिए पत्रिकाओं में और लोगों के दिलों में लगातार कम होता स्थान कहीं न कहीं सम्वेदनहीन होते समाज का संकेत है। इसे खतरे की घंटी के रूप में देखना होगा। मानवीय सम्वेदनाओं के बीज कविताओं की फसल बनकर लहलहाते हैं। बाज़ार का शिकार मनुष्य दिनोंदिन ऊसर में तब्दील होते जा रहा है। ऐसे में ये यूनी कवि खेतों में खाद-पानी देने का प्रयास कर रहे हैं, जहाँ सम्वेदना की फसल उग सकती है।

4.2.07. बोध प्रश्न

अभ्यास

1. 'अ' और 'ब' में सही मिलान कीजिए –

'अ'		'ब'	
(क)	रवीश कुमार	(i)	इश्क कोई न्यूज़ नहीं
(ख)	विनीत कुमार	(ii)	इश्क में शहर होना
(ग)	निलेश मिश्रा	(iii)	इश्क में माटी सोना
(घ)	गिरीन्द्रनाथ झा	(iv)	यादों का शहर

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. 'विदर्भ : कर्जे में कोपल' कविता के कवि का नाम क्या है ?
   (क) अखिलेश श्रीवास्तव
   (ख) अनुराधा श्रीवास्तव
   (ग) अपूर्व शुक्ल
   (घ) आकांक्षा पारे

2. 'संभावना डॉट कॉम' में कितने कवियों की कविताओं को संकलित किया गया है ?
   (क) पैंतीस
   (ख) छत्तीस
   (ग) सैंतीस
   (घ) अड़तीस

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लप्रेक का क्या अर्थ है ? और इसकी शुरुआत कहाँ से हुई ? लप्रेककारों के नाम और उनके संग्रहों के नाम बताइए।
2. यूनी कविता से क्या आशय है ? किन्हीं पाँच यूनी कवियों के नाम बताइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. लघु प्रेम कथाओं की विशेषताओं की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

2. लप्रेक रचनाकारों का परिचय देते हुए उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त प्रेम और शहर को रेखांकित कीजिए।
3. यूनी कवियों की कविताओं के वैशिष्ट्य को उद्घाटित कीजिए।

4.2.08. व्यवहार

1. क्या आप यह मानते हैं कि आज मनुष्य लगातार सम्वेदनहीनता की ओर अग्रसर हो रहा है । इस सम्वेदनहीन दौर में बतौर एक सृजनात्मक लेखक आप किस तरह मानवीयता का सन्देश देते ? अपनी सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति कीजिए।

4.2.09. कठिन शब्दावली

यूनिकोड	:	यूनिकोड एक तरह का हिन्दी फॉण्ट है, जिसे कंप्यूटर पर रोमन में टाइप कर हिन्दी देवनागरी में लिखा जाता है।
रिसाइकल बिन	:	विंडोस ओप्रेटिंग सिस्टम का एक विशेष फोल्डर होता है जिसकी सहायता से अपनी डिलीट की हुई फाइल तथा फोल्डर को सरलता से बचा सकते है । अर्थात् एक तरह का कबाड़खाना।
स्पैम	:	जंक मेल

4.2.10. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. रवीश कुमार (2015), इश्क में शहर होना, सार्थक, राजकमल प्रकाशन समूह, दिल्ली, ISBN: 978-81-267-2767-4
2. गिरीन्द्र नाथ झा (2015), इश्क में माटी सोना, सार्थक, राजकमल प्रकाशन समूह, दिल्ली, ISBN: 978-81-267-2837-4
3. विनीत कुमार (2016), इश्क कोई न्यूज़ नहीं, सार्थक, राजकमल प्रकाशन समूह, दिल्ली, ISBN: 978-81-2672-2899-2
4. शैलेश भारतवासी (सं.) 2010, संभावना डॉट कॉम, हिन्दयुग्म प्रकाशन, दिल्ली, ISBN: 978-81-90976-70-1

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. https://gahrana.com/tag/%E0%A4%B2%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%87%E0%A4%95/
2. https://satyagrah.scroll.in/article/28166/review-of-laprek
3. https://www.amarujala.com/kavya/book-review/sambhavna-dot-com-it-means-new-thinking-of-poetry
4. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18

❖❖❖

खण्ड – 4 : हिन्दी सृजनात्मक लेखन में नवाचार

इकाई – 3 : गैर कथात्मक लेखन और नवाचार

इकाई की रूपरेखा

4.3.00. उद्देश्य कथन
4.3.01. प्रस्तावना
4.3.02. गैर कथात्मक लेखन और नवाचार
4.3.03. निबन्ध
    4.3.03.1. भारतेन्दु युग
    4.3.03.2. द्विवेदी युग
    4.3.03.3. शुक्ल युग
    4.3.03.4. शुक्लोत्तर युग
4.3.04. आलोचना
4.3.05. व्यंग्य
4.3.06. रेखाचित्र
4.3.07. संस्मरण
4.3.08. जीवनी
4.3.09. आत्मकथा
4.3.10. नवाचार : साहित्य में नवाचार
    4.3.10.1. रिपोर्ताज
    4.3.10.2. डायरी
    4.3.10.3. साक्षात्कार
    4.3.10.4. पत्र साहित्य
4.3.11. पाठ सार
4.3.12. बोध प्रश्न
4.3.13. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

4.3.00. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई 'गैर कथात्मक लेखन और नवाचार' पर आधारित है। इस पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. हिन्दी साहित्य में गैर कथात्मक लेखन की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
ii. साहित्य में नवाचारों से परिचित हो सकेंगे।

4.3.01. प्रस्तावना

सामान्यतः साहित्य का अर्थ कहानी, उपन्यास, कविता या नाटक लेखन आदि से लगाया जाता है लेकिन वर्तमान में साहित्य के विविध रूप पाठकों के समक्ष आ रहे हैं। जितनी तेजी से आज समय बदल रहा है उसी गति के साथ प्रत्येक क्षेत्र में बदलाव आ रहे हैं और यही कारण है कि साहित्य के भी अलग-अलग रूप दिख रहे हैं। यद्यपि गैर कथात्मक साहित्य या कथेतर साहित्य आज की देन नहीं है। यह पिछले काफी समय से लिखा जाता रहा है लेकिन वर्तमान में अन्य विधाओं को एक स्पष्ट पहचान मिली है। मनुष्य की सृजनशीलता ने अभिव्यक्ति के नये-नये माध्यम खोजे और परम्परागत ढंग से चले आ रहे साहित्य लेखन को एक नया रूप देने के साथ ही एक बड़ा आकाश भी दिया। लेखक की अभिव्यक्ति नई-नई विधाओं के रूप में प्रस्फुटित हुई, जिसे हमे नवाचार के रूप में जानते हैं। इन नवीन विधाओं के माध्यम से लेखक के जीवन अनुभव, उनके ज्ञान और विभिन्न धारणाओं से पाठक परिचित हुआ। इस इकाई में गैर कथात्मक लेखन एवं नवाचार को केन्द्र में रखते हुए नवीन विधाओं का परिचय दिया जाएगा। साथ ही साथ उन विधाओं से सम्बन्धित लेखकों और उनके लेखन की चर्चा भी की जाएगी ताकि विद्यार्थी इस विषय से भली प्रकार परिचित हो सकें।

4.3.02. गैर कथात्मक लेखन और नवाचार : एक अवलोकन

भारत ने लम्बे समय तक अंग्रेजों की गुलामी सही। अधिकतर सामन्तों और नवाबों ने अंग्रेजों से संधि कर ली थी और अंग्रेजों ने धीरे धीरे अपने व्यापार और सैन्य ताकत से भारत पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस सब के बावजूद लोगों ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष किया। उन्होंने अनेक माध्यमों से जनजागृति का कार्य किया और भारतीय समाज को शोषक सत्ता का चेहरा दिखा उन्हें जागरूक बनाया। इसी जागरूकता को डॉ॰ रामविलास शर्मा हिन्दी का नवजागरण कहते हैं।

समाज में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए एक सशक्त माध्यम की आवश्यकता होती है। साहित्य लेखन वह माध्यम है जो लोगों में सोचने और तर्क करने की शक्ति पैदा करता है। भारत में प्राचीन काल से ही महान् साहित्य का सृजन होता रहा है। प्राचीन काल में अनेक महाकाव्य, वेद, पुराण आदि रचे गए और समाज इससे लाभान्वित हुआ। आधुनिक युग में लम्बे समय तक कहानी, उपन्यास, कविताएँ आदि लिखी जाती रहीं लेकिन इन विधाओं से इतर नयी विधाओं ने भी जन्म लिया और साहित्य में अपना अच्छा खासा स्थान बनाया। पाश्चात्य देशों के सम्पर्क में आने से भी साहित्य समृद्ध हुआ और नयी विषयवस्तु उभर कर सामने आई। आज हम तकनीकी दुनिया में प्रवेश कर चुके हैं और साहित्यिक संसार से इंटरनेट के जुड़ाव को नकार नहीं सकते। इस इकाई में गैर कथात्मक लेखन और नवाचार के विषय में चर्चा की जाएगी। इस सन्दर्भ में विभिन्न गैर कथात्मक विधाओं का विवरण निम्नानुसार है –

4.3.03. निबन्ध

निबन्ध शब्द का अर्थ है 'बाँधना' । निबन्ध गद्य की आधुनिक विधा है जिसे अंग्रेजी में Essay कहा जाता है। आचार्य हेमचन्द्र सुमन अपनी पुस्तक 'साहित्य विवेचन' में लिखते हैं कि – "निबन्ध गद्य काव्य की वह विधा है जिसमें लेखक एक सीमित आकार में इस विविध रूप जगत् के प्रति अपनी भावात्मक और विचारात्मक प्रतिक्रियाओं का प्रकटीकरण करता है ।" जबकि अंग्रेजी के महान् निबन्धकार लॉड बेकन इसे 'बिखरा हुआ चिन्तन' कहते हैं। जो भी हो निबन्ध विधा का साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है और यह एक लोकप्रिय विधा है।

4.3.03.1. भारतेन्दु युग

हिन्दी निबन्ध का आरम्भ भारतेन्दु युग से होता है । यही वह समय था जब चारों और सामाजिक और सांस्कृतिक सुधारों की ध्वनि सुनाई दे रही थी । सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक आन्दोलनों का बोलबाला था । अपनी स्वतन्त्रता, संस्कृति और भाषा के लिए आवाजें उठ रहीं थीं । इसे ही 'नवजागरण' कहा गया । इसी समय लेखकों ने अपने विचारों को बड़े ही प्रभावशाली, निर्भीक और व्यवस्थित तरीके से व्यक्त किया। इस काल में सामाजिक बुराइयों के प्रति चेतना, अंग्रेजी शासन की खिलाफ़त और भाषा एवं संस्कृति के विकास के लिए चिन्ता दिखने लगी थी। पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय से सम्बन्धित निबन्ध लिखे जाने लगे और वे व्यापक रूप से लोकप्रिय हुए। तत्कालीन समय में निबन्ध साहित्य को विकसित करने में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी उपाध्याय 'प्रेमघन', अम्बिकादत्त व्यास और बालकृष्ण भट्ट जैसे लेखकों का योगदान रहा है। हिन्दी के नवजागरण काल में निबन्ध महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विधा के रूप में उभरा और प्रतिष्ठित हुआ।

'निबन्ध' विधा भाषा के साथ इतिहास, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, सामाजिक सरोकार आदि विषयों पर केन्द्रित रचनाओं के लिए सर्वाधिक उपयुक्त विधा बनी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने तत्कालीन समस्याओं को अपने निबन्धों का विषय बनाया। वे स्वयं एक समाजसेवी के रूप में जाने जाते थे। उनके विचारों की झलक उनके निबन्धों में देखने को मिलती है। सामाजिक विसंगतियों के अतिरिक्त इतिहास, धर्म, भाषा और साहित्य भी इनके लेखन के विषय रहे। स्त्री चेतना के स्वर मुख्यतः इन निबन्धों में दृष्टिगत होते हैं। 'स्त्री सेवा पद्धति', 'भ्रूण हत्या', 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन', 'अंग्रेजों से हिन्दुस्तानियों का जी क्यों नहीं मिलता' आदि भारतेन्दु के चर्चित निबन्ध हैं। भारतेन्दु के निबन्ध सूक्ष्म निरीक्षण के साथ-साथ तीव्र व्यंग्य करते हैं। वे रोचक ढंग से बड़ी गूढ़ बातें कहने में सिद्धहस्त थे। भारतेन्दु ने लेखन में मुख्य रूप से भावात्मक और विचारात्मक शैली को अपनाया।

बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु काल के सर्वाधिक प्रभावी निबन्धकार रहे हैं। डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पण्डित बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी के सर्वप्रथम निबन्ध लेखक के रूप में स्वीकार करते हैं । भट्टजी ने राजनैतिक, साहित्यिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विषयों पर गम्भीर निबन्धों की रचना की। सामाजिक समस्याओं पर भी उन्होंने खासी दृष्टि डाली है । स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा, कृषकों की दुरावस्था, महिला स्वातंत्र्य, बाल विवाह, अंग्रेजी शिक्षा जैसे गम्भीर विषयों पर लिखे गए निबन्धों के माध्यम से उनके मनोभावों एवं भाषा-कला सम्बन्धी

चेतना से पाठक परिचित होता है । बालकृष्ण भट्ट ने विचारात्मक निबन्ध लेखन के साथ-साथ भावात्मक, वर्णनात्मक, कथात्मक एवं मनोविकारों को इंगित करने वाले आशा, आत्मगौरव, विश्वास, भिक्षावृत्ति जैसे निबन्ध भी लिखे।

बदरीनारायण चौधरी उपाध्याय 'प्रेमघन' सामाजिक सरोकारों के निबन्धकार थे । 'नेशनल कांग्रेस की दुर्दशा', 'भारतीय प्रजा के दुःख की दुहाई' और 'ढिठाई पर गवर्नमेंट की कड़ाई' जैसे निबन्ध राजनैतिक आन्दोलनों पर चलाई गई कलम का परिणाम हैं। उन्होंने काव्यात्मक शैली में भी निबन्ध की रचना की।

इसके अतिरिक्त प्रतापनारायण मिश्र जिन्हें आत्मव्यंजक निबन्धकार माना जाता है, इस युग के अग्रणी निबन्धकारों में से एक थे । इनके निबन्धों में चुलबुलापन और गाम्भीर्य दोनों ही समान रूप से उपस्थित हैं । 'खुशामद', 'दाँत', 'धोखा' और 'बालक' उनके चुलबुले निबन्ध हैं तो 'आप', 'बात', 'नारी' द्वितीय कोटि के निबन्धों में आते हैं।

इस प्रकार भारतेन्दु युग में सर्वाधिक निबन्धों की रचना हुई और इस विधा को नई ऊँचाई मिली। विभिन्न विषयवस्तुओं को लेकर लिखे गए ये निबन्ध अनेक शैलियों से संगुम्फित हैं। इन निबन्धों की यह विशेषता थी कि ये जनमानस के साथ आसानी से जुड़ जाते थे।

4.3.03.2. द्विवेदी युग

द्विवेदी युग में यह विधा एक परिपक्व विधा के रूप में आगे बढ़ी। इस युग में भी निबन्ध की लगभग वही शैलियाँ विकसित हुईं जिनका बीज भारतेन्दु युग में पड़ चुका था । द्विवेदी युग में भाषा और व्याकरण सम्बन्धी निबन्ध लेखन अधिक हुआ । निबन्ध लेखन परम्परा जो स्वयं महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती के माध्यम से पोषित की इसको भारतेन्दु युग से अलग करती हुई एक नया विस्तार देती है।

द्विवेदी युग के प्रमुख निबन्धकार हैं – पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त, गोविन्दनारायण मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू गुलाबराय आदि । इस युग में मुख्यतः साहित्य और भाषा, वैज्ञानिक आविष्कार, पुरातत्त्व एवं इतिहास, जीवन चरित्र, अध्यात्म, भूगोल एवं अन्य उपयोगी सामाजिक विषयवस्तु पर निबन्ध-लेखन किया गया । इस युग के निबन्ध लेखकों ने जनमानस की मानसिकता को विस्तार दिया जिससे भारतेन्दु काल के सामाजिक सरकारों के अतिरिक्त नवीन ज्ञान, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नूतन अविष्कारों के प्रति एक दृष्टि विकसित हुई।

4.3.03.3. शुक्ल युग

द्विवेदी युग के बाद हिन्दी निबन्ध के तीसरे चरण को 'शुक्ल युग' कहा जाता है । यह वह समय था जब प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था और वैश्विक स्तर पर इसके परिणाम देखे जा रहे थे। भारत में भी स्वाधीनता की

लहर जोर पकड़ चुकी थी। विदेशी प्रभाव साहित्य में नवीन विधाओं के लिए रास्ता बना रहा था। निबन्ध अपनी समग्रता से नये विषयों को समेट रहा था। ऐसे समय में शुक्लजी इस परम्परा से जुड़े लेकिन वे अन्य निबन्धकारों से अलग थे। उनके निबन्धों की अपनी विशेषताएँ थीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों ने इस विधा को नये आयाम प्रदान किए। इनके निबन्ध जहाँ एक ओर परम्पराओं से जुड़ते हैं वहीं नये विचारों और भावनाओं को भी स्थापित करते हैं। 'चिन्तामणि' शुक्लजी के निबन्धों का संग्रह है जिसमें निबन्धों का चरम उत्कर्ष है। श्रद्धा-भक्ति, लोभ, उत्साह, क्रोध आदि इनके मनोविकार सम्बन्धी निबन्ध हैं।

4.3.03.4. शुक्लोत्तर युग

इस युग में निबन्धों का पर्याप्त विकास हुआ जिसमें व्यावहारिक दृष्टि, भाषा-शैली, विषयवस्तु और शिल्प आदि के नवीन रूप दिखे। भावात्मक, कथात्मक, आलोचनात्मक, विचारात्मक, घटनात्मक, विवरणात्मक आदि निबन्धों के साथ ललित निबन्धों की प्रचुरता से रचना हुई। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, रामधारी सिंह दिनकर, जयशंकर प्रसाद, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, प्रभाकर माचवे, डॉ॰ भगीरथ मिश्र, डॉ॰ रामविलास शर्मा, डॉ॰ विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, डॉ॰ सम्पूर्णानन्द, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, विष्णु प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी, यशपाल आदि आधुनिक समय तक के निबन्धकारों की सूची है, जिनके निबन्धों में गहन वैचारिकता, सूक्ष्म चिन्तन, जीवन की सत्यता के साथ-साथ कल्पना, सूक्ष्मदर्शी चेतना, संस्कृति, दर्शन एवं लालित्य के गुण दिखाई पड़ते हैं।

4.3.04. आलोचना

जिस प्रकार की पृष्ठभूमि से निबन्ध-लेखन का उदय हुआ था लगभग वैसी ही स्थितियों में साहित्य की यह यह विधा भी उभरकर आई । भारतेन्दु युग के समय हिन्दी साहित्य पर जो पाश्चात्य प्रभाव पड़ा उसके परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य लेखन नवीन मान्यताओं से परिचित हुआ और परम्परागत साहित्य संस्कारों में परिवर्तन होने लगा। फलस्वरूप साहित्य की अनेक विधाओं ने जन्म लिया। वे अधिक परिष्कृत रूप में सामने आने लगीं। आलोचना लेखन भी उनमें से एक है। आलोचना लेखन वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ ही बौद्धिकता का द्योतक भी है। भारतेन्दु युग में पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी आलोचनाएँ प्रकाशित हुईं। इन पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यकार पुस्तकों की समीक्षा लिखा करते थे, जिसमें वह पुस्तक के परिचय के साथ-साथ उसके विभिन्न पहलुओं पर भी प्रकाश डालते थे। दरअसल इस युग के साहित्य का आरम्भ ही बौद्धिक टकराहट, नवीन चेतना और तर्क-वितर्क के साथ हुआ था। भारतेन्दु युग के बाद द्विवेदी युग में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन अधिक हुआ और इस विधा में गम्भीरता आने लगी। अपनी पुस्तक 'हिन्दी का गद्य साहित्य' में डॉ॰ रामचन्द्र तिवारी हिन्दी समीक्षा-क्षेत्र की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार निर्दिष्ट करते हैं –

1. शास्त्रीय आलोचना
   (i) रीतिकालीन लक्षण ग्रन्थों की परम्परा में काव्यांग विवेचन।

(ii) नवीन दृष्टिकोण से सिद्धान्तों की स्थापना।

2. तुलनात्मक मूल्यांकन एवं निर्णय।
3. समीक्षा की नवीन व्यावहारिक पद्धति का विकास, व्याख्यात्मक आलोचना।
4. अन्वेषण एवं अनुसंधान पर समीक्षा।
5. प्राचीन व्यावहारिक आलोचना की अभिनव रूप व्याख्यात्मक टीकाएँ।
6. पाठालोचन एवं पाठानुसंधान।

रीतिकालीन लक्षण ग्रन्थों की परम्परा के समीक्षकों में लाला भगवानदीन-कृत 'अलंकार मंजूषा', अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'-कृत 'रसकलश', सीताराम शास्त्री-कृत 'साहित्य सिद्धान्त' आदि प्रमुख हैं। इन रचनाओं में भाषा व अलंकार के साथ-साथ हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास आदि लेखकों ने काव्यशास्त्रीय आलोचना को नवीन दृष्टिकोण से देखा। 'रसज्ञ रंजन' कृति में महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं – "चींटी से लेकर हाथीपर्यन्त, पशु भिक्षुक से लेकर राजापर्यन्त, बिन्दु से लेकर समुद्रपर्यन्त, जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत सभी पर कविता हो सकती है।" इन सभी रचनाकारों ने कविता में नये विषयों को चुने जाने की बात कही। सभी नवीन समीक्षा सिद्धान्तों की स्थापना के हिमायती थे और उन्होंने पाश्चात्य विचारकों की मान्यताओं का समन्वय भी भारतीय सिद्धान्त के साथ किया। बाबू श्यामसुन्दर दास अपनी कृति 'साहित्यालोचन' में कहते हैं – "मेरा दृष्टिकोण सर्वत्र और इसीलिए आलोचना में भी समन्वयवादी है। काव्य कला और साहित्य अंगों के विवेचन में मैंने इसी पद्धति को अपनाया है।" इसी प्रकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी नवीन समीक्षा सिद्धान्तों के हिमायती थे उन्होंने 'चिन्तामणि' में संस्कृत काव्यशास्त्र और पाश्चात्य आलोचना सिद्धान्त को सर्वथा मौलिक रूप में देख कर एक समन्वयपूर्ण आलोचनाशास्त्र को रचा। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आलोचना के क्षेत्र में गम्भीर और ज्ञानात्मक विश्लेषण किया। परम्परा और आधुनिकता में क्या रिश्ता हो सकता है और इसका समन्वित रूप कैसा होना चाहिए, जैसे प्रश्नों पर वे विचार करते थे। वर्तमान में हमारे सामने समाज का आज जो रूप दिखता है वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग के बाद निर्मित हुआ है। द्विवेदीजी की आलोचना दृष्टि पर उनके सांस्कृतिक नजरिए का प्रभाव था। वह मनुष्य के सामूहिक कल्याण को रचना का लक्ष्य मानते थे तो साथ ही आधुनिक वैज्ञानिकता भी उनकी आलोचना दृष्टि में दिखती है। द्विवेदी युग ही वह समय था जब अनेक भारतीय और पाश्चात्य भाषाओं से पाठक का परिचय हो रहा था और तुलनात्मक मूल्यांकन और निर्णय की प्रवृत्ति का विकास भी हो रहा था। इसी समय रचनाकारों में तुलनात्मक आलोचना का प्रचलन हुआ। इस क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा, मिश्रबन्धु, लाला भगवानदीन आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। द्विवेदी युग के बाद पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी ने स्वच्छन्दतावादी आलोचना की नींव डाली। उन्होंने पन्त, प्रसाद, निराला की समीक्षा सौन्दर्यबोधक मूल्यों के साथ की। शान्तिप्रिय द्विवेदी और डॉ॰ नगेन्द्र के नाम भी यहाँ उल्लेखनीय हैं। सन् 1936 में प्रगतिवादी लेखक संघ की स्थापना के बाद प्रगतिशील आलोचना जो कि कार्ल मार्क्स के चिन्तन से प्रभावित थी, शुरू हुई। सन् 1935 में शिवदानसिंह चौहान के लेख भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता से प्रगतिशील आलोचना की शुरुआत हुई। सन् 1940 में इलाचन्द्र जोशी ने 'साहित्य सृजन' लिखकर मनोवैज्ञानिक आलोचना पद्धति की शुरुआत की। डॉ॰ नगेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी जैसे आलोचकों ने

अपनी आलोचना कृतियों में मनोवैज्ञानिक तरीकों से रचनाओं का विश्लेषण किया। इसके बाद रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, चन्द्रबली सिंह, नामवर सिंह, शिवकुमार मिश्र आदि ने इसे समृद्ध किया। डॉ॰ रामविलास शर्मा-कृत 'निराला की साहित्य साधना', मुक्तिबोध-कृत 'एक साहित्यिक की डायरी' नामवर सिंह-कृत 'इतिहास और आलोचना', 'कविता के नए प्रतिमान', 'कहानी नई कहानी' आदि इस समय की प्रमुख रचनाएँ हैं। इस समय की रचनाओं ने आलोचना लेखन को वृहदाकार प्रदान किया और एक अति विशिष्ट विधा के रुप में स्थापित भी किया। इसके बाद पत्र-पत्रिकाओं में आयातित साहित्यिक सिद्धान्तों और विमर्शों का सिलसिला शुरू हुआ। 'हंस' जैसी पत्रिका में स्त्रियों और दलितों के मुद्दे उठाए गए। उत्तर आधुनिकता, उत्तर उपनिवेशवाद, विखण्डनवाद, संरचनावाद, अस्तित्व का संकट, आत्मनिर्वासन, नया प्रतीक विधान आदि समस्याओं पर विचार किया गया। डॉ॰ नगेन्द्र, बच्चन सिंह, विद्यानिवास मिश्र, राममूर्ति त्रिपाठी, शिवप्रसाद सिंह, मैनेजर पाण्डेय, दूधनाथ सिंह आदि कुछ ऐसे ही समीक्षक हैं जिन्होंने साहित्य चिन्तन के नये आयामों से साहित्य जगत् का परिचय करा कर हिन्दी आलोचना को विस्तार दिया।

4.3.05. व्यंग्य

व्यंग्य, प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में कहीं भी एक स्वतन्त्र विधा के रूप में दृष्टिगत नहीं होता। यदि हिन्दी साहित्य की परम्परा पर ध्यान दें तो पायेंगे कि अभिव्यक्ति के इस सशक्त माध्यम को कबीरदास, सूरदास और तुलसीदास ने अपने काव्य में बहुलता से प्रयोग किया है। कबीर अपने समय की कुरीतियों और दिखावे पर कटाक्ष करते हैं तो सूरदास गोपियों के माध्यम से उद्धव के ज्ञान की बखिया उधेड़ते हैं। गोपियों के व्यंग्य बाण से कृष्ण भी अछूते नहीं रह पाते। तुलसीदास यदा-कदा ही सही लेकिन व्यंग्य के माध्यम से अपनी बात को प्रभावशाली बनाते हैं। ऐसे अनेक अन्य उदाहरणों के बावजूद 'व्यंग्य' उपेक्षित ही रहा।

व्यंग्य एक ऐसी विधा है जिसमें व्यंग्यकार अपने तीक्ष्ण लेखन से उस विसंगति पर चोट करता है जो समाज के लिये सर्वथा अनुचित है। प्रसिद्ध आलोचक मेरीडिथ कहते हैं – "व्यंग्यकार, नैतिकता का ठेकेदार होता है। बहुधा वह समाज की गन्दगी की सफाई करने वाला होता है। उसका कार्य सामाजिक विकृतियों की गन्दगी को साफ करना होता है।" कबीर ने अपने काव्य के माध्यम से यही कार्य किया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि "व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठे। फिर भी कहने वाले को जबाब देना अपने आपको और अधिक उपहासास्पद बना लेना हो जाये।" व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई कहते हैं कि "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार कराता है जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है।" वास्तव में व्यंग्य एक ऐसी विधा है जो सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति करने का अचूक साधन है। व्यंग्य की धार और उसका पैनापन सूक्ष्म दृष्टि रखती है और चुन-चुन कर सबका पर्दाफाश करती है।

एक स्वतन्त्र विधा के रूप में व्यंग्य को आधुनिक युग में ही पहचान मिली। व्यंग्य लिखने की परम्परा भारतेन्दु के समय से आरम्भ हुई। देश की आजादी, तात्कालीन विसंगतियों और सामाजिक धार्मिक विषमताओं

को दिखाने के लिये साहित्यकारों ने इस विधा का सहारा लिया और इसके माध्यम से उन सभी बुराइयों की खिल्ली उड़ाई जो समाज को कमजोर कर रही थी। इसी तारतम्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' का स्मरण करना समीचीन होगा। यह उस दौर का महत्त्वपूर्ण व्यंग्य है। इसी प्रकार राधाचरण गोस्वामी का 'बूढ़े मुँह मुहाँसे' भी प्रसिद्ध व्यंग्य रचना है।

द्विवेदी युग में इस विधा पर कम ही काम हुआ फिर भी जी.पी. श्रीवास्तव, बेचन शर्मा 'उग्र' और बद्रीनाथ भट्ट आदि ने व्यंग्य लिखे। प्रेमचंद की कहानियों-उपन्यासों में भी व्यंग्य की प्रधानता दिख जाती है जब वे सामाजिक सरोकारों की बात करते हैं। व्यंग्य एक ऐसी विधा है जो साहित्य की अन्य विधाओं में अपनी सम्पूर्णता के साथ आई। जैसे – व्यंग्य कथा, व्यंग्य कविता, व्यंग्य नाटक आदि। छायावादी काल में तो निराला ने 'कुकुरमुत्ता' जैसी व्यंग्य कविता रची तो सामाजिक विसंगतियों से लबरेज 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' जैसे उपन्यास भी रचे। 'कुकुरमुत्ता' में तो वे स्पष्ट तौर पर पूँजीवाद पर चोट करते हुए कहते हैं –

खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है केपीटलिस्ट !

आधुनिक काल में व्यंग्य को स्वीकृति भी मिली और प्रतिष्ठा भी। हरिशंकर परसाई-कृत 'भोलाराम का जीव', 'वैष्णव की फिसलन', 'ज्वाला और जल' (उपन्यास), श्रीलाल शुक्ल-कृत 'रागदरबारी' (उपन्यास) बदीउज्जमा-कृत 'एक चूहे की मौत', शरद जोशी-कृत 'जीप पर सवार इल्लियाँ', 'रहा किनारे बैठि' आदि अनेक व्यंग्य रचनाएँ हैं जिन्होंने व्यंग्य विधा को नये आयाम दिये और पाठकों के बीच अपना विशिष्ट स्थान बनाया। शरद जोशी और हरिशंकर परसाई ने तो साहित्यिक मंचों, कवि गोष्ठियों आदि के माध्यम से भी इस विधा को ऊँचाई प्रदान की। श्रोताओं तक इनकी अपनी पहुँच थी। श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्य रचनाएँ भी अत्यन्त रोचक हैं। उनका उपन्यास 'राग दरबारी' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यंग्य रचना है।

व्यंग्य लेखन में नरेन्द्र कोहली, प्रेम जनमेजय, ज्ञान चतुर्वेदी, गोपाल चतुर्वेदी, हरीश नवल, शंकर पुणतांवेकर और सूर्यबाला के नाम उल्लेखनीय है। सूर्यबालाजी के संग्रह 'धृतराष्ट्र टाइम्स', 'देश-सेवा के अखाड़े में', 'भगवान् ने कहा था' आदि प्रमुख हैं। व्यंग्य लेखिकाओं की संख्या अल्प होने पर वे कहती हैं – "महिलाओं को बोलने की मनाही जो है। वरना महिलाओं के ताने कटाक्ष आदि निपुणता लिये होते हैं।" वे अपने साथ-साथ, राजनीति, साहित्यिक अवमूल्यन, मध्यमवर्गीय मानसिकता और मीडिया के अन्तर्विरोधी, किसी को भी नहीं छोड़तीं। इसी प्रकार नये व्यंग्य लेखकों में सुशील सिद्धार्थ, आलोक पुराणिक, गिरीश पंकज आदि के नाम भी महत्त्वपूर्ण हैं।

आज व्यंग्य एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है। यह एक रोचक और असरदायी विधा के रूप में फल-फूल रहा है जो बड़े ही चुटील-अंदाज में गहरी बात बोल सकने का साम्यर्थ रखता

है । व्यंग्य विधा साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है । 'व्यंग्य यात्रा' जैसी कई पत्रिकाएँ व्यंग्य-लेखन को पुष्पित-पल्लवित करने का काम कर रही हैं ।

4.3.06. रेखाचित्र

रेखाचित्र का अर्थ है – 'रेखाओं के माध्यम से चित्रांकन करना' । इसे शब्दचित्र या 'स्केच' भी कहा जाता है लेकिन एक स्वाभाविक-सा प्रश्न यह है कि आखिर साहित्य में रेखाचित्र का क्या उपयोग हो सकता है । वास्तव में रचनाकार साहित्यिक विधाओं से जुड़ी रचनाओं के भाव को शब्द रूप में आकार देता है तो पाठक उसे बिलकुल वैसे ही ग्रहण करता है जैसे किसी चित्रकार का चित्र हो । मूलतः रेखाचित्र, चित्र ही है जिसे साहित्यकार रेखाओं के नहीं बल्कि शब्दों के माध्यम से आकार देता है । रेखाचित्र की तीव्रता उसे विशिष्ट बनाती है । प्रो॰ रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं कि "रेखाचित्र में भी किसी व्यक्ति, वस्तु या सन्दर्भ का अंकन किया जाता है । यह अंकन पूर्णतः तटस्थ भाव से निर्लिप्त रहकर किया जाता है । रेखाचित्र में रेखाएँ बोलती हैं ।"

रेखाचित्रकार जब किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थान का विवरण दे रहा होता है तो निश्चित रूप से उसका उससे भावात्मक जुड़ाव होता है लेकिन उस भाव को केन्द्र में नहीं रखता बल्कि उस चरित्र को केन्द्र में रखकर तटस्थ भाव से अपनी रचना को आगे बढ़ाता है और उसे ज्यों का त्यों चित्रित कर पाठक के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत कर देता है कि वह पात्र, घटना और सन्दर्भ पाठक से गहरा परिचय जोड़ लेते हैं । महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में यह स्पष्टतः दिखता है । 'अतीत के चलचित्र' के सभी चरित्र चाहे वह 'रामा' हो या 'बिन्दा', 'साबिया' हो या 'बिट्टो' या दूर-दराज पर्वतीय और अभावग्रस्त क्षेत्र में शापित जीवन जीने को मजबूर 'लछमा' जीवन्त हो उठते हैं और पाठक से कहीं गहरे जुड़ जाते हैं । एक उदाहरण देखिए – "धूप से झुलसा मुख ऐसा जान पड़ता है जैसे किसी ने कच्चे सेब को आग की आँच पर पका लिया हो । सूखी-सूखी पलकों में तरल-तरल आँखें ऐसी लगती हैं, मानों नीचे आँसुओं के अथाह जल में तैर रही हों और ऊपर हँसी की धूप से सूख गयी हों। शीत सहते-सहते ओठों पर फैली नीलिमा, सम दाँतों की सफेदी से और भी स्पष्ट हो जाती है ।" महादेवी के रेखाचित्र इतने सशक्त हैं कि 'लछमा' एकदम वैसे ही हमारे समक्ष खड़ी हो जाती है, जैसी वह है ।

रेखाचित्र की आधार सामग्री है स्मृति । इन्हीं स्मृतियों का विस्तार, सूक्ष्म अंकन और जीवन्त वर्णन ही रेखाचित्र है । रेखाचित्र के विषय में महादेवी वर्मा के कथन को प्रो॰ चौथीराम यादव 'हिन्दी के श्रेष्ठ रेखाचित्र' में उद्धृत करते हैं । उनका कथन है कि – "चित्रकार अपने सामने रखी हुई वस्तु, व्यक्ति, या रंगहीन चित्र जब कुछ रेखाओं में इस प्रकार आँक देता है कि उसकी विशेष मुद्रा पहचानी जा सके तब उसे हम रेखाचित्र की संज्ञा देते हैं । साहित्य में भी साहित्यकार कुछ शब्दों में ऐसा चित्र अंकित कर देता है जो उस वस्तु या व्यक्ति का परिचय दे सके, परन्तु दोनों में अन्तर है ।"

डॉ॰ त्रिगुणायत रेखाचित्र को एक ऐसी विधा मानते हैं जिसमें चित्रकला और साहित्य दोनों का ही संयोग है । वे कहते हैं – "रेखाचित्र, चित्रकला और साहित्य के सुन्दर सुहाग से उद्भूत एक अभिनव कलारूप है ।

रेखाचित्रकार साहित्यकार होने के साथ ही साथ चित्रकार भी होता है। रेखाचित्र मनःपटल पर विशृंखल रूप में बिखरी हुई शत-शत स्मृति रेखाओं में उभरी हुई रमणीक रेखाओं को अपनी कला की तूलिका से सहानुभूति के रंग में रंजित कर जीते-जागते शब्द चित्र में परिणत कर देता है।"

रेखाचित्र की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

i. यह अधिकतर व्यक्ति प्रधान होता है और उस केन्द्रीय चरित्र को उद्घाटित करने के लिये सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दुओं पर फोकस किया जाता है।
ii. रेखाचित्रों में सम्वेदना के भाव की अधिकता होती है क्योंकि लेखक सीधे-सीधे उन चरित्रों से भावनात्मक रूप से जुड़ा होता है। महादेवी वर्मा के अतिरिक्त रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रकाशचन्द्र गुप्त, विष्णु प्रभाकर और हरिशंकर परसाई आदि भी अपने रेखाचित्रों में साधारण से साधारण पात्र के साथ सम्वेदना के स्तर पर जुड़ कर ही उसे प्रस्तुत करते हैं।
iii. इस विधा की एक अन्य विशेषता है स्मृति मूलकता। परिचित चरित्र, स्थान या वस्तु का पुनःस्मरण कर उसे रचना, महादेवी के लेखन में सर्वाधिक देखा जा सकता है। वे पशु-पक्षियों तक की यादों का ऐसा चित्र प्रस्तुत करती हैं कि वे अमर हो जाते हैं।
iv. प्रामाणिक अनुभव, तटस्थता, सघन पर्यवेक्षण और स्पष्ट उद्देश्य इसकी अन्य विशेषताएँ हैं।

डॉ॰ भगीरथ मिश्र लिखते हैं कि "शब्दचित्र का प्रमुख उद्देश्य चरित्र को सजीवता से स्पष्ट कर हृदय-परिष्कार, धारणा परिवर्तन, उदारता का विकास, लोक हृदय का निर्माण, न्याय के प्रति जागरूकता, चेतना, दुखियों के प्रति करुणा आदि के भाव जाग्रत् करना है। इस प्रकार प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण जीवन का आदर्श स्थापित करना और जीवन के वास्तविक रूपों और अनुभवों में रस लेना शब्दचित्र का मुख्य उद्देश्य है।"

गैर कथात्मक लेखन में रेखाचित्र एक महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में जाना जाता है। प्रारम्भ में यह विधा इतनी विकसित नहीं थी लेकिन धीरे-धीरे इस विधा को विस्तार मिला। माखनलाल चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, शिवपूजन सहाय, महादेवी वर्मा, हरिशंकर परसाई, राहुल सांकृत्यायन, काशीनाथ सिंह आदि महत्त्वपूर्ण रेखाचित्रकार हैं।

4.3.07. संस्मरण

संस्मरण का अर्थ है 'स्मरण' करना। वास्तव में व्यक्ति अपने अतीत को नहीं भूलता। यही यादें उसके वर्तमान की कड़ी होती हैं। वह उन यादों को दूसरों से बाँटता है जो एक तरह का 'मानसिक विरेचन' है। लेखक जो स्वयं देखता है, जिसका वह स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन संस्मरण में करता है। उसके वर्णन में उसकी अनुभूतियाँ व सम्वेदनाएँ बसी रहती हैं। स्मृति ही संस्मरण का रूप है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार "संस्मरण हमेशा तथ्यात्मक होते हैं। इसमें अतिरंजित तथ्य नहीं होते क्योंकि यह अपनी ही स्मृतियों का लेखा-जोखा है। वही घटनाएँ, वही पात्र हैं जिन्हें लेखक ने भूतकाल से संजोया हुआ है। रेखाचित्र और संस्मरण एक दूसरे से

मिलती जुलती विधा हैं। एक झीनी-सी विभाजन रेखा इनको अलग करती है।" बनारसीदास चतुर्वेदी कहते हैं – "संस्मरण, रेखाचित्र और आत्मचरित इन तीनों का एक दूसरे से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक की सीमा दूसरे से कहाँ मिलती है और कहाँ अलग हो जाती है, इसका निर्णय करना कठिन है।" (संस्मरण, पृष्ठ 4)

हिन्दी में संस्मरण लेखन की शुरुआत बीसवीं शताब्दी में हुई। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'अनुमोदन का अन्त' और 'सभा की सभ्यता' जैसे संस्मरण लिखे तो बालमुकुन्द गुप्त ने'प्रतापनारायण मिश्र' सम्बन्धी प्रसिद्ध संस्मरण लिखे। इस युग में 'सरस्वती' पत्रिका में ढेरों संस्मरण छपे जिसमें अनेक महत्त्वपूर्ण लेखकों के संस्मरण थे। यह स्वयं में एक बड़ी उपलब्धि थी। 'सरस्वती' के अतिरिक्त 'विशाल भारत', 'सुधा' और 'माधुरी' जैसी पत्रिकाओं में संस्मरण प्रमुखता से प्रकाशित हुए। 'हंस' पत्रिका का प्रेमचंद स्मृति अंक भी संस्मरण साहित्य की धरोहर है। बनारसीदास चतुर्वेदी, कामताप्रसाद गुरु, वृन्दावन लाल वर्मा आदि प्रमुख संस्मरण लेखक थे जिन्होंने अन्य लेखकों से सम्बन्धित संस्मरण लिखे हैं।

संस्मरण लेखन में महादेवी वर्मा की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही । 'पथ के साथी' रचना में उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, प्रसाद, पन्त और निराला पर संस्मरण लिखे हैं। राहुल सांकृत्यायन-कृत 'बचपन की स्मृतियाँ', 'जिनका मैं कृतज्ञ हूँ' तथा 'मेरे असहयोग के साथी' संस्मरण प्रमुखहैं। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की प्रसिद्ध पुस्तक 'मंटो मेरा दुश्मन' जिसमें उन्होंने मंटो के चरित्र को बड़ी ही कुशलता से रचा है। 'अश्क' कहते हैं – "मंटो जिस तरह पीटना जानता था, लेकिन पिटना नहीं, पढ़ाना जानता था लेकिन पढ़ना नहीं, उसी तरह मजाक करता था पर मजाक बर्दाश्त करने की शक्ति उसमें नहीं थी, उसे बड़ी जल्दी गुस्सा आता था।"

सुप्रसिद्ध लेखक विष्णु प्रभाकर का संस्मरण-लेखकों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। घनश्यामदास बिड़ला ने 'गाँधीजी की छत्रछाया' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने गाँधीजी के सम्बन्ध में, उनके राजनैतिक और सामाजिक जीवन के विषय में लिखा। यह गाँधीजी पर लिखा गया महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। बिड़ला, गाँधीजी को बहुत करीब से जानते थे। एक जगह वे लिखते हैं कि – "वे जरा-जरा सी बात में व्यक्तिगत रूप से दिलचस्पी रखते थे ठीक वैसे ही जैसे कोई पिता अपनी सन्तान के कार्यकलाप में रस लेता है।" संस्मरणों के विकास में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, जगदीशचन्द्र माथुर, शिवपूजन सहाय, रामधारी सिंह दिनकर, विष्णुकान्त शास्त्री, रामदरश मिश्र आदि की भूमिका महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

वर्तमान साहित्य लेखन में संस्मरण एक महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में स्वीकार्य है। वर्तमान में संस्मरण लेखन का प्रचलन भी बढ़ा है। इस विधा में लिखने की प्रवृत्ति लगभग सभी रचनाकारों में देखी गई है। कुछ चर्चित संस्मरणों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

विष्णु प्रभाकर-कृत 'याद हो कि न याद हो' और 'कुछ शब्द कुछ रेखाएँ' चर्चित संस्मरण संग्रहहैं। 'कुछ शब्द कुछ रेखाएँ' संग्रह में नेताओं से लेकर सामान्य जन के स्मृति-प्रसंगों को लिखा गया है। देशी-विदेशी समाज और संस्कृति पर रोचक एवं सूचनात्मक प्रसंगों को समेटा गयाहै। भाषा की दृष्टि से भी यह महत्त्वपूर्ण है।

पण्डित विद्यानिवास मिश्र अपने संस्मरणों में गाँव से लेकर गोरखपुर, दिल्ली और अमेरिका समेत कई-कई स्थानों की स्मृति को संजोते हैं। इनके संस्मरण रोचक और सूचनात्मक तो हैं ही साथ ही इनसे उनके जीवन, उनके अपने व्यक्तित्व और प्रकृति का भी परिचय भी मिलता चलता है। पण्डित विद्यानिवास मिश्र के इस संस्मरण में ऐसा प्रवाह है जो पाठक को अपनी लय में लयबद्ध कर देता है।

डॉ॰ रामदरश मिश्र के संस्मरण ग्रन्थ हैं – 'स्मृतियों के छन्द, 'अपने-अपने रास्ते' और 'एक दुनिया अपनी'। 'स्मृतियों के छन्द' में बचपन और गाँव के उन मित्रों और गुरुओं को वे याद करते हैं जिन्होंने उनको बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। एक ओर जहाँ वे अपने गाँव के शिक्षक को याद करते हैं तो वहीं दूसरी ओर साहित्य जगत् के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षरों पर भी अपनी स्मृति की कलम चलाते हैं। इनके संस्मरणों में सघन आत्मीयता का भाव मिलता है।

कथाकार काशीनाथ सिंह ने जहाँ उपन्यास, कहानियों, आलोचना आदि का सृजन किया वहीं संस्मरणों पर भी अपनी लेखनी खूब चलाई है। 'आछे दिन पाछे गये', 'रहना नहीं देस बिराना है', 'इक्कीसवीं सदी के देश का सफर' शीर्षक से लिखे गये इनके संस्मरण बेबाक और बेजोड़ हैं। संस्मरण लिखने की काशीनाथ सिंह की अपनी ही शैली है। उनके विषय में राजेन्द्र यादव लिखते हैं – "उनकी बेबाकी, निडरता, मजाक और स्थानीय लोकशक्ति बिलकुल एक नये काशी से हमारा परिचय कराती है।" और यह सच ही है कि अपने विभाग के चरित्र का खुलासा करते वे कभी हिचकिचाते नहीं तभी तो 'आछे दिन पाछे गये' पुस्तक में काशीनाथ सिंह लिखते हैं – "जब मैं याद करता हूँ इस नगर को यह 'मुगले आजम' फिल्म के अकबर की तरह मेरी आँखों के सामने खड़ा, तमतमाया हुआ, झाँकता, हाँफता नज़र आता है। ..... यह अकबर और कोई नहीं हिन्दी विभाग था और सलीम मेरा अस्सी।" इसी तरह वे अपनी जापान-यात्रा के विषय में अपनी स्मृति साझा करते हुए वहाँ की कुत्सित कामना और बाह्य सौन्दर्य में लिप्त धनलोलुप और सम्वेदनाशून्य वृत्ति को पाठकों तक पहुँचाते हैं।

कृष्णा सोबती का 'हम हशमत' अपने ही ढंग की संस्मरणात्मक रचना है। पद्मा सचदेव का 'अमराई' बिन्दु अग्रवाल की पुस्तक 'यादें और बातें', विश्वनाथ त्रिपाठी कृत 'गंगा स्नान करने चलोगे' आदि संस्मरण साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

वास्तव में संस्मरण अपेक्षाकृत नयी एवं लोकप्रिय विधा है जो साहित्यकारों एवं शीर्ष व्यक्तियों के व्यक्तित्व पर प्रकाश तो डालती ही है साथ ही पाठक को उन स्थानों और घटनाओं तक पहुँचा देती है जहाँ लेखक अपनी स्मृतियों के माध्यम से पहुँचता है और उसे अपनी कलम से उतारता चलता है।

4.3.08. जीवनी

कथेतर साहित्य लेखन परम्परा में जीवनी लेखन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जीवनी लेखन में किसी व्यक्ति-विशेष का चित्रण किया जाता है जो अपनी सभी कमियों और गुणों के साथ सम्पूर्ण तरीके से पाठक के समक्ष उभर कर आता है। जीवन का सम्पूर्ण लेखा-जोखा ही जीवनी है। इस विधा में किसी के व्यक्तित्व के आन्तरिक और बाह्य दोनों ही पक्षों की चर्चा होती है। अंग्रेजी में जीवनी को 'बायोग्राफी' कहा जाता है।

हिन्दी साहित्य में जीवनी-लेखन नई विधा है। यद्यपि संस्कृत साहित्य में यह परम्परा काफी पहले से रही है। हर्षचरित, बुद्धचरित, दशचरित आदि जीवनचरित ही हैं। इन चरित लेखनों में राजा-महाराजाओं के साथ-साथ महापुरुषों का जीवन केन्द्र में होता था। जीवनी किसी भी व्यक्ति की लिखी जा सकती है चाहे वह साधारण व्यक्ति ही क्यों न हो, लेकिन जीवनी-लेखन का एक उद्देश्य होना आवश्यक है। जीवनी पढ़कर हम व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ-साथ उसके परिवेश और समाज तथा उसके जीवन से जुड़े प्रेरक-प्रसंगों एवं उसके रहन-सहन आदि से भी परिचित होते हैं। जीवनी-लेखन इसलिये भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह कल्पना नहीं बल्कि यथार्थ होता है। यह वास्तविक व्यक्ति के जीवन से जुड़ा दस्तावेज है इसलिये उस पर आधारित जानकारियों को स्वयं ही विश्वसनीय और प्रामाणिक माना जाता है। जीवनी-लेखक जिसकी जीवनी लिख रहा होता है उसके सभी पक्षों को एक साथ चित्रित करता है इसलिये इसमें गुणों और अवगुणों दोनों का ही समावेश होता है। डॉ० रामविलास शर्मा 'निराला' की जीवनी लिखते समय उनकी अच्छाइयों के साथ उनके अटपटे व्यवहार को भी कुशलता से उकेरते हैं।

हिन्दी जीवनी-लेखन परम्परा भी भारतेन्दु युग से ही मानी जाती है। यह वह समय था जब तमाम नवीन विधाओं ने जन्म लिया। भारतेन्दु ने भी 'चरितावली', 'बूँदी का राजवंश', 'उदयपुरोदय' आदि जीवनियाँ लिखीं। यद्यपि भारतेन्दु युग जीवनी-लेखन का शैशवकाल था फिर भी इस समय पर्याप्त मात्रा में जीवनियाँ लिखी गयीं। द्विवेदी युग में इसका विकास हुआ और दयानन्द सरस्वती, गाँधीजी, मदनमोहन मालवीय, दादा भाई नौरोजी, अहल्याबाई आदि की जीवनियाँ लिखी गयीं जो बहुत चर्चित हुईं। लेकिन गाँधीजी पर लिखी गयी जीवनियाँ खासकर 'रोमां रोलां' द्वारा लिखित एवं हिन्दी में अनूदित 'महात्मा गाँधी : विश्व के अद्वितीय पुरुष' बहुत चर्चित रही।

राहुल सांकृत्यायन का जीवनी साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान है। वे कई भाषाओं के ज्ञाता थे। उनका अनुभव क्षेत्र बहुत व्यापक था। उन्होंने अनेक देशों की यात्रा की थी और अनेक लोगों से मिले थे। उन्होंने 'कार्ल मार्क्स', 'लेनिन', 'स्टालिन' आदि की जीवनियाँ लिखकर उन्हें भारतीय समाज से परिचित करवाया। शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय पर लिखी गई 'आवारा मसीहा' (विष्णु प्रभाकर), 'कलम के सिपाही' (अमृत राय), 'प्रेमचंद घर में' (शिवरानी देवी), पहला गिरमिटिया (गिरिराज किशोर), निराला की साहित्य साधना (रामविलास शर्मा) आदि प्रसिद्ध जीवनियाँ हैं।

जीवनी-लेखन एक समृद्ध विधा के रूप में विकसित हो चुका है । सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, खेल एवं फिल्मी जीवन से सम्बन्धित व्यक्तियों की जीवनियाँ लगातार लिखी जा रही हैं। इन जीवनियों के माध्यम से अलग-अलग क्षेत्रों से जुड़े व्यक्तियों के साथ हम उनके जीवन के अनछुए पहलुओं को जान पाते हैं। ये ऐतिहासिक दस्तावेज तो बनते ही हैं, हमें कुछ सीख भी दे जाते हैं। जीवनी पढ़ते हुए पाठक अनायस ही उस क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है जहाँ से उसका सम्बन्ध दूर-दूर तक नहीं होता। वास्तव में जीवनी व्यक्ति, समाज, परिवेश और तत्कालीन समय को समझने की सर्वोत्तम विधा है।

4.3.09. आत्मकथा

आत्मकथा का अर्थ है अपने बारे में कथन या अपनी कहानी। आत्मकथा, जीवनी एवं संस्मरण लगभग मिलती-जुलती विधा हैं लेकिन इनमें सूक्ष्म भेद भी से ये पृथक् विधाएँ हैं। जब कोई व्यक्ति अपनी कथा कहता है तो वह आत्मकथा कहलाती है लेकिन जब कोई अन्य व्यक्ति किसी अन्य के विषय में लिखता है तो वह जीवनी होती है। चूँकि जीवनी का लेखक कोई दूसरा होता है तो हो सकता है कि वह उतनी प्रामाणिक न हो जितनी आत्मकथा। आत्मकथा में रचनाकार अपने विषय में लिखता है इसलिए वह अपने विषय में जो कहेगा वह सत्य ही होगा, ऐसा माना जा सकता है। आत्मकथा कभी भी पूर्ण नहीं होती क्योंकि आत्मकथा-लेखक अपने अन्तिम दिन का विवरण इसमें प्रस्तुत नहीं कर सकता जबकि जीवनी जन्म से लेकर मृत्यु तक का विवरण है। आत्मकथा लेखन कठिन कार्य है इसमें साहस एवं सत्यनिष्ठता की आवश्यकता होती है। आत्मकथा लेखक जब स्वयं को आलोचनात्मक नजरिये से देखेगा तभी सत्य विवरण दे सकेगा। इसमें लेखक को तटस्थ होना पड़ेगा। अपनी सफलता-असफलता, गुण-दोष, कमजोरी व मजबूत पक्ष को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर पाना सरल कार्य नहीं है। गाँधीजी की आत्मकथा 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' में गाँधीजी अपनी कमजोर वासनात्मक वृत्तियों की चर्चा भी करते हैं और स्वयं को धिक्कारते भी हैं। जीवन की दुर्बलता, सबलता और विषमता का अच्छा उदाहरण है 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग।' बाबू राजेन्द्र प्रसाद श्रेणीबद्ध तरीके से अपनी आत्मकथा लिखते हैं जिसमें वे उस समय की घटनाओं और आन्दोलनों आदि में अपनी सहभागिता के विषय में बताते हैं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपनी जीवनगाथा में बड़ी ही बेबाकी से अपने जीवन की व्यक्तिगत बातें लिखी हैं। आत्मकथा लिखने की शर्त ही यह है कि लेखक अतीत की स्मृतियों को याद करते हुए बड़ी तटस्थता और ईमानदारी के साथ घटनाओं को लिपिबद्ध करे तभी वह प्रामाणिक होगी। आत्मकथा ऐसी साहित्यिक विधा है जिसमें पाठक सीखता चलता है इसलिये इसमें मूल्यों का होना भी आवश्यक है।

यदि देखा जाय तो पहली आत्मकथा 'बाबरनामा' को कहा जा सकता है किन्तु यह हिन्दी भाषा में नहीं लिखी गई। इसका हिन्दी अनुवाद बाद में हुआ। हिन्दी की पहली आत्मकथा बनारसीदास कृत 'अर्धकथानक' को माना जाता है।

आत्मकथा एक महत्त्वपूर्ण विधा है क्योंकि इसको सच्चा दस्तावेज माना जा सकता है और जब लेखक इसे स्वयं ही लिख रहा है तो इससे अधिक प्रामाणिक भला और क्या हो सकता है। भगवतीचरण वर्मा कहते हैं –

"अपनी कहानी कहते समय सत्य को दबाने और झूठ को उभारने की प्रवृत्ति मनुष्य में अक्सर आ जाया करती है।" लेकिन उन्होंने अपनी आत्मकथा में अपने संघर्षों, अभावों और सफलताओं को बड़ी सच्चाई के साथ स्वीकारा है। जबकि प्रेमचंद ने 'हंस' का जो 'आत्मकथा' विशेषांक निकाला वह उतना सफल नहीं हो सका था क्योंकि रचनाकार अपनी छवि के प्रति सचेत रहे और उतना साहस नहीं दिखा पाये जितना एक आत्मकथा लेखक से अपेक्षित होता है।

प्रसिद्ध साहित्यकार विष्णु प्रभाकर ने तीन खण्डों में प्रकाशित अपनी आत्मकथा ('पंखहीन', 'मुक्त गगन में' और 'पंछी उड़ गया') में अपनी ज़िंदगी के उतार-चढ़ाव के साथ-साथ भारतीय समाज और हिन्दी साहित्य में आये परिवर्तनों के बारे में भी लिखा है। हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा के खण्डों 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड़ का निर्माण फिर', 'बसेरे से दूर' और 'दशद्वार से सोपान तक' (चार खण्डों में प्रकाशित) में अपने मानसिक संघर्षों एवं भौतिक जीवन का तथ्यात्मक ब्यौरा दिया है। इसी प्रकार कमलेश्वर की आत्मकथा तीन खण्डों में प्रकाशित है जिसमें उन्होंने अपने व्यापक जीवनानुभवों की जानकारी दी है। उन्होंने अपने राजनैतिक जीवन से लेकर निजी जीवन, दूरदर्शन, फिल्म जगत्, पत्रकारिता एवं लेखकीय जीवन आदि को सच्चाई के साथ उकेरा है।

किसी की आत्मकथा पढ़ते समय हम उस समय की सांस्कृतिक, साहित्यिक और लेखक से जुड़ी परिस्थितियों से परिचित होने के साथ ही उसके संसार में प्रवेश कर जाते हैं। दलित लेखक सूरजभान चौहान का 'तिरस्कृत' और 'संतप्त' में वे दलित मानसिकता से साक्षात्कार कराते हैं। उच्च दलित वर्ग के बीच की दूरी को दिखाते हुए सूरजभान सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थितियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे' (दो खण्ड), श्योराजसिंह की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' आदि ने दलित जीवन की पीड़ाओं को उजागर किया है। आत्मकथाओं में एक युग की आवाज होती है और इनके पठन से हम उससे रूबरू होते हैं। दरअसल आत्मकथा एक सांस्कृतिक इतिहास है जिसके माध्यम से पाठक उस काल को समझ पाता है। आत्मकथाकार चाहे अपने बारे में ही बोल रहा हो लेकिन इतिहास, अनुभव, मनोरंजन, जानकारियाँ और सम्वेदनाएँ उसमें भी अन्तर्निहित होती हैं। जिनसे पाठक स्वतः ही एक तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

4.3.10. नवाचार : साहित्य में नवाचार

नवाचार से अभिप्राय है 'नवीन प्रयोग'। साहित्य में समय-समय पर नये प्रयोग होते रहे हैं। भारतेन्दुकाल नवाचारों का युग कहा जा सकता है। साहित्य में उस नयी-नयी विधाओं ने जन्म लिया। कुछ पुरानी विधाएँ नये कलेवर के साथ साहित्य में उतरीं और पुष्पित-पल्लवित हुईं। उसके बाद से ही साहित्य में निरन्तर प्रयोग होते रहे हैं। नयी कहानी, नई कविता आदि का दौर शुरू हुआ। नवीन शिल्प और वर्ण्यविषय यहाँ तक कि लेखन की भाषा में भी बदलाव आया। विवादों और तर्कों का वातावरण बना लेकिन इन सबने मिलकर साहित्य को समृद्ध ही किया।

इसी समय साहित्य में नयी कथेतर विधाओं ने जन्म लिया। इंटरनेट के आधुनिक युग में तो साहित्य सहजता से सबको हासिल होने लगा है। गद्य-गीत, लघुकथा, नयी कहानी के साथ-साथ इससे इतर विधाएँ आयीं जिनमें डायरी, यात्रा-वृत्तान्त, रिपोर्ताज, पत्र, साक्षात्कार आदि प्रमुख हैं। केरी केचर और एकालाप लेखन को भी नवाचार कहा जाएगा। यद्यपि ये अधिकता से नहीं लिखे गये लेकिन फिर भी साहित्य में यह प्रयोग हुआ है। लेखकों ने अपनी अभिव्यक्ति को आकार देने के लिये इस तरह की विधाओं का सहारा लिया या इन विधाओं का आविष्कार किया। साहित्य जगत् में इनको स्वीकृति मिलती चली गयी। ऐसा भी होता है कि कभी-कभी तो लेखक लिखता चला जाता है जिसमें वह अपने अनुभव, पीड़ा, सामाजिक पीड़ा, विसंगतियाँ, नैतिकता, मूल्य आदि अनेक विषयों को समेटता चलता है लेकिन अपने लेखन को किसी भी विधा के अन्तर्गत नहीं रख पाता। चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा अपनी चार पुस्तकों ('आँचलिक रेखाचित्र', 'साहित्य निर्माताओं के गाँव', 'धूल भरे हीरे' और 'संस्कृति के प्रहरी') के विषय में स्वयं ही कहते हैं – "अपने इन लेखों को फीचर्स कहूँ, शब्दचित्र कहूँ, 'चित्रनिबन्ध' कहूँ या विचित्र निबन्ध कहूँ। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या कहूँ। पाठक जो नाम देना चाहें, दे दें।" दरअसल साहित्य की लगभग सभी विधाओं के बीच एक बड़ी महीन-सी रेखा है जो इन विधाओं को पृथक् करती है लेकिन एक दूसरे में इनकी आवाजाही निरन्तर बनी रहने की गुंजाइश रहती है। लेखक किसी एक विधा में नहीं लिखता है बल्कि वह अपनी अभिव्यक्ति को रूप देता चलता है। विधाओं को शृंखलाबद्ध करने वाला लेखक ही है। यहाँ कुछ नवाचारों के विषय में संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है।

4.3.10.1. रिपोर्ताज

फ्रेंच से आये इस शब्द रिपोर्ताज को हिन्दी साहित्य में नवाचार के रूप में देखा जा सकता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में 'रिपोर्ताज' को स्वतन्त्र विधा के रूप में स्वीकारा गया है। 'रिपोर्ताज' 'रिपोर्ट' का ही विस्तृत रूप है। 'रिपोर्ट' में बात या घटना को ज्यों का त्यों रख दिया जाता है जबकि रिपोर्ताज में थोड़े रोचक विश्लेषण के साथ विस्तार किया जाता है। उसमें उत्पन्न रोचकता के कारण वह पठनीय हो जाता है। कोई भी रिपोर्ताज घटना स्थल पर उपस्थित हुए बगैर नहीं लिखा जा सकता क्योंकि कहीं से सुनकर लिखे गये ब्यौरे में न ही विश्वसनीयता रहेगी और न ही प्रत्यक्ष दर्शन का आनन्द। रिपोर्ताज तभी प्रभावी होता है जब रचनाकार घटना का प्रत्यक्षदर्शी हो और अपनी सम्वेदनाओं को उससे जोड़ पाए। धर्मवीर भारती, फणीश्वरनाथ रेणु आदि रचनाकारों ने घटना-स्थल पर जाकर उन तथ्यों, घटनाओं से स्वयं को जोड़ा और विशिष्ट कृतियों का सृजन किया।

'रिपोर्ताज' में अकाल, प्राकृतिक आपदाएँ, क्रान्ति, आन्दोलन और युद्ध आदि महत्त्वपूर्ण घटनाओं को लिखा जाता रहा है। धर्मवीर भारती के रिपोर्ताज 'युद्धयात्रा' में बांग्लादेश के युद्ध से सम्बन्धित रिपोर्ताज संकलित हैं जिनको उन्होंने स्वयं युद्ध के समय बांग्लादेश जाकर लिखा था। फणीश्वरनाथ रेणु का 'ऋणजल धनजल' भी इसी तरह लिखा गया जिसमें उन्होंने 1966 के बिहार के सूखे और 1967 की विनाशकारी बाढ़ का सजीव चित्रण किया है।

वास्तव में रिपोर्ताज पत्रकारिता से सम्बन्धित विधा है लेकिन यह अल्पजीवी विधा नहीं है क्योंकि इसमें 'रिपोर्टर' रचनाकार बन जाता है और इसमें जानकारियों के साथ लालित्य उत्पन्न कर उसे साहित्य की विधा बना देता है। रिपोर्ताज देखा और भोगा हुआ यथार्थ है जिसमें लेखक की सम्वेदनाएँ भी शामिल रहती हैं। हिन्दी साहित्य में रिपोर्ताज विधा में निरन्तर लेखन कार्य किया जा रहा है।

4.3.10.2. डायरी

'डायरी' आधुनिक हिन्दी साहित्य की नवीन विधा है। यूरोप में डायरी साहित्य-लेखन काफी पहले से प्रचलित था। वास्तव में डायरी नितान्त व्यक्तिगत होती है जिसमें लेखक अपने रोज़मर्रा के सुख-दुःख, जीवन अनुभव और घटनाओं आदि का उल्लेख करता है जिनको वह सार्वजनिक नहीं करना चाहता। हो सकता है कि डायरी में लेखक ने बहुत-सी अप्रिय या दूसरों के हृदय को दुखी करने वाले भी प्रसंग लिखे हों। डायरी में लेखक द्वारा दिये गए लेखे-जोखे के साथ अधिकतर स्थान एवं दिन भी अंकित रहता है जो इसे विश्वसनीय बनाता है। यद्यपि डायरी में आत्मलेखन होता है लेकिन फिर भी उस काल की परिस्थितियों, अभिरुचियों, जीवन-चर्या आदि की जानकारी इसमें समाहित होती है जैसे मोहन राकेश की डायरी में उनके अन्तर्द्वन्द्व हैं लेकिन तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों की झलक भी इसमें अन्तर्निहित है।

धीरेन्द्र वर्मा की 'मेरी कॉलेज डायरी' चार खण्डों में विभाजित है जिसमें लेखक के व्यक्तिगत जीवन अनुभवों के अतिरिक्त उस समय स्वतन्त्रता के लिये हो रहे आन्दोलनों की ध्वनि भी सुनाई पड़ती है। 'दिनकर की डायरी' में साहित्यिक और सामाजिक दोनों ही तरह के सन्दर्भ मिलते हैं। साहित्य के साथ-साथ राजनैतिक परिवेश में भी दिनकर की अच्छी खासी घुसपैठ थी। राजनेताओं और साहित्यकारों दोनों से ही उनका मेल-जोल रहा था इसलिये उनकी डायरी में दोनों पृष्ठभूमियों का होना स्वाभाविक है।

हरिवंश राय बच्चन ने अपने इंग्लैंड प्रवास के दौरान डायरी लिखी, जिसमें उन्होंने वहाँ के जीवन, इंग्लैंड विश्वविद्यालय की गतिविधियों, अंग्रेजी साहित्य एवं वहाँ की साहित्यिक गतिविधियों का वर्णन कियाहै।

डायरी लेखन साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है जो सच्चाई के साथ प्रामाणिक सूचना समेटे हुए होती है। अपनी डायरी के आरम्भ में हरिवंश राय बच्चन लिखते हैं कि – "प्रायः डायरियाँ प्रकाशित करने के ध्येय से नहीं लिखी जाती, पर जब वे प्रकाशित होती हैं तो उसमें स्वाभाविकता, सच्चाई, सरलता और सजीवता का वह गुण पाया जाता है जिसके लिये सचेत साहित्य झक मारता है। जीवन का सीधा सम्पर्क अभिव्यक्ति को जो सप्राणता और जीवन्तता प्रदान करता है वह किसी भी साहित्यिक तकनीक से साध्य नहीं।" वास्तव में आज के दौर में जब जीवन बहुरंगी हो चला है ऐसे में डायरी लेखन ही सत्यता के निकट ले जाने वाली विधा है।

4.3.10.3. साक्षात्कार

आमतौर पर जब हम किसी साहित्यकार की कृति को पढ़ते हैं तो कहीं न कहीं उसके व्यक्तित्व की झलक उस पर दिख पड़ती है लेकिन वह स्पष्ट नहीं होती। किसी लेखक या रचनाकार का आकलन उसकी कृतियों को पढ़ने के माध्यम से करना और साक्षात्कार के माध्यम से करने में अन्तर है। साक्षात्कार हमें उसे रचनाकार के आमने-सामने कर देता है और रचनाकार को हम अधिक निकटता से जान पाते हैं। साक्षात्कार हमें व्यक्ति के विचारों से पूर्णतः अवगत कराता है।

4.3.10.4. पत्र साहित्य

पत्र सभी के जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। यद्यपि पत्र लम्बे समय से लिखे जाते रहे लेकिन साहित्य में इसको एक विधा के रूप में आधुनिक काल में ही स्वीकारा गया। पत्र विचारों या सूचनाओं के सम्प्रेषण का माध्यम है इसलिये इसका महत्त्व निजी जीवन के साथ-साथ सरकारी या गैर सरकारी कार्यों में भी है। व्यक्तिगत पत्रों का विशेष महत्त्व होता है क्योंकि यह लिखने वाले और पढ़ने वाले दोनों की भावनाओं के नजदीक होता है। व्यक्तिगत पत्र में भाव सहज और स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त होते हैं। पत्र कृत्रिमता से परे होते हैं। यही कारण है कि विशिष्ट व्यक्तियों के पत्रों को साहित्य में एक विधा के रूप में स्वीकारा गया है।

हिन्दी के लेखकों ने अन्य साहित्यकारों के साथ पत्र व्यवहार किया। उन्होंने तत्कालीन साहित्यिक परिवेश, रचनाओं और अन्य स्थितियों का सहज वर्णन पत्र के माध्यम से एक दूसरे के साथ किया और ये पत्र उनकी दृष्टि को समझने में सहायक सिद्ध हुए। महर्षि दयानन्द, जवाहरलाल नेहरू, प्रेमचंद, निराला, मुक्तिबोध, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर, गिरिजा कुमार माथुर, त्रिलोचन आदि अनेक रचनाकारों के पत्र छपे और बहुचर्चित हुए।

रामविलास शर्मा ने 'कवियों के पत्र' नामक संग्रह में पत्रों को प्रस्तुत किया। हिन्दी के ख्यातनाम कवियों के साथ हुए पत्राचार को उन्होंने संगृहीत किया। यह संग्रह महत्त्वपूर्ण है। रामविलास शर्मा मानते हैं कि – "पत्र भी हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिये महत्त्वपूर्ण हैं।"

पत्र-साहित्य साहित्य में नवाचार के रूप में उभरा है। आज बहुत से विश्वविद्यालय और प्रकाशक पुराने लेखकों के पत्रों को संगृहीत करने में जुटे हैं ताकि उनका प्रकाशन हो और वे सबके लिये सुलभ हो सकें। इससे पाठकों को रचनाकारों की रचना-प्रक्रिया, उनकी दृष्टि, संस्कृति और उनके जीवन के विषय में जानकारी प्राप्त हो सकेगी। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा द्वारा 'चिट्ठियों की दुनिया' नाम से ऐसा ही एक पत्र संग्रह प्रकाशित किया गया है।

4.3.11. पाठ सार

इस इकाई में विद्यार्थियों को कथेतर साहित्य के साथ साहित्य में हुए नवाचारों के विषय में जानकारी मिली। इसके द्वारा विद्यार्थी निबन्ध, आलोचना, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा आदि के विषय में और नवाचार जैसे, फ़ीचर, रिपोर्ताज, पत्र लेखन, डायरी लेखन आदि के विषय में विस्तार से जान सके। कथेतर साहित्य भी कथा साहित्य के समान महत्त्वपूर्ण और रोचक होता है क्योंकि दोनों के बीच गहरी साझेदारी होती है। दोनों ही एक दूसरे से किसी न किसी स्तर पर जुड़े हुए हैं साहित्य के विकसित होने के साथ-साथ नयी-नयी विधाएँ जन्म लेती रहेंगी और पुष्पित-पल्लवित होकर साहित्य को सम्पन्न करती रहेंगी।

4.3.12. बोध प्रश्न

अभ्यास

1. निम्नलिखित कथनों में सत्य / असत्य कथन की पहचान कीजिए –

i. 'नवजागरण' से आशय है कि परम्परागत तौर तरीकों और लेखन का समर्थन करना।
ii. भारतेन्दु युग में सर्वाधिक निबन्धों की रचना हुई और यह विधा इस काल में ऊँचाईयों पर पहुँची।
iii. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल नवीन समीक्षा सिद्धान्तों की स्थापना के हिमायती थे।
iv. कोई आवश्यक नहीं कि रेखाचित्रकार तटस्थता के साथ रेखाचित्र लिखे। आवश्यकतानुसार तथ्य को बढ़ा-चढ़ा कर लिखा जा सकता है।
v. जीवनी और आत्मकथा एक ही विधा मानी जा सकती है।

2. कोष्ठक में दिये गए विकल्पों का उपयोग करते हुए अधोलिखित वाक्यों के रिक्त स्थान भरिए –

i. डायरी नितान्त ..... है। (सार्वजनिक / व्यक्तिगत)
ii. 'ऋणजल-धनजल' फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा ..... विधा में लिखी गई कृति है। (रिपोर्ताज / आलोचना)
iii. संस्मरण से आशय है – .....। (आत्मकथा कहना / स्मरण करना)
iv. सूर्यबाला द्वारा लिखित 'धृतराष्ट्र टाइम्स' ..... विधा में लिखा गया है। (यात्रा-वृत्तांत / व्यंग्य)
v. 'सत्य के मेरे प्रयोग' ..... द्वारा लिखी गई आत्मकथा है। (महात्मा गाँधी / जवाहरलाल नेहरू)

टिप्पणी लिखिए –

1. डायरी
2. साक्षात्कार
3. पत्र-साहित्य
4. रेखाचित्र
5. आत्मकथा

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कथेतर साहित्य में किन-किन विधाओं को परिगणित किया जाता है ?
2. कथेतर साहित्य कथा साहित्य से किस प्रकार भिन्न है ?
3. कथेतर साहित्य की विशेषताएँ बताइये।
4. नवाचार से आप क्या समझते हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. आलोचना से क्या समझते हैं ? हिन्दी के मुख्य आलोचकों और उनके आलोचना ग्रन्थों का सामान्य परिचय दीजिए।
2. आत्मकथा-लेखन व जीवनी-लेखन किस प्रकार अलग-अलग विधाएँ हैं ? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. संस्मरण-लेखन परम्परा का उल्लेख करते हुए एक परिचयात्मक निबन्ध लिखिये।

4.3.13. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. – डॉ॰ नगेन्द्र
3. हिन्दी साहित्य, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
4. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1 एवं 2
5. गद्य की पहचान, अरुण प्रकाश
6. हिन्दी साहित्य की भूमिका, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 4 : हिन्दी सृजनात्मक लेखन में नवाचार

इकाई – 4 : सृजनात्मक लेखन से सम्बन्धित प्रमुख ब्लॉग्स : परिचय एवं वैशिष्ट्य

इकाई की रूपरेखा

4.4.00. उद्देश्य कथन
4.4.01. प्रस्तावना
4.4.02. ब्लॉग का अर्थ, आरम्भ व प्रकार
4.4.03. हिन्दी ब्लॉगिंग का आरम्भ व विकास
4.4.04. ब्लॉग्स के प्रकार
    4.4.04.1. व्यक्तिगत ब्लॉग
    4.4.04.2. सामूहिक ब्लॉग
4.4.05. प्रमुख हिन्दी ब्लॉगिंग की सूची
4.4.06. हिन्दी साहित्य के प्रमुख ब्लॉग : परिचय एवं वैशिष्ट्य
4.4.07. पाठ सार
4.4.08. बोध प्रश्न
4.4.09. व्यवहार
4.4.10. कठिन शब्दावली

4.4.00. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई सृजनात्मक लेखन से सम्बन्धित प्रमुख ब्लॉग्स के परिचय एवं वैशिष्ट्यपर आधारित है। इस पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. ब्लॉग का अर्थ, उसकी शुरुआत तथा उसके प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
ii. हिन्दी ब्लॉगिंग की शुरुआत और उसके विकास को जान पाएँगे।
iii. ब्लॉग्स के प्रकारों, स्वरूप तथा गठन को समझ पाएँगे और व्यक्तिगत ब्लॉग तथा सामूहिक ब्लॉग के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
iv. हिन्दी ब्लॉग-जगत् की कुछ प्रमुख सूचियों के साथ सृजनात्मक लेखन से सम्बन्धित प्रमुख ब्लॉग्स का परिचय प्राप्त कर सकेंगे एवं उनके वैशिष्ट्य को जान पाएँगे।

4.4.01. प्रस्तावना

सृजनात्मक लेखन पाठ्यचर्या के चौथे खण्ड 'हिन्दी सृजनात्मक लेखन में नवाचार' की यह चौथी इकाई है। खण्ड की पहली और दूसरी इकाइयों में आपने क्रमशः समकालीन पॉपुलर साहित्य तथा लप्रेक एवं यूनी कवियों के विषय में पढ़ा। आप समझ गए होंगे कि फेसबुक और कुछ साहित्यिक वेबसाइटों के माध्यम से किस

तरह का सृजनात्मक लेखन पैदा हुआ और उसी को बाद में चलकर प्रकाशन संस्थानों ने पुस्तक रूप में प्रकाशित किया, पुस्तक रूप में यह पाठकों के बीच और भी ज्यादा लोकप्रिय हुआ। उसी शृंखला में हिन्दी में ब्लॉग्स भी रचनात्मक लेखकों के लिए बहुत सुविधाजनक व पाठकों की त्वरित प्रतिक्रिया प्राप्त कर पॉपुलर होने के लिए एक प्लेटफॉर्म के रूप में आता है।

इस इकाई में आप हिन्दी भाषा में सृजनात्मक ब्लॉग्स के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे। आप जानते हैं कि साहित्यकार बेहद सम्वेदनशील होता है। वह समाज में जो कुछ भी घटित होते हुए देखता है, उसे अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति देता है। पहले सभी साहित्यकारों के लिए अपनी रचना को प्रकाशित करने की क्षमता नहीं होती थी और होती भी थी तो उसके प्रकाशन में एक लम्बा वक्त लगता था। आज की इंटरनेट जैसी सुविधा ने हर सम्वेदनशील रचनाकार के लिए वह स्पेस मुहैया कराया है, जहाँ वह अपनी रचनात्मकता को अभिव्यक्त कर सके। आज का साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से अपना सन्देश पाठकों तक प्रेषित करने के लिए इस इंटरनेट युग की देन 'ब्लॉगिंग' का प्रयोग कर रहा है। आज न केवल प्रतिष्ठित साहित्यकार वरन् आम जन-मानस भी अपने विचारों, भावनाओं को ब्लॉगिंग के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहा है और प्रतिक्रिया देने की प्रक्रिया में आम पाठक में भी यह उम्मीद जगने लगी है कि वह भी रचनात्मक अभिव्यक्ति कर सकता है। ब्लॉग की दुनिया आज पाठकों से अछूती नहीं है। आज कई ऐसे ब्लॉग्स हैं जिन पर हिन्दी और विश्व की कविता से कोई भी आत्मीय परिचय कर सकता है। वहीं अपने प्रिय ब्लॉग लेखक से संवाद कर सकता है, उन पर अपने रचनात्मक विवेक का त्वरित फीडबैक भी दे सकता है या उनसे प्रेरित होकर कुछ नये तरीके से सृजनात्मक लेखन कर सकता है।

4.4.02. ब्लॉग का अर्थ, आरम्भ व प्रकार

आज सम्पूर्ण विश्व कंप्यूटमय होने की दिशा में प्रयासरत है। बैंकिंग क्षेत्र, तकनीकी संस्थान और महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठान कंप्यूटर के यन्त्र-मस्तिष्क से लाभान्वित हो रहे हैं, वहीं जन-जन की जीवन-रेखा बनकर इंटरनेट ने दुनिया भर के कंप्यूटर्स को आपस में जोड़कर सम्पूर्ण विश्व को 'ग्लोबल फैमिली' में परिवर्तित कर दिया है। इसी क्रम में वर्ड प्रेस (https://wordpress.com) व ब्लॉगर (https://www.blogger.com) आदि चर्चित ब्लॉग पब्लिशिंग सेवाओं से सम्बन्धित वेबसाइट द्वारा इंटरनेट उपभोक्ताओं को फ्री-ब्लॉग निर्माण की सुविधा प्रदान की गई है। इस सुविधा से लाभान्वित होते हुए आज हिन्दी सहित अनेक भाषाओं में हज़ारों ब्लॉग स्थापित किये जा चुके हैं। सरल शब्दों में कह सकते हैं कि ब्लॉग किसी व्यक्ति द्वारा लिखित निजी डायरी का ही ऑनलाइन रूप है; जिसमें ब्लॉग लेखक अपनी रचनाएँ स्वयं लिखकर स्वयं प्रकाशित कर सकता है तथा पाठकों, जो अनुसरणकर्ता के रूप में ब्लॉग से जुड़े होते हैं, द्वारा त्वरित टिप्पणी भी प्राप्त कर सकता है।

4.4.03. हिन्दी ब्लॉगिंग का आरम्भ व विकास

हिन्दी में ब्लॉगिंग के आरम्भ का श्रेय आलोक कुमार को दिया जाता है। आलोक कुमार हिन्दी के प्रथम ब्लॉगर हैं और उनके 'नौ दो ग्यारह' ब्लॉग को हिन्दी का प्रथम ब्लॉग माना जाता है। नब्बे के दशक के उत्तरार्द्ध में आरम्भ हुए ब्लॉगिंग के इस सफर का नामकरण हिन्दी में आलोक कुमार ने ही 'चिट्ठा' शब्द देकर किया; जो बहुत तेज़ी के साथ हिन्दी के अन्य ब्लॉगर्स द्वारा अपनाया गया। शीघ्र ही हिन्दी में ब्लॉगिंग के लिए 'चिट्ठा' शब्द एक मानक शब्द बन गया और हिन्दी ब्लॉगर्स को 'चिट्ठाकार' कहा जाने लगा। प्रारम्भ में देवनागरी लिपि की टाइपिंग से सम्बन्धित कठिनाइयों के कारण हिन्दी ब्लॉगिंग की गति बहुत धीमी रही और सीमित व्यक्तियों द्वारा ही हिन्दी में ब्लॉगिंग की जाती रही, किन्तु सन् 2000 ई. से सन् 2007 ई. के मध्य हिन्दी टाइपिंग उपकरणों की उपलब्धता के फलस्वरूप हिन्दी ब्लॉगर्स की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज़ की जाने लगी।

हिन्दी ब्लॉगर्स की संख्या तेज़ी से बढ़ने के पीछे कारण था कि यूनिकोड फ़ोंट्स ने हिन्दी सहित अनेक भारतीय भाषाओं को ऑनलाइन टाइपिंग में अधिक उन्नत उपकरणों के माध्यम से सहायता पहुँचाना आरम्भ कर दिया था। इसके अतिरिक्त मुख्यधारा की मीडिया द्वारा हिन्दी ब्लॉग्स पर प्रकाशित सामग्री को हाथों-हाथ लिए जाने ने जनसामान्य का ध्यान ब्लॉगिंग की ओर आकर्षित किया।

हिन्दी ब्लॉग स्फीयर की शुरुआत ने हिन्दी भाषा में अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को नये आयाम दिया है। ब्लॉग से पहले हिन्दी का पब्लिक स्फीयर अखबारों के सम्पादकीय पन्नों और साहित्य के छोटे-बड़े मंचों तक ही सीमित रहा है। जहाँ लिखने वाले और मुद्दों का अगर विश्लेषण किया जाए तो थोड़ी-बहुत विविधता के साथ एक ही शैली में लिखा जा रहा था। एक तय ढाँचे के भीतर नवीनता थी और किसी शैली ने चन्द ढाँचों को तोड़ा भी तो जल्दी ही वो अपने आप में एक परिपाटी बन गई। हिन्दी ब्लॉग ने नये लेखकों को हिन्दी के पब्लिक स्फीयर में शामिल होने का मौका दिया है। दूसरे शब्दों में, हिन्दी का पब्लिक स्फीयर का विस्तार ब्लॉग के आगमन के साथ शुरू होता है, जहाँ लिखने वाले किसी साहित्यकार के शिष्य नहीं, कवि नहीं, सम्पादक नहीं और अखबारों के टिप्पणीकार नहीं थे बल्कि वो लोग थे जो सिर्फ पाठक थे। ब्लॉग ने इन्हीं तमाम पाठकों को लेखक में बदल दिया। सिर्फ लिखने वाले अलग-अलग पृष्ठभूमि से नहीं आए बल्कि विषयों की विविधता बढ़ गई।

हिन्दी का ब्लॉग जगत् जल्दी ही हिन्दी के अखबारों और न्यूज चैनलों को चुनौती देने लगा। उनकी कड़ी समीक्षा होने लगी। कई ऐसे विवाद उभरे जिसका असर न्यूज रूम के भीतर होने लगा। बाद में जब यही ब्लॉग लेखन फेसबुक पर गया तो असर और व्यापक होता चला गया। फेसबुक पर, न्यूज चैनलों पर निर्मल बाबा नाम के एक तथाकथित चामत्कारिक सन्त के खिलाफ ऐसा अभियान चला कि पूरे हिन्दी जगत् में निर्मल बाबा पर सवाल होने लगे। उन्हीं चैनलों पर निर्मल बाबा के खिलाफ बहस होने लगी और अन्त में कुछ चैनलों को लिखना पड़ा कि निर्मल बाबा का यह कार्यक्रम प्रायोजित है। जल्द ही कई चैनलों को ऐलान करना पड़ा कि वे अब निर्मल बाबा को नहीं दिखाएँगे।

इस तरह के अंशकालिक और पूर्णकालिक असर के कई प्रमाण आपको मिलेंगे। गैंगरेप की घटना हो या किसानों की आत्महत्या इत्यादि में भले ही हिन्दी पब्लिक स्फीयर के प्राचीन स्तम्भ यानी लेखक जमात (चन्द अपवादों को छोड़कर) सक्रिय नहीं हुई लेकिन ब्लॉग से अभिव्यक्ति का अभ्यास पाये नये लोगों ने उतनी ही भागीदारी की, जितनी अंग्रेजी की दुनिया ने की। बल्कि भ्रष्टाचार के खिलाफ अन्ना आन्दोलन और बाद में अरविंद आन्दोलन के दौरान भी हिन्दी के ब्लॉग स्फीयर में जबरदस्त बहस हुई जो अखबारों और टी.वी. की तुलना में कहीं ज्यादा समृद्ध रही। सामाजिक न्याय की आवाज़ को हिन्दी की ब्लॉगिंग ने जितनी अभिव्यक्ति दी है, उतनी मुख्यधारा की पत्रकारिता ने नहीं। एक तरह से देखें तो हिन्दी के अखबार और चैनल को खुराक भी ब्लॉग स्फीयर की बहसों से ही हासिल हुई।

हिन्दी में ब्लॉग लेखन अब ब्लॉग तक सीमित नहीं है। फेसबुक ने जब से अपने 140 कैरेक्टर की बंदिश हटाई है, फेसबुक नया ब्लॉग हो गया है। शुरुआती ब्लॉगरों ने ग़जब तरीके से साथी ब्लॉगरों की तकनीकी मदद की। हिन्दी के फॉण्ट की समस्या को सुलझाया, जानकारी दी और लिंक की साझेदारी से एक ऐसा समाज बनाया जो विचारों से एक दूसरे से स्पर्धा कर रहा था, मगर तकनीकी मामले में एक दूसरे का हाथ पकड़ कर चल रहा था। हिन्दी की दुनिया में ऐसी साझीदारी इस तरह से पहले बिल्कुल नहीं थी। ज्यादतर लेखक नये थे। हिन्दी का स्थापित लेखक संसार ब्लॉग रचना संसार से आरम्भ से लेकर बीच के सफर तक दूर ही रहा। इसलिए भाषा की ऊर्जा बिल्कुल अलग थी। हिन्दी में बात कहने का लहजा उप-सम्पादक और व्याकरण नियन्त्रकों से आजाद हो गया। कुछ बहसें इतनी तीखीं रहीं कि उसने साहित्य की दुनिया के मुद्दों को भी झकझोर दिया।

4.4.04. ब्लॉग्स के प्रकार

विषय के आधार पर हिन्दी ब्लॉग्स को कई श्रेणियों में बाँटा जा सकता है; जैसे – तकनीकी ब्लॉग, आध्यात्मिक ब्लॉग, सामाजिक-राजनैतिक ब्लॉग, रचनात्मक ब्लॉग, कानूनी ब्लॉग आदि। शुरुआती दौर में जहाँ हिन्दी व्यक्तिगत ब्लॉग्स का निर्माण अधिक करने की ओर हिन्दी ब्लॉगर्स का रुझान था; वहीं समय के साथ-साथ हिन्दी ब्लॉगर्स ने सामूहिक ब्लॉग्स का निर्माण करने में रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार स्वरूप व गठन के आधार पर हिन्दी ब्लॉग जगत् में दो प्रकार के ब्लॉग्स सृजित किये जाने की परम्परा का आरम्भ हुआ।

4.4.04.1. व्यक्तिगत ब्लॉग

इस प्रकार के ब्लॉग पर केवल ब्लॉग स्वामी अपनी रचनाओं को प्रकाशित कर सकता है। एक ही व्यक्ति ब्लॉग स्वामी होता है और वही एकमात्र योगदानकर्ता होता है। इस प्रकार के ब्लॉग के सृजन का उद्देश्य ब्लॉग लेखक की निजी भावनाओं, विचारों, विशिष्ट रचनाओं अथवा अन्य रुचिकर विषयों का प्रकाशन मात्र होता है। व्यक्तिगत ब्लॉग्स के उदाहरण –

'कौशल ब्लॉग' (http://shalinikaushik2.blogspot.com)

'मेरी कहानियाँ' (http://shikhapkaushik.blogspot.com)

4.4.04.2. सामूहिक ब्लॉग

सामूहिक ब्लॉग का निर्माण सार्वजानिक व सामूहिक महत्त्व के विषयों पर ब्लॉगर्स को अपनी राय अपनी रचनाओं के माध्यम से एक ही ब्लॉग रूपी मंच पर प्रस्तुत करने के उद्देश्य से किया जाता है। इसमें ब्लॉग लेखक स्वयं भी ब्लॉग व्यवस्थापक की भूमिका निभाता है अथवा अन्य किसी ब्लॉगर को व्यवस्थापक के रूप में नियुक्त कर सकता है। ऐसे ब्लॉग पर ब्लॉग लेखक अन्य ब्लॉगर्स को योगदान हेतु ब्लॉग का लिंक भेजकर ब्लॉग में शामिल होने हेतु आमन्त्रित करता है। ये लिंक अन्य ब्लॉगर्स को अपने मेल में प्राप्त होता है। इस ब्लॉग लिंक पर क्लिक कर अन्य ब्लॉगर योगदानकर्ता के रूप में सामूहिक ब्लॉग से जुड़ जाता है और यह ब्लॉग उसके डैशबोर्ड पर दिखाई देने लगता है। योगदानकर्ता के रूप में जुड़े ब्लॉगर सामूहिक ब्लॉग पर समय-समय पर; जिस विशिष्ट विषय के आधार पर ब्लॉग का निर्माण किया गया, स्वयं ब्लॉग पोस्ट प्रकाशित कर सकता है।

आज हिन्दी ब्लॉग-जगत् में सामूहिक ब्लॉग्स की भरमार है। इनमें कुछ साहित्यिक उद्देश्य से सृजित किये गए हैं। जैसे – 'रचनाकार' (www.rachanakar.org), तो कुछ अन्य ब्लॉग्स को ब्लॉग जगत् से परिचित करने के उद्देश्य से सृजित किये गए हैं। जैसे – 'चर्चामंच' (http://charchamanch.blogspot.com)। इसी प्रकार नारी को केन्द्र में रखकर भी अनेक सामूहिक ब्लॉग्स का निर्माण जारी है; जिनमें भारतीय नारी [http://bhartiynari.blogspot.com] ब्लॉग ने महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है।

4.4.05. प्रमुख हिन्दी ब्लॉगिंग की सूची

यहाँ आपको साहित्येतर ब्लॉग्स की सूचियाँ इसलिए बतायी जा रही हैं ताकि आप साहित्य के अलावे अन्य अनुशासनों को भी जान सकें। आपके लिए ये सूचियाँ रैंडम रूप में रखी गई हैं। जब आप इन ब्लॉग्स के मुखपृष्ठ पर जाकर देखेंगे तब ही आपको उनमें लेखन की नियमितता, भाषा-कौशल, ब्लॉग का रंग-रूप, लेखक की पाठकों के प्रति ज़िम्मेदारी, पाठकों की प्रतिक्रिया, लेखन के प्रति गम्भीरता, विषय-चयन, विषय की जानकारी इत्यादि के बारे में विस्तृत जानकारी मिल सकेगी।

सामान्य सामग्री	विषय आधारित
एकोऽहम् / विष्णु बैरागी	अंतरिक्ष (विज्ञान) / आशीष श्रीवास्तव
एक आलसी का चिट्ठा/ गिरिजेश राव	रेडियोवाणी (फ़िल्म संगीत) / यूनुस खान
मेरी दुनिया मेरे सपने / ज़ाकिर अली 'रजनीश'	हुंकार (मीडिया) / विनीत कुमार
मेरा पन्ना / जीतेन्द्र चौधरी	एक शाम मेरे नाम (फ़िल्म संगीत) / मनीष कुमार
सच्चा शरणम् / हिमांशु कुमारपाण्डे	मुसाफ़िर हूँ यारों (यात्रा वृत्तान्त) / मनीष कुमार
देशनामा / खुशदीप सहगल	दशमलव (प्रसिद्ध तस्वीरें) / ललित कुमार
मो सम कौन कुटिल खल ? / संजय	टिप्स हिन्दी में (तकनीक) / विनीत नागपाल
सत्यार्थमित्र / सिद्धार्थ शंकर त्रिपाठी	विज्ञान गतिविधियाँ (विज्ञान) / दर्शन बवेजा

लहरें / पूजा उपाध्याय	मुसाफिर हूँ यारों (यात्रा वृत्तान्त) / नीरज जाट
उड़न तश्तरी / समीर लाल	विज्ञान विश्व (विज्ञान) / आशीष श्रीवास्तव
फुरसतिया / अनूप शुक्ल	इप्टानामा (रंगमंच) / दिनेश चौधरी
नीरज / नीरज गोस्वामी	मीडिया डाक्टर / प्रवीण चोपड़ा
मेरे अनुभव / पल्लवी सक्सेना	आधारभूत ब्रह्माण्ड (विज्ञान) / अज़ीज़ राय
जो न कह सके / सुनील दीपक	मल्हार (पुरातत्त्व) / पा.ना. सुब्रमणियन
परवाज़ : शब्दों के पंख / मोनिका शर्मा	चवन्नी चैप (सिनेमा) / अजय ब्रह्मात्मज
मैं घुमन्तू / अनु सिंह चौधरी	कलावाक (कला) / राजेश व्यास
बतंगड़ / हर्षवर्धन त्रिपाठी	हिन्दीज़ेन (प्रेरक प्रसंग) / निशान्त मिश्रा
कस्बा / रवीश कुमार	शब्दों का सफ़र (भाषा) / अजीत वडनेरकर
मेरी मानसिक हलचल / ज्ञानदत्त पाण्डेय	रोज़ एक प्रश्न (प्रश्नोत्तर) / दर्शन बवेजा
करनी चापरकरन / शचीन्द्र आर्य	सिनेमा-सिलेमा (सिनेमा) / प्रमोद सिंह
गुस्ताख़ / मनजीत ठाकुर	रंगविमर्श (रंगमंच) / अमितेश
अज़दक / प्रमोद सिंह	ई-पण्डित (तकनीक) / श्रीश बेंजवाल
हरिहर / विकेश कुमार बडोला	
जोग लिखी / दुर्गाप्रसाद अग्रवाल	
ओझा उवाच / अभिषेक ओझा	

हिन्दी में लिखे जाने वाले ब्लॉग्स की उपर्युक्त सूची को देखकर आपको अंदाजा लग गया होगा कि ब्लॉग का लेखक कौन है, वह किस डिसिप्लिन (विषय) से सम्बन्धित है। इन ब्लॉग्स को पढ़कर आप अपने पास-पड़ोस, अपने देश-दुनिया के बारे में जानकारी भी प्राप्त कर सकेंगे। यह जानकारी, अगर आप अपना खुद का ब्लॉग बनाना चाहेंगे तो, आपके साहित्यिक लेखन में व्याप्ति लाएगी। आप अपने लेखन को इन जानकारियों से समृद्ध कर सकते हैं। आइए, इन ब्लॉग्स में से किसी एक ब्लॉग्स के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करते हैं।

इन सूचियों में एक ब्लॉग का नाम है – 'क़स्बा', जिसके ब्लॉगर हैं प्रसिद्ध पत्रकार रवीश कुमार। आपने पिछली इकाई में रवीश कुमार के लप्रेक 'इश्क में शहर होना' को पढ़ा होगा। रवीश कुमार का 'क़स्बा' ब्लॉग अपने पाठकों के बीच बेहद लोकप्रिय है। जैसे हर ब्लॉगर अपने ब्लॉग का स्लोगन रखता है वैसे ही रवीश ने अपने ब्लॉग का स्लोगन रखा है – 'शौके दीदार है तो नज़र पैदा कर'। और अपना परिचय ब्लॉग पर कुछ इस रूप में रखा है – "सबसे मुश्किल काम है अपने बारे में लिखना। आपसे मेरा एक परिचय एक टी.वी. पत्रकार और एंकर का रहा है। इस पेशे के अलावा मेरा दूसरा परिचय 'क़स्बा' ब्लॉग से ही बनता है जिसके शुरू होते ही मैं ब्लॉगर पुकारा जाने लगा। इस ब्लॉग ने मुझे जगहों को भरने का मौक़ा दिया जो टी.वी. में काम करते वक्त ख़ाली रह जाते हैं। गली-मोहल्लों की तस्वीरें खींचना, मकान-दुकान से लेकर नदी-नालों की तस्वीरें चस्पाँ करना और उनके बहाने रिपोर्ट की शैली में कुछ कहना। अब यह ब्लॉग एक वेबसाइट में बदल गया है। आते रहियेगा।"

अब उदाहरण के तौर पर जरा रवीश के इस ब्लॉग की एक पोस्ट (18 अक्तूबर, 2017 की पोस्ट – गिरीश मकवाना की फिल्म The Colour of Darkness) पर दो पाठकों की टिप्पणी देखिए –

– Varsha • 3 months ago

"जो झेलता है वही जानता है उसके सिवा जिसने उस पीड़ा को महसूस कर लिया वही मानव है, वही ज़िन्दा है, जो ज़िन्दा है वही तड़पता क्योंकि वो दर्द महसूस करता है। हममें से कितने ज़िन्दा हैं ?'

– Manojkumar chaturvedi • 2 months ago

"रवीश सर ! यह फ़िल्म गुजरात के लिए ही नहीं समूचे देश के लिए आईना है। फिर भी गुजरात के लिए समसामयिक है। सर ! क्या आपने न्यूटन देखी। न्यूटन पर आपकी प्रतिक्रिया जानने को उत्सुक हूँ।"

अब आप समझ चुके होंगे कि ब्लॉग्स पर पाठकों की प्रतिक्रिया भी रचनात्मक हो सकती है। कई बार तो पाठक ब्लॉगर को कुछ नई जानकारियों से भी परिचय करते हैं। इस अर्थ में ब्लॉगर और उसके पाठक एक दूसरे के पूरक रूप में दीखते हैं।

4.4.06. हिन्दी साहित्य के प्रमुख ब्लॉग : परिचय एवं वैशिष्ट्य

आइए, अब हिन्दी साहित्य के प्रमुख ब्लॉग्स के बारे में जानते हैं। नीचे दी गयी सूचियों में आप देख सकते हैं कि प्रत्येक ब्लॉगर ने अपने ब्लॉग की विशेषता को स्लोगन के रूप रखा है –

1. **मौलश्री**, हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं को समेटे सुश्री अपर्णा मनोज भटनागर का ब्लॉग
2. **बेहतर दुनिया की तलाश**, वरिष्ठ कथाकार रमेश उपाध्याय का हिन्दी कथा साहित्य और सामयिक यथार्थ पर केन्द्रित ब्लॉग
3. **कविता कोसी,** कोसी नदी और अंचल के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक सन्दर्भों सहित अंचल की साहित्यिक विरासत पर श्री देवेन्द्र कुमार देवेश का ब्लॉग
4. **असुविधा,** हिन्दी कविताओं पर केन्द्रित श्री अशोक कुमार पाण्डेय का ब्लॉग
5. **समालोचन,** हिन्दी साहित्य पर केन्द्रित श्री अरुण देव का ब्लॉग
6. **उदयप्रकाश,** हिन्दी साहित्य और रचनाकर्म पर केन्द्रित श्री उदय प्रकाश का ब्लॉग
7. **हमकलम : वह जो मैं नहीं लिख पाया,** (यह ब्लॉग बस उन कविताओं के लिये जिन्हें पढ़कर यह लगा कि काश इन्हें मैंने लिखा होता) चुनी हुई हिन्दी कविताओं पर केन्द्रित श्री अशोक कुमार पाण्डेय का ब्लॉग
8. **शरद कोकास,** (कविता ही ज़िंदगी हो जहाँ ऐसी एक दुनिया है यहाँ ... शरद कोकास और मित्रों की कविताएँ), हिन्दी कविता पर केन्द्रित श्री शरद कोकास का ब्लॉग
9. **कुमार अम्बुज,** कुमार अम्बुज की कविताओं पर केन्द्रित ब्लॉग
10. **शीर्षक,** साथ चलने की एक जिद जो छूट कर भी छूटी नहीं, फिर साथ है ..., हिन्दी साहित्य पर केन्द्रित श्री विवेक का ब्लॉग

11. **सबद ...,** हिन्दी साहित्य पर केन्द्रित श्री अनुराग वत्स का ब्लॉग
12. **कलम,** (कोई अक्षर ऐसा नहीं है जिससे (कोई) मन्त्र न शुरू होता हो, कोई ऐसा मूल (जड़) नहीं है, जिससे कोई औषधि न बनती हो और कोई भी आदमी अयोग्य नहीं होता, उसको काम मे लेने वाले (मैनेजर) ही दुर्लभ हैं।), हिन्दी साहित्य और साहित्यिक विमर्श पर केन्द्रित डॉ॰ महेश आलोक का ब्लॉग
13. **अनुनाद,** शिरीष कुमार मौर्य का ब्लॉग
14. **नई बात,** हिन्दी साहित्य और अनुवाद पर केन्द्रित श्री चन्दन का ब्लॉग
15. **हमारी आवाज़,** (आदमी मरने के बाद कुछ नहीं सोचता। आदमी मरने के बाद कुछ नहीं बोलता। कुछ नहीं सोचने और कुछ नहीं बोलने पर आदमी मर जाता है। – उदय प्रकाश), हिन्दी साहित्य पर केन्द्रित श्री शशिभूषण का ब्लॉग
16. **भोजपत्र,** हिन्दी कविता पर केन्द्रित श्री निलय उपाध्याय का ब्लॉग
17. **जनशब्द,** हिन्दी साहित्य पर केन्द्रित श्री अरविन्द श्रीवास्तव का ब्लॉग
18. **आवाहन,** जो है ... और जो नहीं है ... जो नहीं है, वह भी कहीं है ..., कृष्णमोहन झा का ब्लॉग
19. **अनहद नाद,** श्री प्रियंकर का काव्य और काव्य-चर्चा पर केन्द्रित चिट्ठा
20. **जानकी पुल,** अनुवाद और लेखन पर केन्द्रित श्री प्रभात रंजन का ब्लॉग

हिन्दी सृजनात्मक लेखन में नवाचार के बारे में कुछ दुष्प्रचार भी किया जाता रहा है कि अब कविताएँ कोई नहीं पढ़ता, ब्लॉग्स की कविताएँ, लघुकथाएँ, संस्मरण, रिपोर्ताज इत्यादि रचनाएँ विश्वसनीय नहीं होतीं, उनमें स्थायित्व नहीं होता, वो पॉपुलैरिटी पाने के लिए लिखी गई हैं वगैरह-वगैरह। इसके बावजूद हिन्दी के सृजनात्मक लेखन में अनेक ब्लॉग्स में न केवल बेहतरीन कविताएँ पोस्ट की जा रही हैं बल्कि इस समय ब्लॉग्स पर हिन्दी में एक साथ कई पीढ़ियाँ सक्रिय हैं। पुरानी पीढ़ी के रचनाकार अब स्वीकार करने लगे हैं और साहित्य का भविष्य भी ब्लॉग्स में गम्भीरता से देख रहे हैं और फिर युवा रचनाकार अपनी रचनात्मकता से ब्लॉग्स के परिदृश्य पर महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज तो कर ही रहे हैं। आज कई ऐसे ब्लॉग्स हैं जिन पर हिन्दी और विश्व की साहित्यिक रचनाओं को अनुवाद करके हर किसी के लिए उपलब्ध कराया जा रहा है।

इन ब्लॉग्स पर आप हिन्दी के बेहतरीन कविता, कहानी, संस्मरण, यात्रा-वृत्तान्त इत्यादि पढ़ सकते हैं। इनमें युवा रचनाकारों के साथ कई वरिष्ठ साहित्यकार भी शामिल हैं। इसके साथ ही इनमें एक कैटेगरी है विश्व साहित्य की भी। जाहिर है इसमें विश्व के नामचीन कवियों-शायरों की कविता पढ़ने को मिलती है। हिन्दी के कवियों में यहाँ विष्णु खरे से लेकर चन्द्रकांत देवताले और आलोक धन्वा, गिरधर राठी से लेकर असद जैदी, वीरेन डंगवाल से लेकर मंगलेश डबराल और कुमार अंबुज पंकज चतुर्वेदी से लेकर प्रदीप्चन्द्र पाण्डे की चुनी हुई कविताएँ पढ़ सकते हैं। यानी यहाँ हिन्दी का एक वैविध्यपूर्ण कविता संसार मौजूद है जिससे रूबरू होकर आप हिन्दी कविता के नाक-नक्श से वाकिफ हो सकते हैं।

जिस प्रकार आपने हिन्दी में साहित्येतर ब्लॉग्स के बारे में कुछ जाना, उसी प्रकार अब हिन्दी के सृजनात्मक लेखन के किसी एक ब्लॉग पर चर्चा करते हैं। आइए, हिन्दी में चर्चित किसी एक ब्लॉग को लेते हैं।

एक ब्लॉग है – जानकीपुल, जिसके ब्लॉगर हैं प्रभात रंजन। यह ब्लॉग सामूहिक ब्लॉग है। इस ब्लॉग पर न केवल ब्लॉग स्वामी के लेखन पोस्ट होते हैं, बल्कि अन्य लेखक भी अपनी रचनाएँ यहाँ भेजकर प्रकाशित कराते हैं। इस ब्लॉग पर फिल्म समीक्षा, कविताएँ, कथा-कहानी, रपट, समीक्षा, नाटक, कार्यक्रम, वैधानिक, अनुवाद इत्यादि विधाओं में रचनाएँ प्रकाशित की जाती हैं। सामूहिक ब्लॉग्स पाठकों के लिए एक तरह से पुस्तकालय के रूप में होते हैं। यहाँ पाठक अपने मनपसंद का लेखन पढ़ सकता है। उस पर फीडबैक के रूप में अपने विचार दे सकता है। इसे इस रूप में भी कह सकते हैं कि ब्लॉग्स की दुनिया इन्द्रधनुषी संसार है। कोशिश आकाश में फैले रंगों को अपने दामन में समेट लेने की और फिर उसे ज़मीं पर बिखेर देने की ताकि सब अपनी-अपनी पसंद के रंग चुन सकें।

4.4.07. पाठ सार

ब्लॉग किसी व्यक्ति द्वारा लिखित निजी डायरी का ही ऑनलाइन रूप है; जिसमें ब्लॉग लेखक अपनी रचनाएँ स्वयं लिखकर स्वयं प्रकाशित कर सकता है तथा पाठकों, जो अनुसरणकर्ता के रूप में ब्लॉग से जुड़े होते हैं, द्वारा त्वरित टिप्पणी भी प्राप्त कर सकता है।

हिन्दी में ब्लॉगिंग के आरम्भ का श्रेय आलोक कुमार को दिया जाता है। आलोक कुमार हिन्दी के प्रथम ब्लॉगर हैं और उनके 'नौ दो ग्यारह' ब्लॉग को हिन्दी का प्रथम ब्लॉग माना जाता है। नब्बे के दशक के उत्तरार्द्ध में आरम्भ हुए ब्लॉगिंग के इस सफर का नामकरण हिन्दी में आलोक कुमार ने ही 'चिट्ठा' शब्द देकर किया; जो बहुत तेज़ी के साथ हिन्दी के अन्य ब्लॉगर्स द्वारा अपनाया गया। शीघ्र ही हिन्दी में ब्लॉगिंग के लिए 'चिट्ठा' शब्द एक मानक शब्द बन गया और हिन्दी ब्लॉगर्स को 'चिट्ठाकार' कहा जाने लगा।

हिन्दी ब्लॉग स्फीयर की शुरुआत ने हिन्दी भाषा में अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को नये आयाम दिए हैं। ब्लॉग से पहले हिन्दी का पब्लिक स्फीयर अखबारों के सम्पादकीय पन्नों और साहित्य के छोटे-बड़े मंचों तक ही सीमित रहा है। लेकिन हिन्दी का पब्लिक स्फीयर का विस्तार पाठकों से होता है। ब्लॉग ने इन्हीं तमाम पाठकों को लेखक में बदल दिया। सिर्फ लिखने वाले अलग-अलग पृष्ठभूमि से नहीं आए बल्कि विषयों की विविधता भी बढ़ गई।

4.4.08. बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. हिन्दी में ब्लॉगिंग के आरम्भ का श्रेय किसे दिया जाता है?
   (क) आलोक कुमार को
   (ख) रवीश कुमार को
   (ग) विनीत कुमार को
   (घ) राजेश पासवान को

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ब्लॉग से क्या तात्पर्य है ?
2. हिन्दी में ब्लॉग को क्या कहा जाता है और ब्लॉगर को क्या कहते हैं ?
3. ब्लॉग कितने प्रकार के होते हैं ?
4. व्यक्तिगत ब्लॉग और सामूहिक ब्लॉग का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
5. विषय के आधार पर ब्लॉग्स का परिचय दीजिए।
6. हिन्दी सृजनात्मक लेखन के सामूहिक ब्लॉग्स के नाम बताइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ब्लॉग का अर्थ व स्वरूप स्पष्ट करते हुए उसके प्रकारों का विवेचन कीजिए।
2. हिन्दी में सृजनात्मक लेखन में नवाचार (ब्लॉगिंग) की भूमिका को आप किस रूप में देखते हैं ? विवेचनात्मक उत्तर दीजिए।
3. सृजनात्मक लेखन में हिन्दी के महत्त्वपूर्ण ब्लॉग्स की विशेषताओं को उद्घाटित कीजिए।

अभ्यास

1. 'अ' और 'ब' में सही मिलान कीजिए –

	'अ'		'ब'
(क)	उदयप्रकाश	(i)	रमेश उपाध्याय
(ख)	बेहतर दुनिया की तलाश	(ii)	प्रभात रंजन
(ग)	जानकी पुल	(iii)	अरुण देव
(घ)	समालोचन	(iv)	उदय प्रकाश

2. निम्नलिखित कथनों में सत्य / असत्य कथन की पहचान कीजिए –
   i. ब्लॉग किसी व्यक्ति द्वारा लिखित निजी डायरी का ही ऑनलाइन रूप है; जिसमें ब्लॉग लेखक अपनी रचनाएँ स्वयं लिखकर स्वयं प्रकाशित कर सकता है तथा पाठकों, जो अनुसरणकर्ता के रूप में ब्लॉग से जुड़े होते हैं, द्वारा त्वरित टिप्पणी भी प्राप्त कर सकता है।
   ii. कुमार अम्बुज की कविताओं पर केन्द्रित ब्लॉग का नाम कुमार अम्बुज है।
   iii. रवीश कुमार के ब्लॉग का नाम कस्बा नहीं है।

4.4.09. व्यवहार

1. विभिन्न ब्लॉग्स की प्रस्तुति विधा एवं विषयवस्तु काअवलोकन कीजिए एवं उनकी सूची बनाइए। साथ ही अपना ब्लॉग बनाने पर विचार करते हुए यह भी बताइए कि आपके ब्लॉग की प्रस्तुति की विधा क्या होगी तथा लिखने के लिए आप किन-किन विषयों को आधार बनाएँगे ?

4.4.10. कठिन शब्दावली

फीडबैक	:	प्रतिक्रिया, टिप्पणी, प्रतिपुष्टि
ब्लॉग	:	चिट्ठा
ब्लॉगर	:	चिट्ठाकार
पब्लिक स्फीयर	:	जन परिसर
ब्लॉग स्फीयर	:	ब्लॉग परिसर

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

01. http://digitalhindi.com/best-hindi-blogs.htm
02. https://blogchiththa.blogspot.in/2014/04/Blog-Chiththa-Best-Hindi-Blogs-and-Chitthe-According-to-Alexa-Rank-31-March-2014.html?m=1
03. https://en.wikipedia.org/wiki/Violence_against_women_in_India
04. http://hindisahityablog.blogspot.in
05. http://www.dw.com/hi/%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%80-%E0%A4%AC%E0%A5%8D%E0%A4%B2%E0%A5%89%E0%A4%97%E0%A5%8D%E0%A4%B8-%E0%A4%AA%E0%A4%B0-%E0%A4%B8%E0%A4%AE%E0%A5%83%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%A7-%E0%A4%AC%E0%A4%B9%E0%A4%B8/a-16606980
06. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
07. http://www.hindisamay.com/
08. http://hindinest.com/
09. http://www.dli.ernet.in/
10. http://www.archive.org

❖❖❖